हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा और रामचन्द्र वर्मा : एक अध्ययन

Hindi Mein Kosh-Rachana Ki Parampara Aur Ramchandra Verma : Ek Adhyayan

The Tradition of Lexicography in Hindi and Ramchandra Verma : A Study

पी-एच॰डी॰ उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध

शोध-निर्देशक
डॉ॰ रमण प्रसाद सिन्हा

शोधार्थी
राज कुमार

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली - 110067

2022

Dated : 30/09/2022

Declaration

I hereby declare that the Ph.D. thesis entitled **Hindi Mein Kosh-Rachana Ki Parampara Aur Ramchandra Verma : Ek Adhyayan The Tradition of Lexicography in Hindi and Ramchandra Verma : A Study** submitted by me is the original research work. It has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution to the best of my knowledge.

I further declare that no plagiarism has been committed in my work. If anything is found plagiarised in my Thesis, I will be solely responsible for the act.

Raj Kumar
Name of Student

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली - 110067, भारत NEW DELHI - 110067, INDIA

Dated : 30/09/2022

Certificate

This is to certify that the **Mr. Raj Kumar** a bona-fide Research Scholar of Centre of Indian Languages, SLL&CS has fulfilled all the requirements as per the University Ordinance for the submission of Ph.D. thesis entitled **Hindi Mein Kosh-Rachana Ki Parampara Aur Ramchandra Verma : Ek Adhyayan The Tradition of Lexicography in Hindi and Ramchandra Verma : A Study**

This may be placed before the examiners for evaluation for the award of the degree of Ph.D.

Dr. Raman Prasad Sinha
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

Prof. Omprakash Singh
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

GRAM: JAYENU, Tel.: (91-011) 26741557, 26742676; Extn. : 4217, (D) 26704217, Telefax : (91-011) 26704217
Email : chair_cil@mail.jnu.ac.in, jnucil@gmail.com

अनुक्रम

भूमिका **1 - 4**

पहला अध्याय **5 - 67**

भारत में कोश-रचना की परम्परा : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

दूसरा अध्याय **68 - 109**

हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा

तीसरा अध्याय **110 - 181**

रामचन्द्र वर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

चौथा अध्याय **182 - 222**

रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं का विश्लेषण

पाँचवाँ अध्याय **223 - 246**

हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा का योगदान

उपसंहार **247 - 253**

संदर्भ-ग्रन्थ सूची **254 - 264**

****

भूमिका

मनुष्य की तरह संभव है कि भाषा और शब्द के भी परिवार हों। अब यह अलग बात है कि शब्दों की सांसारिकता को मनुष्य अपने भाषा संसार में आजीवन एक संसाधन की तरह उपयोग करता है। तो क्या स्वयं मनुष्य भी इस भौतिक संसार में मात्र एक संसाधन भर नहीं है ? यह प्रश्न कृत्रिम-बौद्धिकता वाले इस युग में हमें ठहर कर सोचने-विचारने का अवसर देता है। यही नहीं वस्तुतः शब्दों का तानाबाना भी ठहर कर उपयुक्त होने के जिन सामूहिक प्रयासों से जुड़ा हुआ है, उसको ही व्यावहारिक बनाने के लिए मनुष्यों ने 'भाषा' की संज्ञा गढ़ी है, जिसमें शब्दों के पारस्परिक संबंधों को अभिव्यक्त करने के कई प्रयोगगत सोपान होते हैं। और संसार की किसी भी भाषा के कोश में शब्दों के इन्हीं प्रयोगगत सोपानों से परिचय बनाने का अनुशासन निबद्ध होता है, जिसका व्यावहारिक आधार कोश-रचना एवं सैद्धान्तिक आधार कोश-विज्ञान कहलाता है। बहरहाल, संसार भर की भाषाओं में शामिल शब्दों का संसार मनुष्यों के इतिहास जितना ही प्राचीन और गतिशील है, जिसका लेखाजोखा अब तक के कई कोशकारों ने अपने कोशों में सुरक्षित रखने का पूरा-पूरा प्रयास किया है। यह सहज जिज्ञासा हो सकती है कि शब्दों के इस लेखेजोखे वाले कोशों के अध्ययन की क्या आवश्यकता है ? मेरा शोध-प्रबंध भारत में कोश-रचना की परम्परा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में साठ वर्षों तक कोश-रचना कार्य में सक्रिय रहे रामचन्द्र वर्मा जैसे कोशकार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अध्ययन द्वारा उससे जुड़ी इन्हीं आवश्यकताओं और संभावनाओं का विश्लेषण तथा विवेचन प्रस्तुत करने की दिशा में एक छोटा-सा प्रयास है।

यह शोध पाँच अध्यायों में बँटा हुआ है, जिसके केन्द्र में 'हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा और रामचन्द्र वर्मा : एक अध्ययन' विषयक अन्वेषणात्मक कार्यों का प्रयोजन अंतर्निहित है। कोश-साहित्य पर आधारित शोधों की परम्परा तो मिलती है किन्तु रामचन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व, और हिन्दी कोशों की परम्परा में वर्माजी की कोश-रचनाओं को आधार बना कर किया गया शोधकार्य, मेरी जानकारी में अपनी संपूर्णता में अब तक नहीं हुआ है। अतः कुल मिलाकर मेरे इस शोध-प्रबंध का मुख्य कार्य रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के अध्ययन के विभिन्न पक्षों को रेखांकित या उद्घाटित करना है। अब मैं यह कार्य कहाँ तक कर पाया हूँ, यह बतलापाना मेरे लिए संभव नहीं है।

शब्द-संग्रह कार्यों की परम्परा आदिमयुग के मनुष्यों की स्मरण शक्ति का विस्तार करने से जुड़ी प्रक्रिया है। कोशों के रूप में उसकी परिणति संसार भर में बहुत प्राचीन मालूम होती है, जिसकी शुरुआत सर्वप्रथम भारत में ही बतलाई जाती है। भारत में कोश-रचना की परम्परा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उल्लेख वैदिक संस्कृत शब्दों के संग्रह से आरंभ होकर आधुनिक कोश-रचना की पद्धति और स्वरूप तक अपना विस्तार बनाए हुए है; जिसके अध्ययन से पहले कोश, कोश-विज्ञान तथा कोश-रचना; कोश-रचना के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आयाम; कोशों के प्रमुख प्रकार अथवा उनका वर्गीकरण याकि इन्हीं तथ्यों पर कोश-रचनाओं के विश्लेषण का आधार विषयक जिज्ञासा भी स्वाभाविक ही है। इसके बाद आरंभिक कोश-रचना विषयक पड़ताल और कालक्रमानुसार संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश कोशों की परम्परा को जानने की वृत्ति जागृत होती है। ऐसे में आधुनिक भारतीय भाषाओं में कोश-रचना की परम्परा के अध्ययन को यूँ ही नहीं छोड़ा जा सकता, जिसके साथ पश्चिमी देशों में कोश-रचना की परम्परा का एक संक्षिप्त परिचय भी अपेक्षित हो जाता है। अतः भारत में कोश-रचना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के उक्त संदर्भों की पड़ताल करते हुए पहले अध्याय में यह देखने की भी एक कोशिश की गई है कि भारत में कोश-रचना की अद्यतन परिस्थितियाँ और उसके कुछ पहलू क्या हैं ?

यद्यपि किसी भी परम्परा से जुड़ने का अर्थ उसका अनुसरण करना नहीं है बल्कि उसका वास्तविक अर्थ परम्परा की गतिशीलता और वर्तमान परिस्थितियों में उसकी सजीव प्रवाहमानता के मूल्यों की उस महत्ता में है, जो परम्पराओं की तारतम्यता के आकलन से व्यंजित होती है। ऐसे में भारत में कोश-रचना की परम्परा के स्थायी मूल्य रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं में कैसे रूपांतरित हुए हैं ? इसका उत्तर भारत में कोश-रचना की परम्परा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बाद 'हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा' के सिलसिलों के आकलन से व्यंजित हो सकता है। इसलिए दूसरे अध्याय में हिन्दी भाषा के आविर्भाव और उसकी गतिशील परम्परा के काल-विभाजन की पड़ताल करते हुए हिन्दी कोश-रचना की परम्परा का आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल के कालगत-विभाजन के आधारों के साथ अध्ययन की एक तथ्यपरक कोशिश की गई है। इसके साथ हिन्दी में विश्वकोश, ज्ञानकोश, थिसॉरस अर्थात् समांतर कोश, हिन्दी ऑनलाइन कोश और कम्प्यूटरीकृत कोशकारिता का आकलन भी हिन्दी कोश-रचना की वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए प्रस्तुत करने का

प्रयास किया गया है। इसी अध्याय में हिन्दी में कोश-रचना की अद्यतन परिस्थितियों और उसके कुछ पहलुओं का परिचय भी साथ में जोड़ दिया गया है। इस तरह यह पूरा अध्याय उक्त तथ्यों/संदर्भों में हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा के आदिकाल से आधुनिक काल तक की यात्रा के अध्ययन से जुड़ा हुआ है।

उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी के हिन्दी उन्नायकों में रामचन्द्र वर्मा (1889-1969) की स्वीकार्यता कुशल कोशकार के रूप में रही है। अतः यह कहना ठीक ही है कि 'हिंदी शब्दसागर' और बाद में 'मानक हिन्दी कोश' जैसे उल्लेखनीय कोश-ग्रन्थों के सम्पादन से जुड़े हुए रामचन्द्र वर्मा का मुख्य योगदान कोश-रचना के क्षेत्र में रहा है। किन्तु अपने युग संदर्भों से जुड़े इस लेखक ने एक कोशकार के अतिरिक्त हिन्दी भाषा-व्याकरण के चिंतन, विविध विषयों के मौलिक लेखन, अनुवाद और सम्पादन, ऐतिहासिक एवं राजनीतिक अनुशीलन इत्यादि के विविध विषयक कार्य-पक्षों से भी अपना बहुस्तरीय रचनात्मक जुड़ाव बनाए रखा। इन अर्थों में वे बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि उनके व्यक्तित्व-पक्ष के साथ कृतित्व-पक्ष के अध्ययन का भी एक सार्थक प्रयास हो। अतः मैंने तीसरे अध्याय के माध्यम से रामचन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को संपूर्णता में जानने-समझने का विनम्र प्रयास किया है।

भारत और विशेष कर हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा के उक्त तथ्यपरक विवेचन से गुज़रते हुए मेरे मन में यह सवाल लगातार बना हुआ था कि रामचन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अतिरिक्त उनकी कोश-रचनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन किस प्रकार किया जाए ताकि हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा के योगदान को रेखांकित किया जा सके। ऐसे में कोश-रचना के आधारभूत सिद्धांतों और उसके व्यावहारिक पक्ष को आधार बनाते हुए मैंने चौथे अध्याय में, जो रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के विश्लेषण से जुड़ा हुआ है, एक आरंभिक प्रयास किया है।

अंतिम पाँचवाँ अध्याय वस्तुतः पिछले अध्यायों की पृष्ठभूमि में रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचना की प्रस्तावित भूमिका को हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में योगदान विषयक अध्ययन से जोड़ता है, मुख्य रूप से 'हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा का योगदान' पर केन्द्रित है; जिसमें कोश एवं अन्य ज्ञानानुशासनात्मक साहित्योपांगों के

पारस्परिक संबंध का हेतु; कोश, कोशकार, कोशकार्य/कोश-रचना का योगदान विषयक आयाम; हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा का नवाचार; हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा की पुनर्कल्पना; हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा द्वारा अवधारणा का विस्तार और इनके साथ-साथ हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा की स्थिति जैसे कुछ-एक उक्त कोशगत पक्षों को रेखांकित करने का भी प्रयत्न किया गया है। वस्तुतः इस अध्याय में हिन्दी कोश-रचना के क्षेत्र में निरंतर अनेक दशकों तक सक्रिय रहे रामचन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के आकलन के साथ-साथ, उनके प्रति जिज्ञासा बढ़ाने वाले बिन्दुओं का भी कुछ हद तक संकेत करने का प्रयत्न किया गया है; तो अब भला यह प्रश्न भी उठ सकता है कि क्या इन संकेतों का भी कोई आदि और अंत है ? इसका आशय इस अध्याय के साथ ही जुड़ा हुआ है।

इस शोध-प्रबंध के पूरा होने के लिए मैं अपने शोध-निर्देशक रमण प्रसाद सिन्हा का बहुत आभारी हूँ; जिन्होंने इस विषय पर काम करने की प्रेरणा दी। मुझे अपने परिवार और अपनों के लिए देखे गए सपनों की याद है; और अब तो एक बेटी का पिता भी हूँ। शैक्षिक जीवन में साहचर्य देने वाले बंधुओं निरपेन्द्र कुमार (नृपेन्द्र), सुमित चौधरी, गौरव भारती, मनोज कुमार और कई अन्य सहयोगियों को भी इस समय कैसे भूल सकता हूँ... बहरहाल, शोध-प्रबंध को लिखने के लिए अधिकांश सामग्री इंटरनेट वेबसाइट पोर्टल आर्काइव डॉट ओआरजी की सहायता से उपलब्ध हुई किन्तु यहाँ मैं जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों विशेष कर जेएनयू अवस्थित डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेडकर केंद्रीय पुस्तकालय और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के ग्रन्थालय का अब कुछ हद तक उतना ही आभारी हूँ, जितना कि यहाँ से सहयोग मिला और जहाँ से लेखन सामग्री एकत्र करने में मुझे पर्याप्त सहायता मिली। कहना न होगा कि शोध-प्रबंध की इस पूरी यात्रा में बहुतों का योगदान है इसलिए उन सबों के प्रति हमेशा की तरह आज भी विनम्रता प्रकट करता हूँ।

****

पहला अध्याय

भारत में कोश-रचना की परम्परा : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

पहला अध्याय

भारत में कोश-रचना की परम्परा : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

पहले अध्याय की पीठिका

किसी भाषा में शब्द-संग्रह की भाषिक परिस्थिति को जानने के लिए आवश्यक है उस भाषा में शब्द-निर्माण की परम्परा से अवगत होना। जबकि शब्द-निर्माण का कार्य एवं उसकी विकास परम्परा, आरंभिक दृष्टि में भाषा और भाषा-विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र के साथ-साथ, शब्दों के अंतर्निहित सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश तथा उनके प्रयोगगत मानवीय व्यवहारों के अवदानों से जुड़ा है। इस प्रकार शब्द-निर्माण की परम्परा से अवगत होने पर शब्द-संग्रह, व्याकरणिक शब्दों की भाषिक सम्बद्धता और उसकी बोधगम्यता के लिए हमें कोश की आवश्यकता होती है। चूँकि कोश हमें शब्दों के व्यावहारिक पक्षों से अवगत कराते हैं। और जब हम कोश की बात करते हैं तब हमें कोश-रचना की ज़रूरत पड़ती है। कोश-रचना अपने आप में भाषा-व्यवहार का एक अंग है, अतः इस व्यवहार की पारम्परिक समझ के लिए ही हमें कोश-रचना की परम्परा से भी अवगत होना चाहिए।

कोशों का सम्बन्ध भाषा की मूलभूत सार्थक इकाई 'शब्द' से है; कोशकारों द्वारा कोशों में भाषा व्यवस्था और उसके व्यवहार के आधारों पर 'शब्द' के प्रयोगगत विविध सन्दर्भों को प्रस्तुत किया जाता है।[1] इन दृष्टियों से कोश किसी भाषा के साहित्य की मूल्यवान संपत्ति और उस भाषा के शब्द-भण्डार का सबसे बड़ा निदर्शक होता है।[2] हम जानते हैं कि 'शब्द' मन के किसी अमूर्त्त भाव, इच्छा, आदेश, कल्पना का वाचिक या ध्वन्यात्मक प्रतीक होते हैं। अतः किसी भाषा में शब्द-संग्रह की परम्परा से अवगत होने के लिए प्रथमतः यह जानना ज़रूरी है कि सभी भाषाएँ प्रयोग के स्तर पर अपनी किन यात्राओं

[1] राम अधार सिंह, *कोश विज्ञान : सिद्धान्त एवं प्रयोग*, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास, संस्करण - 1990 ई०, आमुख, पृष्ठ - v

[2] श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), *हिंदी शब्दसागर (प्रथम भाग)*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, परिवर्धित संशोधित नवीन संस्करण (दूसरी बार) - 1986 ई०, प्रथम संस्करण की भूमिका, पृष्ठ - 1

को पूरा करते हुए आज व्यावहारिक रूप में आधुनिक कोश-विज्ञान का अभिन्न अंग बनी हैं। ताकि किसी भाषा में किए गए कोश-रचना के कार्यों को वस्तुतः हम आसानी से समझ सकें। आगे हम सभ्यता-संस्कृति के साथ भाषाओं के आरंभिक प्रयोगगत विकास-क्रम के विभिन्न सोपानों को संक्षेप में समझेंगे – भाषा में 'शब्द' आरंभिक तौर पर मनुष्य की याददाश्त की सीमा का विस्तार करते हुए सर्वव्यापक रूप में स्वीकार्य किए जाने लगे, तब लिपि के विकास ने शब्दों को साकार चित्र या प्रतीक में बदल दिया। इस परम्परा में व्यापक परिवर्तन तब हुआ जब काग़ज़ आया। अब शब्दों को लिखना और सुरक्षित रखना पहले से आसान हो गया था। फिर मुद्रण कला के आविष्कार ने मानवीय ज्ञान में विस्तार के महाद्वार खोल दिए। और अब इंटरनेट सूचना का महापथ विश्व भर में भाषाओं के लिए ज्ञान-विज्ञान का अप्रतिम भंडार बन गया है। यही भाषिक यात्रा वर्तमान में कोश-रचना की महत्ता को रेखांकित करती है। बहरहाल, हमें यह विचार करना चाहिए कि क्या भारत को एक सूत्र में बाँधने वाली भाषा के महत्त्व को बिना उसके शब्द-संग्रह की परम्परा को जाने हम जान सकते हैं ? हिन्दी के लिए यह उत्तर न में ही होगा। एक व्यक्ति चाहे वह किसी भी भाषा का हो, वह यह नहीं कह सकता कि किसी एक भाषा के सभी शब्द उसके प्रयोग योग्य हैं याकि वह उस भाषा के सभी शब्दों का प्रयोक्ता है। फिर भारत देश में साहित्यिक एवं बोलचाल की परम्परा के समानांतर, शब्द-प्रयोग तथा शब्द-संग्रह के वास्तविक घटकों के सापेक्ष, हिन्दी से पूर्व और हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा क्या है ? यह सब जानना ही इस शोध-अध्ययन के माध्यम से मेरी एक प्राथमिक कोशिश रहेगी।

अतः इस पहले अध्याय 'भारत में कोश-रचना की परम्परा : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' के माध्यम से हम आरम्भिक भारत में कोश-रचना की परम्परा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से परिचित होंगे। भारत में कोश-रचना की परम्परा प्राचीन में संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश आदि से लेकर आधुनिक समय तक चली आ रही है। यह वर्तमान में भी जारी है। इसी परम्परा का आरंभिक रूप में अध्ययन एवं विवेचन कोश-रचना की सैद्धांतिकी के प्रयोग दृष्टि से करना इस अध्याय का आधार है अर्थात् किस प्रकार के शब्दकोशों और कोशकारों की भारत में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मिलती है, उसकी पड़ताल करना ही इस अध्याय का किंचित् प्रयास अथवा उद्देश्य है। कहना न होगा कि उक्त संदर्भों में कोश-रचना की परम्परा का आकलन वर्तमान की कुछ कोशगत परिस्थितियों से भी जोड़ा गया है।

कोश, कोश विज्ञान तथा कोश-रचना

देवनागरी लिपि में श, ष तथा स तीन वर्ण हैं, जिनका उच्चारण स्थान क्रमशः तालव्य, मूर्धन्य और दन्त्य निर्धारित है। इनके प्रयोग से हिन्दी में मानकीकरण की दृष्टि से तीन शब्द बनते हैं, जो इस प्रकार हैं – तालव्य 'श' से कोश, मूर्धन्य 'ष' से कोष तथा दन्त्य 'स' कोस और इन्हें इनकी इसी वर्तनी के साथ अर्थवान शब्द रूप में लिखा भी जाता रहा है। वैसे परम्परागत अर्थों के बाद वर्तमान में अब दन्त्य 'स' वाले कोस का अर्थ लगभग दो मील के बराबर का नाप से जुड़ा है, मूर्धन्य 'ष' वाले कोष का अर्थ खज़ाना के लिए व्यवहृत है, वहीं तालव्य 'श' वाले कोश से तात्पर्य है – ऐसे शब्दों का संग्रह जिसमें उनके संबंध में जानने योग्य सामग्री दी गई हो। आगे सहूलियत के लिए यहाँ हमें 'कोश' शब्द के सापेक्ष अन्य भाषाओं में प्रयुक्त शब्दों को भी देख लेना चाहिए। कोश के लिए सबसे प्राचीन नाम 'निघण्टु' है। कन्नड़, मलयालम और तेलुगु में अब भी कोश को निघण्टु की ही संज्ञा दी जाती है। मलयालम में अंग्रेजी के 'Lexicon' शब्द के लिए 'महानिघण्टु' शब्द का प्रयोग किया गया है। तमिल के प्राचीन कोश ग्रंथों को निघण्टु की संज्ञा दी गई है। कोश का ही एक दूसरा अत्यंत महत्त्वपूर्ण नाम 'अभिधान' है, जिसका अर्थ 'नाम' होता है। बंगला और असमिया में कोश के लिए 'अभिधान' शब्द का ही प्रयोग किया जाता है।[3] अंग्रेजी में कोश शब्द 'डिक्शनरी' शब्द का समानार्थी है जहाँ "यह सर्व प्रथम अंग्रेजी विद्वान जॉन गारलैण्ड द्वारा सन् 1225 ई॰ में 'शब्दों की एक सूची' (डिक्शनैरियस – डिक्शनरी) अर्थ में लैटिन शब्दों को कंठाग्र करने के लिये निर्मित एक पांडुलिपि के शीर्षक के लिये प्रयुक्त किया गया था, जिनमें शब्द अकारादिक्रम में संयोजित न होकर वर्गानुसारी पद्धति में संकलित थे।"[4] इसी तरह अरबी, फ़ारसी और उर्दू में कोश को 'लुग़त' कहते हैं जो मूलतः अरबी से आया है। प्राचीन अरबी में लुग़त शब्द का प्रयोग 'शब्द' के लिए होता था जो अब 'शब्दों के संग्रह' के अर्थ में होता है।[5] बहरहाल, कोश का शाब्दिक अर्थ आज कई व्यापक संदर्भों से जुड़ गया है, जिसको परिभाषित करने के लिए कोशकार भी परम्परा से

---

[3] राम अधार सिंह, *कोश विज्ञान : सिद्धान्त एवं प्रयोग*, वही, शब्दकोश विविध नाम : विविध प्रयोग, पृष्ठ - ix

[4] अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य (सन् 1500 से 1800 ई॰ तक) : एक विवेचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन*, हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण - 1964 ई॰, भूमिका, पृष्ठ - 17-18

[5] https://epgp.inflibnet.ac.in/epgpdata/uploads/epgp_content/S000018HI/P001757/M023492/ET/1506596694HND_P5_M31_Koshvigyan.pdf : Accessed on 28/02/2021

प्रचलित कोशगत अर्थों का ही सहारा लेते रहे हैं। उपरोक्त प्रसंग में कोश के लिए प्रचलित ऐसे ही कुछ परम्परागत अर्थों पर विचार किया गया है।

कोश शब्द को परिभाषित करने के लिए पुष्पलता तनेजा 'नवीन कोश बनाम प्राचीन कोश' नामक अपने आलेख में कहती हैं कि "शब्दों का संकलन करके उनका अर्थ भी साथ दे दिया जाए तो वह एक ग्रंथ का रूप ले लेता है जिसे हम कोश कहते हैं।"[6] चूँकि आज कोश में केवल 'शब्द-संग्रह' ही नहीं अपितु उसके साथ उनका सम्यक् वर्ण-विन्यास, व्युत्पत्ति, अर्थ, प्रयोग, पर्याय इत्यादि का देना भी आवश्यक माना जाता है अतः आधुनिक अर्थों में अब 'कोश' शब्द शब्दों के लिए संदर्भ ग्रंथ का रूप ले चुके हैं। कोश विज्ञान और कोश-रचना के विविध पहलुओं पर 1960 ई॰ में यूनेस्को के विशेषज्ञों में चर्चा-परिचर्चा हुई, जिसमें इन्हीं संदर्भों को स्पष्ट करते हुए सी॰सी॰ बर्ग ने कोश की परिभाषा दी थी, जो इस प्रकार है – "कोश उन समाजीकृत भाषिक रूपों की व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध सूची है जो किसी भाषा-भाषी समुदाय के वाक्-व्यवहार से संग्रह किए गए हैं और जिनकी व्याख्या कोशकार द्वारा इस प्रकार की गई हो कि योग्य पाठक प्रत्येक रूप का स्वतंत्र अर्थ समझ सके तथा उस भाषिक रूप के सामूहिक प्रकार्य और तथ्यों से अवगत हो सके।"[7] अतः कोश के संबंध में कोशकारों के मतों को ध्यान में रखें तो शब्द संकलन में जो कोश शब्दों के शुद्ध और स्पष्ट अर्थ बतलाकर पाठक की शंका का निवारण करे, वही कोश सबसे अच्छा माना जाता है। इस प्रकार कोशों के मामले में यह तथ्य मायने रखता है कि उसमें व्यवहार योग्य शब्दों और उनके ठीक अर्थों तथा व्याख्याओं को कोशकार कितना महत्त्व दे रहा है। यही कारण है कि "कोश को अर्थ निर्धारण के लिए आप्त प्रयोग की तरह प्रामाणिक एवं आधारभूत तत्त्व माना जाता रहा है।"[8]

कोश विषयक अध्ययन के क्षेत्र में कोश विज्ञान के अतिरिक्त एक शब्द पद और है जिसे हम कोशकला अथवा कोश-रचना के रूप में जानते हैं। आगे हम इन्हीं शब्द पदों की

---

[6] पुष्पलता तनेजा, *नवीन कोश बनाम प्राचीन कोश*, शशि भारद्वाज (सं॰), *भाषा (द्वैमासिक)*, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार, वर्ष 49, अंक - 2, नवंबर-दिसंबर : 2009 ई॰, पृष्ठ - 13

[7] https://epgp.inflibnet.ac.in/epgpdata/uploads/epgp_content/S000018HI/P001757/M023492/ET/1506596694HND_P5_M31_Koshvigyan.pdf : Accessed on 28/02/2021

[8] राम अधार सिंह, *कोश विज्ञान : सिद्धान्त एवं प्रयोग*, वही, शब्दकोश विविध नाम : विविध प्रयोग, पृष्ठ - ix

चर्चा करेंगे। बहरहाल, जैसा कि 'कोश विज्ञान' नाम से ही मालूम होता है कि यह 'कोश' (शब्दकोश) का विज्ञान है; जिसमें उन सिद्धान्तों का विवेचन होता है जिनके आधार पर कोश में शब्द संकलित होते हैं अर्थात् कोश विज्ञान भाषा की शब्दावली के सैद्धांतिक पक्षों का अध्ययन करता है। इसका अनुप्रयुक्त रूप 'कोश-रचना' की प्रक्रिया है जिसमें विभिन्न स्रोतों से एक भाषा के शब्द-संग्रह की कोशगत सूचनाओं को एकत्र किया जाता है। इस प्रकार "कोश विज्ञान का प्रधान कार्य शब्दों का संकलन है। कोश से संकलित शब्दों के शुद्ध रूप और अर्थ को समझने में सुविधा मिलती है। आधुनिक कोश में शब्दों के उच्चारण वर्तनी, उसके व्याकरण रूप आदि पर भी महत्त्वपूर्ण ढंग से विचार होता है। कभी-कभी तो इन अलग-अलग अंगों पर स्वतन्त्र कोशों का संकलन हुआ है। जैसे व्युत्पत्ति, उच्चारण, पर्याय आदि कोश विज्ञान के विभिन्न अंगों पर अलग-अलग कार्य हुआ है।"[9] जबकि 'कोश विज्ञान' के व्यावहारिक पक्ष को 'कोश-रचना' कहते हैं। यहाँ कोश विज्ञान 'Lexicology' से तथा कोश-रचना या कोशकला 'Lexicography' से संबंधित है। बहरहाल, "कोश विज्ञान और कोशकला (कोश-रचना) को क्रमशः कोश के सिद्धांत और व्यवहार पक्ष के रूप में पहचाना जा सकता है।"[10]

कोश कला है या विज्ञान ? इस विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। रामचन्द्र वर्मा अपनी पुस्तक कोशकला में कहते हैं कि "तार्किक दृष्टि से इस विषय में बहुत-कुछ मत-भेद हो सकता है कि कोश-रचना का अन्तर्भाव विज्ञान में होना चाहिए या कला में। मेरी समझ में यह विषय 'कला' के ही अंतर्गत आता है।"[11] चूँकि "भाषाविज्ञान की एक शाखा के रूप में कोशविज्ञान भी मान्य है"[12] अतः इसका आधार बतलाते हुए भोलानाथ तिवारी कहते हैं कि यद्यपि 'शब्दविज्ञान' को भाषाविज्ञान की एक शाखा मानने पर – जैसा उन्होंने अपनी भाषा विज्ञान पुस्तक में किया है – 'कोशविज्ञान' को 'शब्दविज्ञान' की एक शाखा मानना ही अधिक उचित है, क्योंकि इसमें विशेष दृष्टि से शब्दों का ही अध्ययन किया जाता है।[13]

---

[9] जे० वी० कुलकर्णी, *हिन्दी शब्दकोशों का उद्भव और विकास*, प्रभा प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण - 1986 ई०, पृष्ठ - 13

[10] https://rapidiq.files.wordpress.com/2008/10/hindi-kosh-nirman.pdf : Accessed on 08/03/2021

[11] रामचन्द्र वर्मा, *कोश-कला*, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण विक्रम संवत् २००९ (सन् १९५२ ई०), नम्र निवेदन, पृष्ठ - 2

[12] भोलानाथ तिवारी, *भाषा विज्ञान*, किताब महल, इलाहाबाद, संस्करण - 2010 ई०, पृष्ठ - 391

[13] वही, पृष्ठ - 391

अब हमें कोश-रचना यानी कोशकला को भी समझ लेना चाहिए। भोलानाथ तिवारी अपनी भाषा विज्ञान पुस्तक में लिखते हैं कि "कोशविज्ञान (Lexicology) से सम्बद्ध ही दूसरा शब्द कोशकला (Lexicography) है। कोशविज्ञान तो कोश बनाने का विज्ञान है। इसमें उन सिद्धान्तों का विवेचन करते हैं जिनके आधार पर कोश बनाते हैं। इस प्रकार, इसका सम्बन्ध सिद्धान्त से है। दूसरी ओर, 'कोशकला' सिद्धान्त न होकर कला का प्रयोग है। सिद्धान्तों के आधार पर कोश बनाना इसमें आता है।"[14] कहना न होगा कि कोशकला और कोश-रचना अर्थात् Lexicography एक-दूसरे से अर्थ साम्य रखते हैं; जिसमें शब्द संकलन मात्र यांत्रिक कार्य नहीं रह जाता बल्कि उसमें उन भाषायी आयामों का भी विवेचन होता है जिनसे कोशगत रूपों का वर्गीकरण और प्रस्तुतीकरण संभव होता है।

बहरहाल, यहाँ कोशकला यानी कोश-रचना अर्थात् Lexicography की कुछ अंग्रेजी परिभाषाएँ भी जान लेने की आवश्यकता महसूस होती है, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि कोश-रचना-कर्म के समानांतर दुनिया भर की भाषाओं के सापेक्ष 'Lexicography' शब्द अपने मूल रूप में आख़िरकार क्या अर्थ रखता है ? यथा – "Lexicography is the activity or profession of writing dictionaries. (COBUILD Advanced English Dictionary)"[15] या "The process or profession of writing or compiling dictionaries. (Collins English Dictionary)"[16] या "The act, process, art, or work of writing or compiling a dictionary or dictionaries. (Webster's New World College Dictionary, 4th Edition.)"[17] इत्यादि। सन् 1968 ई॰ में काथलिक प्रेस राँची से प्रकाशित प्रसिद्ध अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश में फ़ादर कामिल बुल्के Lexicography शब्द के लिए कोश-कला/कोश-रचना और Lexicographer शब्द के लिए कोशकार का अर्थ निर्धारित करते हैं। यहाँ यह जान लेना उचित होगा कि अंग्रेजी की इन परिभाषाओं में आए कुछ मुख्य शब्दों की व्युत्पत्ति आख़िर किस रूप में विकसित और निर्धारित हुई है; चूँकि "पश्चिम में अंग्रेज़ी शब्द 'Dictionary' मिलता है जो

---

[14] वही, पृष्ठ - 391

[15] https://www.collinsdictionary.com/hi/dictionary/english/lexicography : Accessed on 22/03/2021

[16] https://www.collinsdictionary.com/hi/dictionary/english/lexicography : Accessed on 22/03/2021

[17] https://www.collinsdictionary.com/hi/dictionary/english/lexicography : Accessed on 22/03/2021

लेटिन का Dicere है जिसका अर्थ है 'बोलना' या 'कहना' । इससे Diction शब्द बना जिसका अर्थ है 'जो बोला जाए या कहा जाए' अथवा 'शब्द' । इन शब्दों का समूह है 'डिक्शनरी' । अंग्रेज़ी में कोश को Lexicon भी कहते हैं, जिसका संबंध मूलतः यूनानी धातु Legein से है । इस धातु से यूनानी शब्द Lexis बना, जिसका अर्थ 'शब्द' है । Lexis से यूनानी शब्द Lexicon बना जिसका अर्थ है 'शब्दकोश' । यही अंग्रेज़ी में Lexicon हो गया है । अंग्रेज़ी में शब्दकोश को Glossary भी कहते हैं जो यूनानी Glossa से बना है जिसका अर्थ ऐसा शब्द है जिसमें अर्थ या व्याख्या की अपेक्षा होती है । अंग्रेज़ी में शब्दकोश के लिए Thesaurus (थेसॉरस) शब्द भी चलता रहा है जो यूनानी शब्द Thesaurus से आया है और इसका मूल अर्थ 'खज़ाना' या 'भंडार' होता है । अब थेसॉरस में शब्द के अर्थ क्षेत्र में निहित विभिन्न अर्थों, पर्याय, विलोम आदि के साथ-साथ वाक्यांश भी होते हैं ।"[18] इस प्रकार यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि कोश-अध्ययन क्षेत्र में सिद्धान्त पक्ष के लिए कोशविज्ञान (Lexicology) तथा प्रयोग अथवा व्यवहार पक्ष के लिए कोश-रचना (Lexicography) शब्द परम्परागत रूप से निर्धारित माना गया है ।

कोश-रचना के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आयाम

कोशकारिता क्षेत्र में कोश-रचना प्रविधि के विभिन्न सैद्धान्तिक और व्यावहारिक सोपान हैं; जैसे कोश के लिए शब्द संकलन एवं उनका चयन, कोश में शब्द प्रविष्टि अर्थात् शब्दों की वर्तनी, क्रम, व्याकरणिक कोटि और उसके स्रोत, शब्द का अर्थ एवं उसका स्वरूप विस्तार, शब्द प्रयुक्तियाँ, कोश प्रयोग संबंधित सूचनाएँ, उसकी उपयोगिता के निर्देश और कोश अद्यतन संबंधी किए जाने वाले प्रयास इत्यादि । इस तरह कोश-रचना का कार्य एक दीर्घ और दुरूह प्रक्रिया है; जो किसी कोश के निर्माण में बहुत लंबे समय तक चलती रहती है । इसलिए कोश-रचना का कार्य एक विश्वसनीय योजना के तहत पूर्व तैयारी के साथ ही किया जाना चाहिए ताकि कोश के निर्माण का कार्य अधिक संशोधित रूप से हो सके ।[19] बहरहाल, यहाँ पर कांबले प्रकाश अभिमन्यु के आलेख 'आधुनिक कोशविज्ञान और नए

---

[18] https://epgp.inflibnet.ac.in/epgpdata/uploads/epgp_content/S000018HI/P001757/M023492/ET/1506596694HND_P5_M31_Koshvigyan.pdf : Accessed on 28/02/2021

[19] कांबले प्रकाश अभिमन्यु, *आधुनिक कोशविज्ञान और नए सैद्धांतिक पहलू*, मीरा सरीन (सं०), *गवेषणा*, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, अंक - 93, जनवरी-मार्च : 2009 ई०, पृष्ठ - 14

सैद्धांतिक पहलू' (गवेषणा, अंक 93, जनवरी-मार्च 2009) में उद्धृत कोश-रचना की रूपरेखा एवं कोश की संरचना से संबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण बातों को चिह्नित करना उचित होगा जैसे कोश का नियोजन, शब्द सामग्री संकलन, प्रविष्टियों का चयन, प्रविष्टियों की आधारभूत संरचना, प्रविष्टियों का क्रम, प्रविष्टियों की मुद्रण व्यवस्था, प्रविष्टियों के साथ चित्रों की सूचना, भाषा संबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण शब्द आदि। अतः कोश-निर्माण एक ऐसी प्रक्रिया है जो कई चरणों से गुज़रते हुए संपन्न होती है। इस प्रक्रिया को कोश-रचना संबंधी पूर्वनियोजन, कोश-निर्माण कार्य और कोश प्रबंधन जैसे तीन प्रमुख भागों[20] में बाँटा जा सकता है, जिनका उल्लेख आगे किया जा रहा है –

- कोश-रचना संबंधी पूर्वनियोजन – कोश निर्माण कार्य आरंभ करने से पूर्व उसके संबंध में विभिन्न दृष्टियों से विचार किया जाता है; जिसे कोश-रचना संबंधी पूर्वनियोजन के अंतर्गत रखते हैं। इसमें कोशकार को कोश हेतु जिन बातों को सुनिश्चित करना होता है, उनमें से कुछ-एक प्रमुख और आवश्यक बातें इस प्रकार से हैं –
  १. कोश का उद्देश्य – कोशकारिता के स्थापत्य का वह आधार जिसमें कोश विषयक उद्देश्य से उसके प्रयोग के सामान्य और विशिष्ट पहलू का निर्धारण किया जाता है।
  २. कोश का आकार – कोश के स्वरूप की दृष्टि से उसके बृहत् और लघु आकार का निर्धारण कोश की आवश्यक उपयोगिता को ध्यान में रख कर किया जाता है।
  ३. कोश का प्रकार – यह निर्धारण जिन कोशगत आधारों पर होता है उनमें से प्रमुख रूप से भाषा आधारित कोशों में एकभाषिक/द्विभाषिक/बहुभाषिक तथा अर्थ आधारित कोशों में शब्दार्थ/पर्याय/विलोम आदि प्रमुख हैं।
  ४. प्रविष्टियों की संख्या – स्रोत भाषा की समृद्ध परम्परा की दृष्टि से कोश में शामिल किए जाने वाले शब्द प्रविष्टियों की संख्या का आवश्यक महत्त्व होता है।
  ५. प्रविष्टियों के चयन का आधार – कोश में प्रविष्टियों के चयन का आधार निर्धारित करना आवश्यक होता है ताकि उनके प्रयोग में कोशगत एकरूपता लाई जा सके।
  ६. प्रविष्टियों का क्रम – प्रविष्टियों का निर्धारण वर्णक्रमानुसारी या अंत्यवर्णक्रमानुसारी इत्यादि में व्यवस्थित करना कोश की महत्ता को बढ़ा देता है।

[20] https://lgandlt.blogspot.com/2017/09/2017.html : Accessed on 04/04/2021

७. एक प्रविष्टि से संबंधित सूचनाएँ – प्रविष्टि में शामिल सूचनाएँ जैसे संबंधित शब्दों की संख्या, उनका क्रम आदि कोश संबंधी पूर्वनियोजन का आवश्यक अंग है।

- कोश-निर्माण कार्य – कोश-रचना प्रक्रिया का केन्द्रीय चरण है, जिसमें पूर्वनियोजित स्वरूप के आधार पर कार्य पूरा किया जाता है। यह कार्य कोशकार के कोश संबंधी अनुभव और उसकी व्यक्तिगत शैली पर निर्भर करता है। बहरहाल, कोश-निर्माण कार्य को निम्नलिखित चरणों में समझा जा सकता है –

  १. सामग्री संकलन – यह कार्यक्षेत्र कोश-निर्माण के लिए शब्दों के संग्रह और फिर शब्द-संग्रहण हेतु निर्धारित पाठ/सामग्री के संकलन से जुड़ा हुआ है; जिसमें कोश संपादक/संपादक-मण्डल द्वारा अध्ययन करते हुए शब्दों का संग्रह किया जाता है।

  २. प्रविष्टियों का चयन – कोश के प्रकार और उसकी संरचना की दृष्टि से निर्धारित की गई संकलित सामग्री के माध्यम से कोश हेतु प्रविष्टियों का चयन किया जाता है।

  ३. एक प्रविष्टि के साथ संबंधित सूचनाओं को जोड़ना – कोश-निर्माण हेतु शब्द प्रविष्टियों के चयन के बाद उसमें शामिल किसी एक शब्द प्रविष्टि के साथ संबंधित सूचनाओं को जोड़ने का कार्य इसी चरण में पूरा किया जाता है।

  ४. प्रविष्टियों और उनसे संबंधित सूचनाओं का लेखन एवं संकलन – कोश-निर्माण हेतु सामग्री संकलन, प्रविष्टि चयन और प्रविष्टि संबंधित सूचनाओं को जोड़ने का कार्य निर्धारित हो तब प्रविष्टियों एवं उनसे संबंधित सूचनाओं का पत्रक अथवा कॉपी प्रणाली के माध्यम से व्यवस्थित तौर पर लेखन एवं संकलन का कार्य किया जाता है। शब्द संकलन की मुख्य रूप से दो प्रणालियाँ हैं जिनमें से पत्रक प्रणाली में चिह्नित शब्दों को टिकाऊ पत्रकों पर क्रमबद्ध उतारा जाता है और कॉपी प्रणाली में चिह्नित शब्दों को वर्णक्रम से विभाजित पृष्ठों पर क्रमबद्ध किया जाता है।

  ५. संकलित सामग्री का विश्लेषण – कोश-निर्माण में संपादक या संपादक-मण्डल के द्वारा कोश हेतु संकलित सामग्री का विश्लेषण और संपादन किया जाता है। यह चरण प्रविष्टियों के पुनर्मूल्यांकन के कार्य से जुड़ा हुआ है।

- कोश प्रबंधन – यह कोश निर्मित हो जाने के बाद की प्रक्रिया है, जो कोश-व्यवस्था से जुड़ा हुआ एवं कोशकारिता की गतिशीलता के आयामों या तथ्यों को ध्यान में रख कर अपनाया जाता है; जिसमें कोश-प्रबंधन हेतु निम्नलिखित कार्य किए जाते हैं –

१. कोश से संबंधित सूचनाएँ प्रदान करना – कोश संबंधित सूचनएँ प्रयोक्ताओं को देने हेतु कोशकार यह प्रयोजन करता है ताकि कोश का व्यवहार उपयोगी हो सके। यह कार्य कोश प्रकाशन, वितरण और उसकी उपलब्धता से जुड़ा होता है।

२. कोश की उपयोगिता के निर्देश – कोशकार कोश उपयोगिता संबंधी निर्देश कोश की भूमिका, प्रकाशिका, संकेतिका और परिशिष्ट जैसे कुछ-एक भागों में दे देता है जो व्यावहारिक रूप से कोश प्रबंधन का अभिन्न अंग माना जाता है।

३. कोश का अद्यतन स्वरूप – कोश अद्यतन संबंधी प्रयास कोश-प्रबंधन की श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। चूँकि कोश-निर्माण के बाद भी कोश के अद्यतन स्वरूप संबंधी संभावना बनी रहती है। अतः कोशकारिता को गतिशील रचनात्मक प्रक्रिया मान कर उसमें सुधार भी कोश-रचना क्षेत्र में एक अपेक्षित कार्य माना जाता है।

इस प्रकार कोश-निर्माण संबंधी उपरोक्त प्रक्रियाओं के परिचय के बाद कोश प्रविष्टि और उससे संबंधित कुछ अन्य सूचनाओं को जानना भी आवश्यक प्रतीत होता है। अतः वे शब्द या शब्दस्तरीय इकाइयाँ जिन्हें किसी कोश में व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप से रखते हुए उनके बारे में व्याकरणिक एवं आर्थी सूचनाएँ प्रदान की जाती हैं; कोश प्रविष्टियाँ कहलाती हैं। कोश में प्रविष्टियों को रखने का एक पूर्वनिर्धारित क्रम होता है। जहाँ प्रत्येक प्रविष्टि के साथ कुछ सूचनाएँ दी जाती हैं। कोश प्रविष्टियों से संबंधित सूचनाओं को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है; एक कोटि में व्याकरणिक सूचनाएँ और दूसरी कोटि में आर्थी सूचनाएँ। कोश प्रविष्टि संबंधित सूचनाओं के संदर्भ में भी मुख्य रूप से ये तीन बातें बेहद महत्त्वपूर्ण समझी जाती हैं; जैसे उसमें कितनी सूचनाएँ दी जाएँगी ? कौन-कौन सी सूचनाएँ दी जाएँगी ? और सूचनाओं का क्रम क्या होगा ? इनके निर्धारण में कोशकार कोश के आकार-प्रकार को आधार बनाता है। सामान्यतः किसी कोश में एक प्रविष्टि से संबंधित निम्नलिखित सूचनाएँ हो सकती हैं –

- उच्चारणात्मक सूचनाएँ – प्रविष्टि में आए वर्णों को अलग-अलग करना, उच्चारण के अनुकूल उसमें शामिल वर्णों के दाब (stress) को दिखाना, शब्द की मात्रा (length) को दिखाना आदि सूचनाएँ भी कोश में शामिल होती हैं, जिसका मुख्य प्रयोजन कोश में शामिल शब्द प्रविष्टियों की उच्चारणात्मक सूचनाएँ देना होता है।

- व्युत्पत्ति – प्रविष्टियों की व्युत्पत्ति का निर्धारण कोश-रचना का अभिन्न अंग है। कोशों में शब्द-व्युत्पत्ति का दिया जाना आधुनिक कोशकारिता की दृष्टि से आवश्यक समझा जाता है। इससे कोश-प्रयोक्ताओं को किसी शब्द के विकास अथवा उसकी उत्पत्ति के पीछे के कारकों को समझने में सुविधा होती है और कोश की उपादेयता बढ़ती है।
- व्याकरणिक सूचनाएँ – प्रविष्टियों के साथ-साथ दिए जाने वाले शब्द भेद, कर्ता, क्रिया, विशेषण, वचन, लिंग, पुरुष (सर्वनामों के लिए) आदि का विशेष महत्त्व रहता है।
- आर्थी सूचनाएँ – कोश प्रयोक्ताओं की सहूलियत के लिए शब्द प्रविष्टियों के साथ दिए जाने वाले अर्थ (एक से अधिक होने पर मुख्य से गौण के क्रम में), संदर्भगत अर्थ, व्याख्या एवं परिभाषा, चित्र, उदाहरण, नामांकन, प्रतिसंदर्भ, पर्याय, विलोम आदि का कोश-रचनाओं में भाषा की प्रयोगगत दृष्टि से प्राथमिक महत्त्व का कार्य माना जाता है।

कोश-रचना संबंधी उक्त प्रक्रियाओं को जानने के बाद कोश-निर्माण कार्य से जुड़ी चुनौतियों को जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है। अतः आगे ऐसी ही कुछ-एक चुनौतियों की चर्चा की जाएगी –

- पूर्वनियोजन संबंधी चुनौतियाँ – कोश के आकार-प्रकार का निर्धारण, प्रविष्टियों की संख्या तय करना, प्रविष्टियों के चयन के आधारों को निर्धारित करना, एक प्रविष्टि से संबंधित सूचनाओं की संख्या एवं क्रम को निश्चित करना आदि कुछ ऐसी चुनौतियाँ हैं जो कोश-रचना के पूर्वनियोजन के समय कोशकार के सामने उपस्थित हो जाती हैं।
- कोश-निर्माण संबंधी चुनौतियाँ – सामग्री स्रोत निर्धारण एवं संकलन संबंधी, प्रविष्टियों के चयन संबंधी, एक प्रविष्टि के साथ संबंधित सूचनाओं के निर्धारण आदि कुछ ऐसी चुनौतियाँ हैं जिनका समाधान कोशकार को कोशकार्य के दौरान हल करना पड़ता है।
- कोश प्रबंधन संबंधी चुनौतियाँ – कोश संपादन से लेकर उसके प्रकाशन, वितरण, उपयोग संबंधी निर्देश एवं कोश के अद्यतन (Update) स्वरूप संबंधी सभी चुनौतियाँ कोश-प्रबंधन के अंतर्गत आती हैं।

चूँकि अधिकांश कोशों का उपयोग शब्दों के संदर्भ-ग्रन्थ के रूप में किया जाता है, अतः शब्दों से संबंधित जितनी अधिक सूचना कोश में दी जाएगी अध्येताओं के लिए उस

कोश का महत्त्व उतना अधिक बढ़ेगा। कांबले प्रकाश अभिमन्यु के अनुसार (आधुनिक कोशविज्ञान और नए सैद्धांतिक पहलू – गवेषणा, अंक 93, जनवरी-मार्च 2009) कोश में निम्नलिखित सूचनाएँ दी जा सकती हैं जैसे शब्द (वर्तनी के साथ), उच्चारण (इसके लिए अक्षर विभाजन किया जा सकता है), शब्द की व्याकरणिक कोटि, शब्द की व्युत्पत्ति (धातु आदि), परिभाषा, प्रचलित अर्थ, समान अर्थ, भिन्न अर्थ, क्षेत्रीय अर्थ, अप्रचलित शब्द अर्थ, विलोम अर्थ, चित्र, अंतर्निर्दोष प्रयोग (उदाहरणों सहित), मुहावरे, लोकोक्तियाँ, कहावतें, शब्द का ऐतिहासिक विकास, रेखाचित्र या मानचित्र आदि। भोलानाथ तिवारी द्वारा भाषाविज्ञान (1955 ई०) पुस्तक में बतलाई गई कोश-निर्माण की आवश्यक बातों को इन्हीं उक्त आधारों पर यहाँ समझा जा सकता है, जो इस प्रकार से हैं –

- शब्द-संकलन – कोश-निर्माण में पहला काम कोशकार को शब्द-संकलन का ही करना पड़ता है। यह कार्य लोगों से सुनकर संकलित किए गए शब्दों या पुस्तकों आदि की सहायता से संगृहीत किए गए शब्दों के इकट्ठा करने से जुड़ा हुआ है।
- वर्तनी – शब्द-संकलन के बाद कोश में उनकी मानकीकृत वर्तनी निश्चित कर लेना भी कोश-रचना के लिए आवश्यक कार्य है। इसका सबसे मुख्य आधार है शब्दों की वर्तनी के प्रयोग में दी जाने वाली एकरूपता जिसके संबंध में आवश्यक निर्णयों का उल्लेख कोशकार के द्वारा कोश की भूमिका में कर दिया जाना चाहिए।
- शब्द-निर्णय – इसमें कोशकार के समक्ष कई प्रश्न उठ खड़े होते हैं; जैसे किस शब्द को मूल मानें और किसको दूसरे के अंतर्गत रखें; समस्त पदों को पहले या दूसरे किस के साथ रखा जाए आदि। इसी प्रकार ध्वनि की दृष्टि से एक से दीख पड़ने वाले शब्दों को एक मानें या उन्हें अलग-अलग रखें। भोलानाथ तिवारी उदाहरणार्थ 'आम' शब्द का उल्लेख करते हैं जिसमें एक अर्थ तो अरबी में 'जो खास न हो' है और दूसरा संस्कृत के 'आम्र' का तद्भव रूप है, अच्छे कोश में दोनों को अलग शब्द मानना होगा।
- शब्दक्रम – अधिकांश कोशों में शब्द विशेष क्रम से ही दिए जाते हैं ताकि कोश देखने वाला उन्हें वहाँ सरलता से पा सके। संसार भर के कोशों में अनेक प्रकार के शब्दक्रम प्रचलित रहे हैं किन्तु सामान्यतः कोशों में जिस शब्दक्रम व्यवस्था का चलन रहा है, उनमें से कुछ-एक की चर्चा आगे की जा रही है –

१. वर्णानुक्रम के आधार पर – आजकल की अधिकांश भाषाओं के अधिकांश कोशों में शब्द वर्णानुक्रम से रखे जाते हैं । वर्णानुक्रम कुछ सीमा तक भाषाओं की वर्णमाला पर आधारित होता है। पहले शब्द केवल प्रथम वर्ण के आधार पार रखे जाते थे, बाद में शब्द के दूसरे वर्ण का और अब तो किसी भी शब्द के सारे वर्णों का आधार ऐसे कोशों में शामिल रहता है। यह आधुनिक पद्धति पाश्चात्य कोश साहित्य की देन है। नाथू राम कालभोर इस तथ्य के संदर्भ में लिखते हैं कि "हिन्दी के आधुनिक कोशों में वर्णक्रम पद्धति की रचना का श्रेय पाश्चात्य कोश साहित्य को है जिनकी वर्णक्रम व्यवस्था की सुविधा से यह प्रभावित और सूचना देखने में सहज हुआ है। इसमें देवनागरी वर्णक्रम के अनुसार मुख्य प्रविष्टियों की व्यवस्था की जाती है जिसमें अनुस्वार युक्त शब्द पहले दिए जाते हैं। जब एक ही शब्द दो प्रकार से लिखा जाता है तब उसका मानक रूप पहले दिया जाता है।"[21] जो किसी भी कोश में वस्तुतः वर्णमाला पद्धति के अनुसार ही नियोजित किया जाता रहा है। अतः वर्णानुक्रम के आधार पर शब्दक्रम को व्यवस्थित करने का कार्य भी अब आधुनिक कोश-रचना पद्धति का ही एक अभिन्न अंग समझा जाता है।

२. अक्षर-संख्या के आधार पर – भारत में एकाक्षरी कोश भी मिलते हैं जिनमें शब्दों को अक्षर-संख्या के आधार पर रखा जाता है। चीनी तथा कुछ और भाषाओं में भी यह पद्धति प्रचलित रही है। इसमें एक अक्षर वाले शब्द पहले, फिर दो अक्षर वाले, फिर तीन अक्षर वाले और आगे भी इसी प्रकार से शब्दों को रखा जाता है।

३. सुर प्रधानता के आधार पर – सुर प्रधान भाषाओं में वर्णानुक्रम याकि अक्षर-संख्या के आधार पर शब्दों को रखने के अतिरिक्त उन्हें सुरों के आधार पर भी रखा जाता है। चूँकि ऐसी भाषाओं में एक ही शब्द कई सुरों में प्रयुक्त होता है।

४. विचारों के आधार पर – थिसॉरस में शब्दों को भावों या विचारों के आधार पर रखते हैं। समानार्थक अथवा पर्यायवाची कोशों में शब्दों को विचारों के आधार पर नियोजित करते हैं। अमरसिंह के 'नामलिंगानुशासन' (अमरकोश) के काण्डों में भी उक्त पद्धति की झलक मिलती है।

---

[21] नाथू राम कालभोर, *हिन्दी कोश साहित्य : समीक्षात्मक अध्ययन*, सुन्दर साहित्य सदन, बैतूल (मध्य प्रदेश) प्रथम संस्करण - 1981 ई०, अभिज्ञान, पृष्ठ - 9-10

५. व्युत्पत्ति के आधार पर – कभी-कभी कुछ कोशों में शब्द व्युत्पत्ति के आधार पर भी रखे जाते हैं; जिसमें सभी शब्दों को उनकी व्युत्पत्ति के अनुसार नियोजित किया जाता है। जैसे अरबी में इस प्रकार के कोश प्रायः मिलते है; जिनमें वर्णानुक्रम से 'माद्दा' अर्थात् व्याकरण में शब्द की व्युत्पत्ति देते हैं और हर 'माद्दा' के साथ उससे बनने वाले शब्द दिए जाते हैं।

६. अंत्याक्षर/प्रत्याक्षर के आधार पर – संस्कृत तथा हिन्दी के पुराने अनेकार्थ कोशों में अंत्याक्षर (अंतिम स्वरांत व्यंजन) आधारित शब्द-संकलन की व्यवस्था देखने को मिलती है[22] जिसका आधार कहीं-कहीं अक्षर संख्यानुसार वर्णित वर्ग या उच्चारण स्थान भी रखा जाता था।

- व्याकरण – बहुत से कोशों में शब्द पर आधारित व्याकरणिक टिप्पणी इत्यादि भी दी रहती है। कहना न होगा कि कभी-कभी एक शब्द कई व्याकरणिक इकाइयों के रूप में प्रयुक्त होता है। अतः शब्द के वास्तविक परिचय का उल्लेख ही कोश में किया जाना चाहिए। यद्यपि अब कुछ कोशों के परिशिष्ट में सामान्य व्याकरण के साथ कोशविद्या से संबद्ध कई और सूचनाएँ भी दी जा रही हैं।
- अर्थ – शब्द का अर्थ वर्णनात्मक कोश में प्रचलन एवं ऐतिहासिक कोश में इतिहास के आधार पर दिया जाता है। कोश में दिए गए अर्थ दो प्रकार के होते हैं; एक में केवल समानार्थी शब्द देते हैं और दूसरे में उसकी परिभाषा भी दे दी जाती है।
- उद्धरण – कोशों में अर्थ प्रयोग के उद्धरण भी दिए जाते हैं। ऐसे उद्धरण भी प्रामाणिक होने चाहिए। यदि कई उद्धरण दिए जाएँ तो उन्हें कालक्रमानुसार रखना चाहिए।
- चित्र – कुछ शब्द किसी अर्थ, पर्याय या व्याख्या से स्पष्ट नहीं होते। ऐसी स्थिति में उस शब्द का बोध कराने के लिए उससे जुड़ा चित्र भी देना आवश्यक हो जाता है।
- उच्चारण – कई बार कोश में शब्द का उच्चारण देना भी आवश्यक हो जाता है चूँकि मात्र सामान्य वर्तनी से वह पूरी तरह स्पष्ट नहीं होता। फिर भी हिन्दी कोशों में उच्चारण नहीं रहता, जिसका कारण यह है कि देवनागरी लिपि के अलग से उच्चारण की हिन्दी में ज़रूरत नहीं होती। किन्तु ऐसा मानना भी अवैज्ञानिक हो सकता है। चूँकि उच्चारण

[22] श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), *हिंदी शब्दसागर (प्रथम भाग)*, वही, संपादकीय प्रस्तावना, पृष्ठ - 7

की दृष्टि से बलाघात एवं अ, ऐ, औ, ऋ, ष, क्ष, ज्ञ आदि कई ध्वनियों से संबंधित हिन्दी शब्दों में भी उच्चारण संकेत अपेक्षित है।

- व्युत्पत्ति – यह भी कोशों का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसीलिए आधुनिक ढंग के कोशों में शब्द की व्युत्पत्ति का होना भी आवश्यक है। शब्दों की व्युत्पत्ति का कभी तो कोशों में सीधे संकेत कर दिया जाता है और कभी तुलनात्मक दृष्टि से दूसरी भाषाओं के भी रूप दे दिए जाते हैं। इस दिशा में सरनाम सिंह शर्मा ने 'हिन्दी की तद्भव शब्दावली व्युत्पत्ति कोश' को अस्तित्व प्रदान कर हिन्दी में व्युत्पत्ति कोशों का कुछ मार्गदर्शन अवश्य किया है। इसके अतिरिक्त व्युत्पत्ति कोश साहित्य की दृष्टि से अजित वडनेरकर का 'शब्दों का सफ़र' भी एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव हो सकता है।

कोश-रचना के उक्त सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आयामों से परिचय होने के बाद कोश-रचनाओं को जानने और समझने का पहला पड़ाव यहाँ पूरा होता है।

कोशों के प्रमुख प्रकार अथवा उनका वर्गीकरण

कोश विषयक परम्पराओं के संदर्भ में यहाँ कोश-रचनाओं के विश्लेषण का अध्ययन करने के लिए कोशों के प्रमुख प्रकार अथवा उनके वर्गीकरण का आधार जान लेना भी आवश्यक है। चूँकि कोश कई प्रकार के हो सकते हैं। अतः इसी दृष्टि के आधार पर आगे यहाँ अब कोशों के प्रमुख प्रकार अथवा उनके वर्गीकरण के विविध आधारों का परिचय पाने के साथ-साथ उनके अध्ययन का भी एक छोटा-सा प्रयास किया जाएगा –

- विषय के आधार पर – कोशों को विषय के आधार पर भी निश्चित किया जाता है; जैसे भूगोल कोश, इतिहास कोश, मनोविज्ञान कोश, धर्म कोश इत्यादि।
- भाषा के आधार पर – कोशों का वर्गीकरण भाषा आधारित भी होता है जो कोश की स्रोत भाषा के अतिरिक्त उसमें शामिल लक्ष्य भाषा के आधार पर निर्धारित किया जाता है। भाषा पर आधारित कोश मुख्यतः एकभाषी, द्विभाषी और बहुभाषी होते हैं। आज तो बोलियों पर आधारित कोश भी प्रचलन में हैं, जिन्हें आधुनिक कोश-रचना पद्धति में भाषा आधारित कोशों के अंतर्गत ही रखा जाता है।

- आकार के आधार पर – कोश का स्वरूप लघु और बृहत् दोनों ही हो सकता है। मुख्य रूप से यह आधार कोश प्रयोक्ता समूह पर निर्भर करता है। अतः आकार के आधार पर कोश की श्रेणियों को सामान्य और विश्वकोश के तर्ज़ पर वर्गीकृत किया जाता है।
- प्रविष्टि के आधार पर – कोशों को प्रविष्टियों के आधार पर भी वर्गीकृत किया जाता है, जिसमें प्रविष्टियों के कई आधार हो सकते हैं। ऐसे कोशों में विशेष तौर पर शब्दकोश, उपसर्ग कोश, प्रत्यय कोश, धातु कोश, मुहावरा कोश आदि शामिल होते हैं।
- काल के आधार पर – प्रयुक्त शब्द विशेष के काल के आधार पर भी कोश होते हैं; जैसे मध्यकालीन हिन्दी शब्दकोश, पौराणिक शब्दकोश, रीतिकालीन कोश आदि।
- अर्थ के आधार पर – प्रविष्टियों के दिए गए अर्थ के आधार पर भी कोशों का वर्गीकरण अथवा प्रकार निर्धारित किया जाता है; जैसे पर्याय/विलोम/समानार्थी कोश आदि।
- प्रविष्टि क्रम के आधार पर – कोशों के प्रकार का निर्धारण उसमें शामिल प्रविष्टियों के क्रम के आधार पर भी किया जाता है। यह विशेष रूप से कोश में दिए गए शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर निर्धारित होता है; जैसे ऐतिहासिक शब्द कोश, शब्द व्युत्पत्ति कोश आदि का वर्गीकरण इसी आधार पर किया जाता है।
- विशिष्ट दृष्टिकोण के आधार पर – किसी एक विशिष्ट दृष्टिकोण के आधार पर भी कोश निर्मित होते हैं; जैसे प्रामाणिक हिन्दी कोश, मानक हिन्दी कोश आदि।
- प्रयोक्ता के आधार पर – कोश का प्रयोग वस्तुतः कई समूहों द्वारा कई स्तरों पर किया जाता है। अतः इस दृष्टि से कोश के प्रयोक्तायों के आधार पर भी कोशों के प्रकार का निर्धारण होता है; जैसे बाल शब्द कोश, विद्यार्थी कोश, अध्येता कोश इत्यादि।
- माध्यम के आधार पर – माध्यम के आधार पर भी कोशों के प्रकार या उनका वर्गीकरण निर्धारित होने लगा है; जैसे डिजिटल शब्दकोश, कंप्यूटर शब्दकोश, ई-कोश, मोबाइल एप्लीकेशन आधारित कोश, पॉकेट शब्दकोश इत्यादि इसी श्रेणी के अंतर्गत आते हैं।
- समांतर कोश तथा पारिभाषिक शब्दावली – आजकल कोशों के कुछ-एक प्रमुख प्रकारों में समांतर कोश तथा पारिभाषिक शब्दावली का भी निर्माण होने लगा है; जैसे आधुनिक हिंदी थिसॉरस, पर्यायकी कोश, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली आदि इस श्रेणी के ऐसे ही कुछ कोश हैं।

उपरोक्त तथ्यों से परिचित होने पर यह ज्ञात होता है कि मानक आधारित शब्दों की संकलन-प्रणाली, उसकी भाषा तथा उसमें संगृहीत शब्द अर्थ के कई सूक्ष्म भेदों का आधार सुनिश्चित करने के बाद ही कोश-रचना क्षेत्र में कोशों के प्रकार अथवा उनके वर्गीकरण को नियोजित किया जाता है। ऐसे में कोशों के वर्गीकरण का सैद्धान्तिक विवेचन किस प्रकार किया जाता है, यह जानना भी आवश्यक प्रतीत होता है, अतः यहाँ ऐसे ही कुछ आधारों का ज़िक्र किया जा रहा है; जैसे शब्द संकलन-पद्धति, शब्दार्थ विवेचन, भाषागत आधार, कालगत आधार (एककालिक, ऐतिहासिक तथा व्युत्पत्तिपरक), कोश का प्रस्तुतीकरण इत्यादि । कांबले प्रकाश अभिमन्यु के अनुसार कोशों के वर्गीकरण के मुख्यतः निम्नलिखित सिद्धांत होते हैं[23] – १. प्रविष्टि की प्रकृति, २. कोश की भाषा का काल, ३. कोश में वर्णित भाषा की संख्या, ४. कोश का उद्देश्य, ५. कोश की प्रविष्टि की सघनता एवं गहनता, ६. कोश में प्रविष्टियों की व्यवस्था, ७. कोश में शब्द संख्या आदि।

आज कोश के जो रूप और भेद मिलते हैं, उन्हें कम से कम सात सामान्य श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है; जैसे व्यक्ति कोश, पुस्तक कोश, विषय कोश, भाषा कोश, विश्वकोश, पारिभाषिक कोश और अध्येता कोश। इन सात श्रेणियों के प्रमुख कोशों के साथ व्युत्पत्ति कोश, वर्तनी कोश, आवृत्ति कोश, कूटभाषा कोश, समांतर कोश जैसे कई अन्य कोशों का उपयोग भी शब्द और अर्थ की संगति बैठाने के अतिरिक्त भाषा के अन्य प्रकार्यों के संदर्भ में किया जाता है।[24] अतः कोशों के भी अनेक भेद और उपभेद हो सकते हैं। भाषा के संदर्भ में 'कोश' कहने पर सामान्यतः 'शब्दकोश' का ध्यान आता है जबकि कोश कई प्रकार के होते हैं। किसी शब्दकोश में अन्य कई कोशों की प्रमुख बातों को उसके कलेवर के साथ समावेश करने का प्रयास होता रहता है। सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति किसी भी अच्छे शब्दकोश से हो ही जाती है; किन्तु हमारी कई विशिष्ट आवश्यकताओं की दृष्टि से विभिन्न कोशों का विशेष महत्त्व जान पड़ता है। इस तरह कोशों का वर्गीकरण स्थूल रूप से निम्नलिखित शीर्षकों[25] में किया जा सकता है –

---

[23] कांबले प्रकाश अभिमन्यु, *आधुनिक कोशविज्ञान और नए सैद्धांतिक पहलू*, मीरा सरीन (सं०), *गवेषणा*, वही, पृष्ठ - 14

[24] https://rapidiq.files.wordpress.com/2008/10/hindi-kosh-nirman.pdf : Accessed on 08/03/2021

[25] https://www.pravakta.com/kosh-parampara-singhavlokan/ : Accessed on 16/04/2021

- शब्दकोश : सामान्य अर्थ में शब्दकोश वह है जिससे शब्दार्थ की जानकारी मिल जाए अर्थात् जिसमें किसी भाषा के शब्द-प्रयोगों आदि का अकारादिक्रम से संकलन करके सम्यक व्याख्या की जाए वह उस भाषा के 'शब्दकोश' के अंतर्गत आता है। किसी भी भाषा में एक शब्दकोश, जिनमें अर्थ उस भाषा से उसी भाषा में दिए गए हों अथवा जिनमें अर्थ एक भाषा से दूसरी भाषा में दिए गए हों, प्रमुखतः तीन प्रकार के हो सकते हैं – वर्णनात्मक, तुलनात्मक और ऐतिहासिक। भाषाओं की दृष्टि से ऐसे भाषा कोश एकभाषी, द्विभाषी और बहुभाषी कोश के रूप में भी वर्गीकृत किए जा सकते हैं। ऐसे शब्दकोशों के अंतर्गत किसी भाषा विशेष की प्रयुक्तियों के कोश भी परिगणित होते रहते हैं। किन्तु यहाँ शब्दकोश का प्रयोग बहुत विस्तृत अर्थ में है, जिसमें किसी शब्द के उच्चारण, व्युत्पत्ति, प्रयोग, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, पर्याय, विलोम, मुहावरा, कहावत, लोकोक्ति इत्यादि से संबंधित कोशों का भी समावेश किया गया है। अतः इस दृष्टि से कह सकते हैं कि शब्दकोश कई प्रकार के होते हैं; जैसे –

  १. एकभाषी/द्विभाषी/बहुभाषी शब्दकोश – शब्दकोश एकभाषी/द्विभाषी/बहुभाषी हो सकते हैं। एकभाषी शब्दकोश में शब्दों के अर्थ की विवेचना के लिए स्रोत-भाषा या आधार भाषा का प्रयोग किया जाता है। जबकि अधिकांश द्विभाषी/बहुभाषी शब्दकोश में इसके लिए लक्ष्य-भाषा/भाषाओं का भी प्रयोग किया जाता है। इस संबंध में कोश-रचना की अनेक परम्पराएँ मिलती हैं। जिस कारण जिन शब्दों की व्याख्या अपेक्षित होती है वह किन्हीं शब्दकोशों में स्रोत-भाषा या आधार भाषा में दी जाती हैं और लक्ष्य-भाषा/भाषाओं में केवल प्रतिशब्द दिए जाते हैं; इसके साथ किन्हीं शब्दकोशों में व्याख्या भी लक्ष्य-भाषा/भाषाओं में दी जाती है। विश्व की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में एकभाषी/द्विभाषी/बहुभाषी शब्दकोश मिल जाते हैं; जैसे एकभाषी शब्दकोश के रूप में नागरीप्रचारिणी सभा के हिन्दी शब्दसागर, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के मानक हिन्दी कोश आदि का उल्लेख किया जा सकता है; जबकि द्विभाषी/बहुभाषी शब्दकोशों में कामिल बुल्के का अंग्रेजी-हिन्दी कोश, लोकभारती उर्दू-हिन्दी-अंग्रेजी त्रिभाषी कोश आदि उल्लेखनीय हैं।
  २. प्रयोग कोश – ऐसे कोशों में विभिन्न भाषिक इकाइयों का सही प्रयोग बतलाया जाता है। अतः ये कोश अन्य भाषा-भाषियों के लिए तो उपयोगी होते ही हैं तथा

अनेक अवसरों पर यह उनके लिए भी उपयोगी सिद्ध होते हैं जिनकी मातृभाषा उनमें होती है। चूँकि इन कोशों में विभिन्न भाषिक इकाइयों के प्रयोगगत सूक्ष्म अंतर स्पष्ट किए जाते हैं। हिन्दी में ऐसे प्रयोग कोशों की श्रेणी में रामचन्द्र वर्मा का शब्दार्थ विचार कोश, बद्रीनाथ कपूर का हिन्दी प्रयोग कोश आदि उल्लेखनीय हैं।

३. उच्चारण कोश – किसी भाषा और लिपि की आदर्श स्थिति तो यह है कि उसके उच्चरित रूप और लिखित रूप में कोई अन्तर न हो; पर व्यवहार में यह संभव हो नहीं पाता। इसके अनेक कारण हैं। एक प्रमुख कारण यह है कि भाषा का लिखित रूप तो बहुत समय तक एक-सा बना रहता है, पर उच्चरित रूप में बराबर अंतर आता जाता है। कुछ लिपियों में वर्णमाला के प्रत्येक वर्ण का स्वतंत्र उच्चारण कुछ और है किन्तु शब्द में उनका प्रयोग होने पर उच्चारण कुछ और हो जाता है। ऐसे में शब्दों के शुद्ध उच्चारण सिखाने की आवश्यकता बनी रहती है। देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी में उच्चारण की समस्या ऐसी जटिल नहीं है, अतः हिन्दी में उच्चारण कोशों का अभाव है। बहरहाल, इस संदर्भ में हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में उपलब्ध भोलानाथ तिवारी के हिन्दी उच्चारण कोश का उल्लेख कहीं-कहीं विश्वसनीय रूप से देखने में आता है।

४. ऐतिहासिक कोश – किसी भी भाषा में अनेक ऐसे शब्द होते हैं जो प्रचलन से हट जाते हैं और कई नए शब्द प्रयोग में आने लगते हैं। जबकि कुछ शब्दों के अर्थ का विस्तार हो जाता है तो कुछ शब्दों के अर्थ का संकोच हो जाता है। कई बार ऐसा भी होता है कि कुछ शब्दों की वर्तनी बदल जाती है। ऐसी ही समस्याओं को हल करने के लिए ऐतिहासिक शब्दकोशों का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार के शब्दकोशों में उन शब्दों को भी सम्मिलित किया जाता है जो प्रचलन से हट चुके हैं किन्तु पुराने साहित्य में जिनका प्रयोग हुआ है। साथ में इनमें जिन शब्दों के अर्थ का विस्तार या संकोच हुआ है उनके सभी अर्थ यथासंभव ऐतिहासिक क्रम में दिए जाते हैं। हिन्दी में अलग से ऐसे कोश तो नहीं हैं किन्तु हिन्दी शब्दसागर और मानक हिन्दी कोश कुछ सीमा तक इसकी पूर्ति अवश्य करते हैं।

५. पर्याय/विलोम कोश – ऐसे शब्दकोशों में शब्दों की व्याख्या न देकर केवल उनके पर्याय/विलोम शब्द एक साथ दे दिए जाते हैं। इसका प्रयोजन यह होता है कि सभी

मिलते-जुलते शब्द प्रयोक्ता को एक साथ मिल जाएँ ताकि वह उनमें से अपनी रुचि/आवश्यकता के अनुरूप सर्वाधिक उपयुक्त शब्द का चयन कर ले। हिन्दी में भोलानाथ तिवारी का बृहद् पर्यायवाची कोश का उल्लेख इस श्रेणी के अंतर्गत किया जा सकता है। आधुनिक युग में ऐसे कोशों को 'थिसॉरस' कहते हैं, जिनमें पर्यायवाची शब्दों के साथ उस वर्ग के कई विलोम शब्दों का भी उल्लेख किया जाता है। हिन्दी में अरविंद कुमार का 'समांतर कोश' वस्तुतः इसी प्रकार से बनाया गया है; प्रसंगवश यहाँ यह उल्लेखनीय कि इससे पहले श्रीकृष्ण शुक्ल विशारद का हिन्दी पर्यायवाची कोश भी इसी तरह बनाया गया था।

६. व्युत्पत्ति कोश – किसी भी भाषा में शब्दों की व्युत्पत्ति स्पष्ट करने के लिए इस प्रकार के कोश बनाए जाते हैं। प्रत्येक भाषा में कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति तो सरलता से स्पष्ट की जा सकती है किन्तु अनेक शब्द ऐसे होते हैं जिनकी व्युत्पत्ति विवादास्पद होती है। व्युत्पत्ति कोशों में इन विवादों का भी उल्लेख किया जाता है; जिसका उद्देश्य निहित है कि किसी भी शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में अब तक जो चिंतन किया गया है, उससे कोश के प्रयोक्ता अवगत हो जाएँ। हिन्दी में मौलिक रूप से व्युत्पत्तिपरक ऐसे अच्छे कोशों की आवश्यकता आज भी बनी हुई है।

७. मुहावरा-कहावत कोश – ऐसे कोशों में किसी भाषा में प्रयुक्त होने वाले सभी मुहावरों-कहावतों का संकलन करके उनके अर्थ, प्रयोग आदि का निर्देश कर दिया जाता है। हिन्दी में भोलानाथ तिवारी का हिन्दी मुहावरा कोश और रामदहिन मिश्र का बृहत् मुहावरा कोश इसी श्रेणी के कुछ उल्लेखनीय कोश हैं।

८. संक्षेपाक्षर कोश – मनुष्य की सहज वृत्ति होती है कि वह लंबे-लंबे शब्दों को छोटा करने की कोशिश करता है चूँकि ज्ञात हो कि इस प्रकार बोलने-लिखने में समय एवं स्थान की बचत होती है। संक्षेपाक्षर कोश ऐसी आवश्यकताओं और समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने में सहायता करते हैं। हिन्दी में संक्षेपाक्षरों का प्रयोग अभी बहुत कम होता है, इसलिए अलग से कोई संक्षेपाक्षर कोश भी अभी इसमें नहीं बन पाया है। किन्तु हिन्दी में राजनीतिक दलों के नामों में संक्षेपाक्षरों का प्रयोग ख़ूब होने लगा है और राजनीति में कुछ ऐसे कूट शब्दों का भी प्रयोग होता आया है जो वस्तुतः एक संक्षेपाक्षर ही हैं। साथ ही रेलवे, बैंक आदि में भी कुछ

संक्षेपाक्षरों का प्रयोग बहुत बढ़ गया है। अतः ऐसे में आने वाले समय में हिन्दी में भी संक्षेपाक्षर कोशों के निर्माण की आवश्यकता अवश्य महसूस की जाएगी।

- विषय कोश : इसके अंतर्गत उन सभी कोशों को शामिल किया जाता है जिनमें किसी एक विषय से संबंधित लगभग सभी आवश्यक जानकारी दे देने का प्रयास किया जाता हो। बहरहाल, इन कोशों में शामिल सामग्री के संयोजन के अनुरूप कोश का नामकरण भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जा सकता है। चूँकि ज्ञान-विज्ञान या लेखन के किसी एक क्षेत्र का चयन करके उससे संबंधित समस्त सामग्री की जानकारी देना ही विषय कोश का उद्देश्य होता है, इसलिए कह सकते हैं कि विषय कोश भी कई प्रकार के होते हैं; जैसे –

  १. परिभाषा कोश/पारिभाषिक कोश – प्रत्येक भाषा में उसकी प्रयुक्तियों में विस्तार के साथ-साथ नए-नए पारिभाषिक तकनीकी शब्दों का विकास भी होता ही रहता है। अतः पारिभाषिक शब्दावली से तात्पर्य यहाँ उन शब्दों से है, जो ज्ञान-विज्ञान और प्रयुक्ति की किसी विशेष शाखा के अर्थ-संदर्भों के अंतर्गत ज़रूरत के अनुसार प्रयोग किए जाते हैं; जिस कारण प्रशासन, विधि, कृषि, विज्ञान, खेल, संचार आदि विभिन्न क्षेत्रों के भी पारिभाषिक शब्दों के अपने-अपने कोश कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रशासनिक शब्दकोश, बैंकिंग शब्दकोश, शिक्षा कोश, कंप्यूटर कोश आदि का निर्माण भी होता रहा है; ऐसे कोशों में किसी एक विषय जैसे इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, विधि, मनोविज्ञान आदि या किसी एक ही समूह के कई विषयों जैसे मानविकी, विज्ञान आदि के केवल पारिभाषिक शब्दों की विवेचना की जाती है। ऐसे सभी कोश एकभाषी और द्विभाषी दोनों प्रकार के होते हैं। इनमें शामिल द्विभाषी कोश भी दो प्रकार के होते हैं; एक में पारिभाषिक शब्दों के लक्ष्यभाषा में केवल पर्याय दिए जाते हैं तथा दूसरे प्रकार में पारिभाषिक शब्दों की पहले व्याख्या (व्याख्या स्रोतभाषा अथवा लक्ष्यभाषा दोनों में से किसी एक में याकि दोनों में दी जाती है) और फिर बाद में लक्ष्यभाषा में उसका पर्यायवाची शब्द दिया जाता है; जैसे विधि शब्दावली, बैंकिंग शब्दावली, मानविकी परिभाषा कोश, रसायन परिभाषा कोश, भूगोल पारिभाषिकी इत्यादि इसी प्रकार के कुछ पारिभाषिक कोश कहलाते हैं।

२. कथाकोश/पौराणिक कथा कोश – इस प्रकार के अधिकांश कोशों में ऐसी कुछ कथाओं का संकलन किया जाता है जिनकी चर्चा विभिन्न ग्रन्थों, पुराणों आदि में हुई है और जिनका संदर्भ साहित्य में कहीं-कहीं आता रहता है। बहरहाल, चूँकि अनेक कथाओं के रूप अकसर अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग मिलते हैं ऐसे में इस प्रकार के कोशों में ऐसी जानकारी एक साथ मिल जाती है। हिन्दी में जयप्रकाश भारती का प्राचीन कथा कोश, राणा प्रताप शर्मा का पौराणिक कोश, उषा पुरी का मिथक कोश, जय नारायण कौशिक का लोक नाट्य कथा-कोश आदि इस श्रेणी के ऐसे ही कुछ उल्लेखनीय कोश ग्रन्थ हैं।

३. संस्कृति कोश/धर्म कोश – किसी देश की सभ्यता से जुड़ी संस्कृति-धर्म आदि की समस्त बातों का ज्ञान किसी एक व्यक्ति के लिए जान पाना इतना सरल और संभव नहीं है। इसी का निराकरण करने की दृष्टि से संबंधित विपुल साहित्य का अध्ययन न कर पाने वाले सामान्य व्यक्तियों की सुविधा के लिए विद्वानों ने संस्कृति कोश या धर्म कोश बनाए हैं; जैसे उदाहराणार्थ देखें तो हिन्दी में हरदेव बाहरी का प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश, राजबली पाण्डेय का हिन्दू धर्मकोश आदि ऐसे ही कुछ उल्लेखनीय महत्त्वपूर्ण कोश-ग्रन्थ हैं।

- साहित्य कोश : ऐसे कोशों के माध्यम से किसी एक अथवा कई भाषाओं के साहित्य/साहित्यकारों, उसकी प्रवृतियों, विभिन्न पक्षों, समस्याओं इत्यादि का एक साथ परिचय प्रस्तुत किया जाता है। हिन्दी में धीरेन्द्र वर्मा का हिन्दी साहित्य कोश, सुधाकर पाण्डेय का हिन्दी विश्व साहित्य कोश आदि इसी प्रकार के कोश हैं।
- साहित्यकार/कृति कोश : ऐसे सभी कोश किसी एक साहित्यकार के समग्र लेखन को शामिल करते हुए बनाए जाते हैं अर्थात् किसी एक रचनाकार की कृतियों में प्रयुक्त सभी शब्दों को संदर्भ सहित अकारादिक्रम में प्रस्तुत करते हुए उनके अर्थ की व्याख्या देना, वस्तुतः ऐसे ही वैयक्तिक साहित्यकार कोश के अंतर्गत शामिल किया जाता है। हिन्दी में वासुदेव सिंह का कबीर काव्य कोश, भोलानाथ तिवारी संपादित और हरगोविंद तिवारी संकलित तुलसी-शब्दसागर, बच्चूलाल अवस्थी का दो भागों में संपादित तुलसी शब्द-कोश, सुधाकर पाण्डेय का प्रसाद कोश के अतिरिक्त अन्य कई महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों के साहित्य पर आधारित कोशों उदाहरणार्थ निराला काव्यकोश, प्रसाद

काव्यकोश, जायसी कोश आदि को भी ऐसे कुछ-एक साहित्यकार कोशों का ही उदाहरण कहा जा सकता हैं। जबकि कृति कोश किसी साहित्यकार की किसी एक ही रचना अथवा उसके साथ के एक युग विशेष पर केंद्रित होते हैं अर्थात् किसी लेखक की किसी एक कृति में प्रयुक्त शब्दों या विचारों की अकारादिक्रम में सम्पूर्ण अर्थ चर्चा कृति अथवा पुस्तक कोश में होती है; जैसे हिन्दी में महावीर प्रसाद मालवीय का विनय-कोश, गया प्रसाद शर्मा का मानस के तत्सम शब्द, शकुंतला गुप्ता का कामायनी कोश, कमलेश वर्मा और सुचिता वर्मा का छायावादी काव्य कोश आदि ऐसे ही कोशों के कुछ उदाहरण हैं।

- अध्येता कोश : किसी एक भाषा के माध्यम से किसी दूसरी भाषा को सीखने वाले जिस कोश का उपयोग करते हैं, वह अध्येता कोश कहलाता है। अतः किसी भाषा को सीखने वालों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिखे गए ऐसे अधिकांश कोश अध्येता कोशों की श्रेणी में आते हैं। केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा ने भारतीय भाषाओं में शैक्षणिक उद्देश्यों की दृष्टि से कई भाषाओं/बोलियों के शिक्षण-प्रशिक्षण हेतु बहुमूल्य अध्येता कोश तैयार किए हैं; जैसे हिंदी माध्यम से तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, मराठी, पंजाबी जैसी कुछ प्रमुख भाषाएँ सीखने वालों के लिए हिंदी-तेलुगु/हिंदी-कन्नड़/हिंदी-मलयालम/हिंदी-मराठी/हिंदी-पंजाबी अध्येता कोश असल में इसी शृंखला के अंतर्गत तैयार किए गए कुछ उत्कृष्ट अध्येता कोश हैं।

- सूक्ति कोश : किसी एक महापुरुष अथवा अनेक महापुरुषों के विभिन्न ग्रन्थों से एकत्र सूक्तियों का चयन करके ऐसे कोश तैयार किए जाते हैं। इन कोशों में शीर्षक विषयवार निश्चित कर दिए जाते हैं और सूक्तियों का संयोजन उसी के अनुसार तैयार किया जाता है। ऐसे कुछ सूक्ति कोशों को सुभाषित संग्रह भी कहा जाता है। हिन्दी में श्याम बहादुर वर्मा का बृहद् विश्व सूक्ति कोश, हरिवंश राय शर्मा का साहित्यिक सुभाषित कोश, अनिल कुमार का प्रेमचंद सूक्ति कोश आदि इस श्रेणी के ऐसे ही कुछ अच्छे कोश हैं।

- विश्वकोश : विश्वकोश में वस्तुतः इस बात का विशेष प्रयास किया जाता है कि संबद्ध विषय पर उपलब्ध सभी जानकारी एक ही स्थान पर प्रस्तुत कर दी जाए। ऐसे कोश में ज्ञान-विज्ञान की सभी दिशाओं में व्यवहृत शब्दों का विवरण पूरी प्रामाणिकता एवं जानकारी के साथ उपलब्ध रहता है। संभवतः यह ठीक कहा गया है कि मानव सभ्यता

के इतिहास में ज्ञान-विज्ञान का इतना विकास हुआ है कि सारा ज्ञान किसी भी विद्वान के पास उपलब्ध नहीं हो सकता। अतः आज इस उक्त संदर्भ में विश्वकोश जैसे ग्रन्थों की उपयोगिता और भी अधिक बढ़ गई है। यहाँ कहना न होगा कि वस्तुतः विश्वकोश भी पिछले लगभग दो हजार वर्ष से बन रहे हैं। चीन, अरब, जापान आदि में इसकी समृद्ध परम्परा रही है किन्तु यूरोप में इसकी शुरुआत बाद में ही हुई है। विश्वकोश में ज्ञान का भण्डार होता है चूँकि इनमें प्रत्येक विषय से संबंधित महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रयोक्ता को संक्षेप में मिल जाती है। बहरहाल, आज आधुनिक युग में ज्ञान का प्रभूत विकास होने कारण अब एक-एक विषय पर आधारित विश्वकोश भी बनने लगे हैं। नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा भी एक हिन्दी विश्वकोश प्रकाशित किया गया है। इसके अतिरिक्त नगेन्द्रनाथ बसु ने भी बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक हिन्दी विश्वकोश प्रकाशित कराया था; जिसका पुनर्मुद्रण बीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में बी॰ आर॰ पब्लिशर्स कार्पोरेशन द्वारा किया है। इसी प्रकार विद्यार्थियों और सामान्य पाठकों की दृष्टि से बालकृष्ण ने भी एक छोटा-सा 'विश्वकोश' तैयार किया है, जिसे राजपाल एंड सन्ज़ ने प्रकाशित किया है। अब कई अन्य विषयों के विश्वकोश भी तैयार किए जा रहे हैं; जैसे अभय कुमार दुबे सम्पादित समाज-विज्ञान विश्वकोश जो राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है।

बहरहाल, उपरोक्त उल्लिखित कोशों के प्रमुख प्रकार के आधार पर ही यहाँ यह कहा जा सकता है कि कोश मूलतः तीन प्रकार के होते हैं – व्यक्ति कोश, पुस्तक कोश और भाषा कोश। व्यक्ति कोश किसी एक व्यक्ति के साहित्य में प्रयुक्त शब्दों का कोश होता है; पुस्तक कोश वह है जिन्हें केवल एक पुस्तक में प्रयुक्त शब्दों के आधार पर तैयार किया जाता है और भाषा कोश किसी एक अथवा एक से अधिक बोली/भाषा के भी हो सकते हैं। किन्तु भाषा कोशों में एक भाषा कोश भी मुख्यतः तीन प्रकार के अर्थात् वर्णनात्मक, तुलनात्मक और ऐतिहासिक रूप के हो सकते हैं। जहाँ वर्णनात्मक कोश में किसी भाषा में किसी एक काल में प्रयुक्त सारे शब्दों और उनके सारे अर्थों को दिया जाता है। ऐसे में यह कहना ठीक होगा कि वर्णनात्मक कोश में अर्थ प्रचलन के आधार पर क्रमबद्ध किए जाने चाहिए अर्थात् जो अर्थ सबसे अधिक प्रचलित हो उसे कोश में सबसे पहले और जो सबसे कम प्रचलित हो उसे बाद में देना चाहिए। भोलानाथ तिवारी का इस संदर्भ में मत है कि कभी-कभी अर्थ के कम या अधिक प्रचलन के संबंध में विवाद भी खड़ा हो सकता है और

ऐसी स्थिति में वस्तुतः विवादग्रस्त अर्थों में किसी को भी आगे-पीछे रखा जा सकता है।[26] तुलनात्मक एकभाषा कोशों में भी यह शैली स्वीकार की ही जा सकती है। किसी भाषा का ऐतिहासिक कोश उसके विकास आदि को समझने की दृष्टि से सहायक होता है। इस प्रकार के कोश में केवल प्रचलित शब्दों अथवा उसके प्रचलित अर्थों को ही न लेकर सारे शब्दों और उनके सारे अर्थों को ले लिया जाता है; जैसे वर्णनात्मक कोश में शब्दों के अर्थ प्रचलन के आधार पर क्रमबद्ध किए जाते हैं किन्तु ऐतिहासिक कोश में शब्दों के अर्थ अपने इतिहास के आधार पर ही क्रमबद्ध रखे जाते हैं। भोलानाथ तिवारी के अनुसार इस प्रकार का कोश बनाने के लिए आवश्यक है कि उस भाषा का साहित्य उपलब्ध हो। अतः ऐसे कोश के निर्माण के पूर्व दो बातें आवश्यक हैं – पहली यह कि उस भाषा में प्राप्त सभी ग्रन्थों का पाठ पाठालोचन के आधार पर निश्चित कर लिया जाए। यहाँ ध्यातव्य है कि उसमें शामिल प्रक्षिप्त अंशों को निकाल फेंकने की बिलकुल आवश्यकता नहीं है, अपितु उनके रचे जाने का काल-निर्धारण करके, उन्हें भी उस काल या सदी की रचना मान कर उसके समकालीन साहित्य के साथ रख लिया जाए। दूसरा यह कि सभी रचनाओं का काल निश्चित कर लिया जाए।[27] इन दो बातों को निश्चित कर लेने पर किस सदी में, कौन-सा शब्द, किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ, इसका निश्चय करना सरल हो जाएगा। और इस आधार पर ऐतिहासिक कोश सरलता से बनाया जा सकेगा। किन्तु ऐसे कोश को हर दृष्टि से बहुत पूर्ण नहीं बनाया जा सकता, चूँकि तैयार होने के बाद भी नई खोजों के आधार पर यदि कोई नई रचना सामने आ गई, पुरानी रचना का नया पाठ आ गया अथवा किसी रचना का काल कुछ और सिद्ध हो गया तो उनके कारण कोश में पर्याप्त परिवर्तन करना होगा।[28] यही कारण है कि किसी भी आधुनिक भारतीय भाषा में अभी तक इस प्रकार का ऐतिहासिक कोश बनाने का प्रयास नहीं हुआ। अँगरेजी में 'ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी' ऐतिहासिक कोशों में अब तक का किया गया एक सर्वोत्तम प्रयास है। संस्कृत में मोनियर विलिएम्स का कोश इसी प्रकार का है, यद्यपि वह अपने स्तर पर बहुत कुछ अपूर्ण माना जाता है। उपरोक्त बातों के कहने का तात्पर्य मात्र यह है कि कोशों के सभी प्रमुख प्रकारों का अध्ययन कोश-रचनाओं

---

[26] भोलानाथ तिवारी, *भाषा विज्ञान*, वही, पृष्ठ - 391

[27] वही, पृष्ठ - 391-392

[28] वही, पृष्ठ - 392

के विश्लेषण का ही एक प्रमुख पड़ाव है, जो इस शोध अध्ययन का एक आवश्यक अंग भी है। इस दृष्टि से उक्त तथ्यों के अध्ययन का प्रयास कोश-रचनाओं के विश्लेषण के संदर्भों में ही किया जाएगा।

कोश-रचनाओं के विश्लेषण का आधार

कोश विषयक अध्ययन की दृष्टि से यह जानना महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि कोश-रचनाओं के विश्लेषण का आधार क्या हो ? ऐसे में कोश-रचनाओं के विश्लेषण के आधारों की पड़ताल करना, कोश-निर्माण परम्परा के मूल्यांकन का ही वस्तुतः एक अभिन्न अंग समझा जा सकता है। अतः शब्दार्थ प्रविष्टियों के अतिरिक्त कोश में दी गई परिशिष्ट विषयक सूचनाएँ एवं उसकी उपयोगिता, कोश-निर्माण का उद्देश्य और कोश संपादक अथवा संपादक मण्डल की भूमिकाओं की आवश्यकता से परिचित होना भी वस्तुतः यहाँ कोश-रचनाओं के विश्लेषण के आधारों से जुड़ जाता है। अतः इस दृष्टि से कोश-रचनाओं की वास्तविक पहचान, उसके विश्लेषण के आधारों के साथ, कोश-रचना कर्म से जुड़े सभी पक्षों और उसके कोशकार के व्यक्तित्व से अविभाज्य तौर पर जुड़ा होता है। बहरहाल, यहाँ यह उल्लेखनीय है – और जिसकी चर्चा नाथू राम कालभोर ने अपने शोध में भी की है[29] – कि एक कोशकार में आवश्यक रूप से निम्नलिखित योग्यताएँ जैसे शारीरिक और मानसिक सक्षमता; कोश विषयक अध्ययन से जुड़ी शैक्षणिक योग्यता; कोश कार्य करने की व्यावसायिक समझ; व्यक्तित्व में आचरण पुस्तक प्रेम, विश्वसनीयता, परिश्रमी, अच्छी स्मरण शक्ति, अध्ययन गति, साधनपूर्णता, तर्क कौशल, चैतन्यता, चतुराई, यथाकाल व्यवस्था, ईमानदारी, उत्तरदायित्व, मिलनसार, वाक् पटुता, सामर्थ्य, निर्भरता, समय का पालन, काम पर तैनात, सहयोगिता, मंत्रणा, समाज में रुचि, काम में रुचि, बातूनी, मानसिक तत्परता, मानसिक विलक्षणता, भाषण क्षमता और उसके साथ व्यवहार कुशलता जैसे सभी आवश्यक गुण; अनुसंधान, प्रकाशन तथा व्यवसाय का अनुभव; स्वचालित और श्रव्य-दृश्य सामग्री का प्रयोग आदि करने की क्षमता इस स्तर पर अनिवार्य होती है। ऐसे में हमें कोश-रचना विषयक अध्ययन में कोशकारों के उपरोक्त पक्षों अथवा योग्यताओं का भी ध्यान रखना चाहिए।

---

[29] नाथू राम कालभोर, *हिन्दी कोश साहित्य : समीक्षात्मक अध्ययन*, वही, अध्याय १, पृष्ठ - 54-60

कोश विश्लेषण के आधारों में कोशों की शब्दावली का अध्ययन करना भी उससे जुड़ा हुआ है; जिसमें शब्दों का संकलन एवं उनका नियोजन किए जाने की प्रक्रिया तथा कोश-विज्ञान से सम्बद्ध कई अन्य आवश्यक तत्त्वों के प्रस्तुतीकरण की प्रणालियाँ भी यहाँ महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य हो जाती हैं। अतः कोश विषयक कुछ कारक जैसे कोश में दिए गए अर्थ संबंधी (कोशों में शब्दों के अर्थ समझाने, उनके भावों को व्यक्त करने एवं स्वानुभूत प्रभावों को पाठकों तक पहुँचाने की की गई तनिक भी चेष्टा) सांस्कृतिक संदर्भों का उल्लेख (शास्त्रीय संस्कृति संबंधी शब्दावली के संकेत तथा लोक संस्कृति से जुड़े पक्ष) और इसके साथ ऐसे कोशों का कोश-रचना क्षेत्र में मौलिक योगदान आदि का किया गया विश्लेषण भी इन आधारों में शामिल समझना चाहिए। आजकल शब्दों की उसी या किसी अन्य भाषा में मुख्य रूप से व्याख्याएँ देने के अतिरिक्त वर्तमान कोशों में किसी भाषा अथवा उसके अंग-विशेष के भिन्न-भिन्न शब्दों का वर्णक्रम, उच्चारण, अर्थ, प्रयोग, निरुक्ति/व्युत्पत्ति और व्याकरणिक रूपों का भी यथासम्भव निर्देश किया रहता है। ऐसे में कोशों में दिया गया वर्णक्रम/अकारादिक्रम भी कोश-रचनाओं के विश्लेषण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण आधार माना जा सकता है। चूँकि कोश में शामिल प्रत्येक शब्द का अपना संसार होता है, अपनी भंगिमा होती है और अपना एक अलग अस्तित्व होता है। उसका अर्थ उसके शाब्दिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक आदि संदर्भों तथा परिवेशों के सम्मिलित रूप पर आधारित होता है।[30] इसलिए जब कोशकार किसी भी शब्द के अर्थ का सांगोपांग विवेचन करता है तो एक प्रकार से वह उस शब्दानुभूति से जुड़ जाता है जिसके अनुसार शब्द को ब्रह्म तक कहा गया है। जबकि ब्रह्म का ज्ञान व्यक्त/अव्यक्त स्वरूप में अलौकिक, अकथ और अवर्णनीय अनुभूति का हेतु होता है; अतः शब्द के संबंध में भी यही बातें कही जा सकती हैं।

हिन्दी के कुछ कोशों में कोश उपयोग के नियम जैसे वर्णानुक्रम, स्वर की मात्राएँ, अनुस्वार एवं अनुनासिक, संयुक्त व्यंजन वर्ण इत्यादि कई बार कोशकार द्वारा पहले से ही बतला दिए जाते हैं; जैसे कोई भी कोश देखें तो "हिन्दी में अनुनासिक चिह्न एक प्रकार से अर्ध अनुस्वार माना जाता है। अनुनासिक को वास्तव में अर्ध नासिक्य और अनुस्वार को

[30] राम अधार सिंह, *कोश विज्ञान : सिद्धान्त एवं प्रयोग*, वही, शब्दकोश विविध नाम : विविध प्रयोग, पृष्ठ - xi

पूर्ण नासिक्य कहना चाहिए ।"[31] अतः कोशों में भी शब्दों का क्रम अनुनासिक और अनुस्वार इन दोनों से प्रभावित होता रहता है । इसके अतिरिक्त कोशों में संक्षिप्तियों का अधिक महत्त्व होता है; जिनका उल्लेख कोई भी कोशकार कोश की संकेतिका के अंतर्गत पहले से ही कर देता है ताकि कोश प्रयोक्ता को असुविधा न हो ।

अब कोश में शब्दार्थ देने के विषय से जुड़ी थोड़ी चर्चा यहाँ आवश्यक है । वस्तुतः ज्ञात हो कि किसी भी कोश में अर्थ देने की निम्नलिखित पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं अर्थात् कोशों में अर्थ अमूमन तीन प्रकार से दिए जाते हैं – शब्द द्वारा, पदबंध द्वारा और वाक्य द्वारा । इसके अतिरिक्त किसी कोश में अर्थ देने की एक अन्य दृष्टि से निम्नलिखित पद्धतियाँ हो सकती हैं; जैसे पर्याय (समानार्थी), व्याख्या (पदबंध या वाक्य द्वारा शब्दों की व्याख्या), वर्णन (कुछ शब्दों का कोश में केवल वर्णन ही प्रस्तुत होता है, व्याख्या अथवा पर्याय नहीं), परिचय (पौराणिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक आदि नामों से जुड़े शब्दों का परिचय दिया जाता है), परिभाषा (कोश में पारिभाषिक शब्दों की परिभाषा भी दी जाती है), विवेचन (विषय कोश और विश्वकोश में तो प्रायः प्रविष्ट शब्दों का विवेचन ही किया जाता है) इत्यादि । किन्तु कोश में दिए गए कुछ शब्द ऐसे भी हो सकते हैं जिनमें उक्त इन पाँचों में से एक से अधिक लक्षण प्रस्तुत होते हों । अतः कोशकार को ऐसे शब्दों से बचना चाहिए जो अर्थ देने की दृष्टि से शब्द का अधिक बोधगम्य न बनाता हो । चूँकि व्यर्थ में कोश का कलेवर बढ़ाने से क्या लाभ ? आख़िरकार एक प्रयोक्ता के लिए कोश की संकल्पना दृष्टि क्या है ? ये धारणा कोशकार की संकल्पना दृष्टि में स्पष्ट होनी ही चाहिए । ऐसे में अब आगे प्रयोक्ताओं के लिए कोश का क्या कार्य होता है, इसको समझने का प्रयास करेंगे ।

कोश के कार्यों के विषय में चर्चा करें तो नाथू राम कालभोर अपने शोध में इसका उल्लेख करते हुए बतलाते हैं कि सामान्यतः प्रयोक्ताओं की दृष्टि से किसी भी कोश-ग्रन्थ के ऐसे तो अनेक कार्य होते हैं[32] जिनके विषय में जानकारी की अपेक्षा एक अच्छे कोश से अवश्य ही की जाती है; किन्तु यहाँ हम कोश-रचनाओं के विश्लेषण या उसके उपयोग हेतु

---

[31] सूर्यप्रसाद दीक्षित, *हिंदी शब्दकोश - निर्माण की दिशाएँ*, दिनेश चंद्र चमोला (संपादक), *विकल्प (शब्दावली विशेषांक)*, भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून, वर्ष : 22, जुलाई-सितंबर : 2012, पृष्ठ - 20

[32] नाथू राम कालभोर, *हिन्दी कोश साहित्य : समीक्षात्मक अध्ययन*, वही, अध्याय १, पृष्ठ - 6-7

अपेक्षित कुछ-एक प्रमुख कार्यों के प्राथमिक परिचय का ही प्रयास करेंगे, जैसे इस संदर्भ में कोश-रचनाओं के विश्लेषण के निम्नलिखित उल्लेखनीय आधार वस्तुतः शोध-अध्ययन की दृष्टि से विचारणीय हो सकते हैं –

१. वर्णक्रम की जानकारी – प्रविष्टिगत वर्णक्रम को देखकर ही कोश का उपयोग किया जाता है। अतः एक कोशकार को इस दृष्टि से सजग होकर कार्य करना चाहिए कि कौन-सा वर्ण कहाँ पर आएगा अथवा आना चाहिए।
२. वर्तनी – मानकीकरण की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण है चूँकि कोश का उपयोग प्रयोक्ता शब्दों की मानकीकृत वर्तनी देखने के लिए भी करता है। कोशकार का यह दायित्व इस क्षेत्र में आजीवन चलने वाली उस सतत-प्रक्रिया का हिस्सा है, जिसमें वर्तनी निर्धारण का दायित्व कोश उपयोग के साथ जुड़ा हुआ है । इसलिए शब्दों के प्रचलन की मानक दृष्टियों को ध्यान में रखते हुए भी कोशों का संशोधन एवं परिवर्द्धन होते रहना चाहिए ताकि उसे एक संदर्भ-ग्रन्थ के रूप में देखा जा सके।
३. उच्चारण – शब्द का सही उच्चारण करने के लिए संकेत ध्वनि-निर्देशक अथवा स्वर-भेद चिह्न (Diacritical Mark) का दिया जाना भी कोशगत रूप से अत्यंत आवश्यक समझा जाता है। अभी तक हिन्दी के किसी समभाषी कोशों में इसका चलन नहीं है, किन्तु कई हिन्दीतर भाषाभाषी इस कमी को अनुभव करते हैं।
४. व्याकरण – कोश में शब्द की संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण, लिंग, वचन, प्रत्यय तथा अव्यय इत्यादि विषयक जानकारी का दिया जाना भी आवश्यक है ताकि शब्द का प्रयोग उचित रूप से किया जाना संभव हो सके।
५. व्युत्पत्ति – शब्दों की व्युत्पत्ति से जुड़ा उल्लेख, उसके धातुगत रूप का दिया जाना भी एक महत्त्वपूर्ण पहलू है ताकि कोश प्रयोक्ता शब्दार्थ के मूल तक पहुँच सके।
६. इतिहास – कौन-सा शब्द कब अस्तित्व में आया, कब तक चला, चलन से कब हट गया, कब उसका अर्थ बदल गया तथा कब उसका रूप-परिवर्तन हुआ आदि की सूचना देने का कार्य भी कोशकार को आवश्यक रूप से करना चाहिए।
७. अर्थ – अर्थ निर्धारित करना शब्दकोश का महत्त्वपूर्ण किन्तु जटिल प्रक्रिया वाला कार्य है। किसी शब्द के गलत अर्थ से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। अतः प्रयोक्ता को बतलाने हेतु कोशकार को शब्दों के सटीक अर्थों का चयन करना चाहिए।

८. प्रयोग – शब्दों के प्रयोग साहित्यिक उद्धरणों द्वारा पुष्ट किए जाने चाहिए ताकि कोश में शब्दार्थ निर्धारण का कार्य प्रामाणिक तथा विश्वसनीय बन सके।

९. संकेत चिह्न – संकेतिका के माध्यम से निर्देशित किए गए संकेत चिह्न विषयक कार्य में कोशकार को सजग रहना चाहिए। चूँकि संकेत चिह्नों के प्रयोग से प्रयोक्ता के समय, धन और स्थान की बचत होती है; जिससे कोश की बोधगम्यता बढ़ती है।

१०. चित्र – ये कोश प्रयोक्ताओं की सहूलियत की दृष्टि से प्रभावी और उपयोगी होते हैं अर्थात् ऐसे में कोशकार को शब्दों की व्यावहारिकता की दृष्टि से चित्र आदि का प्रयोग देना और बतलाना चाहिए।

११. स्तर तथा विषयभेद – कोश कार्य की उपयोगिता की दृष्टि से उसके स्तर तथा विषयभेद का निर्धारण आवश्यक है; जैसे स्कूल, कॉलेज, सामान्य जानकारी, शोधपरक या ऐसे ही किसी विषय विशेष की आवश्यकता को लक्ष्य कर के कोशों के स्तर तथा विषयभेद का निर्धारित कार्य सम्पन्न करना कोश के महत्त्व को बढ़ा देता है।

१२. परिभाषाएँ – किसी शब्द विशेष की परिभाषा देते हुए स्पष्टता और संक्षिप्तता का ध्यान रखना चाहिए ताकि शब्द की परिभाषा प्रभावी तथा बोधगम्य हो यानी प्रयोक्ता को कम से कम उस परिभाषा को समझने के लिए कहीं और उसका अर्थ देखने की आवश्यकता न पड़े जिससे प्रयोक्ता के लिए उस कोश की विश्वसनीय प्रामाणिकता व्यावहारिक सिद्ध हो जाए।

१३. मुहावरे, पद तथा लोकोक्तियाँ – शब्दों से जुड़े मुहावरे, पद तथा लोकोक्तियाँ स्थानीय प्रयोग एवं अर्थ के साथ कोश में होना देना चाहिए ताकि कोश प्रयोक्ता बोलचाल, लेखन, संवाद और भाषण आदि में उनका उचित प्रयोग कर सके।

१४. विलोम – किसी कोश में शब्दों के पर्याय अथवा समानार्थी दिखाने के अतिरिक्त विलोम शब्द देने का कार्य भी अवश्य किया जाना चाहिए ताकि शब्द विषयक बोधगम्यता की दृष्टि से कोश के प्रयोक्ता को शब्द-प्रविष्टियों को देखने में वस्तुतः थोड़ी-बहुत आसानी अवश्य हो जाए।

इन्हीं उक्त पहलुओं के आधार पर कोशकार्य विषयक चर्चा पूर्ण हुई। और कोशों के उपयोग की कई महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं को कोशकार्य से जोड़कर समझने का प्रयास

मुख्य पड़ाव पर पहुँचा। अब कोश-विश्लेषण विषयक अध्ययन से प्राप्त और ज्ञात उक्त सभी प्रमुख आधारों एवं मान्यताओं को ध्यान में रखकर ही इस अध्ययन में रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के विश्लेषण का भी थोड़ा-बहुत प्रयास संभव होगा।

कोश-रचना की परम्परा

अब कोश-रचना की परम्परा से अवगत होंगे; जो कोश-रचना की भारतीय परम्परा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आकलन का एक प्रयास होगा। हम कोश और कोश-रचना इत्यादि शब्दों से अब तक परिचित हो चुके हैं, अतः एक बार परम्परा शब्द को भी परख लेना चाहिए। परम्परा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत से है, जिसका उद्गम संस्कृत की 'परम्' धातु से 'पूर्ण करना' के अर्थ में हुआ है; यानी किन्हीं पूर्ण कार्यों का एक एक करके होने वाला वह पूर्वापर क्रम जो बहुत दिनों से एक ही रूप में होता चला आ रहा हो और जो सर्वमान्य हो गया हो परम्परा कहलाती है। इसी को अंग्रेजी में Tradition और उर्दू में रिवाज या रवाज़ कहते हैं। इस प्रकार कोश-रचना की परम्परा से आविर्भाव उस कार्य क्षेत्र की परम्परा से है जो सभ्यता के विकास के साथ कोश-रचना के क्षेत्र में चली आ रही है।

हम देखते हैं कि जैसे-जैसे हम कोश-रचना के अध्ययन क्षेत्र से परिचित होते जाते हैं वैसे-वैसे यह मान्यता अब और स्पष्ट होती जाती है कि "कोश कार्य एक सतत साधनातुल्य कार्य है जिसका प्रारंभ ही साधना है और अन्त भी।"[33] यानी इस संदर्भ में यह बात यहाँ और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि "कोश किसी भाषा के शब्दों का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता, वरन उन शब्दों के द्वारा उस समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक मर्यादाओं का भी संयोजन करता है।"[34]

कोश-रचना की परम्परा पर चर्चा से पूर्व हमें कोश-रचना अथवा कोश-निर्माण के आरंभ पर भोलानाथ तिवारी के इस दृष्टिकोण से अवगत होना चाहिए कि "भाषाविज्ञान की अन्य शाखाओं के कार्यों की भाँति ही कोश-निर्माण भी सबसे पहले अपने प्रारम्भिक रूप में भारतवर्ष में ही विकसित हुआ। लगभग 1000 ई० पू० निघण्टुओं की रचना हुई। तब से

[33] मीरा सरीन (सं०), *गवेषणा*, वही, पृष्ठ - 7

[34] वही, पृष्ठ - 7

लेकर 1000 ई॰ तक इन दो हजार वर्षों में भारत में कई प्रकार के सैकड़ों कोश लिखे गए, जिनमें से बहुत से तो अब भी उपलब्ध हैं। यूरोप में 1000 ई॰ के पूर्व ठीक अर्थों में कोश नहीं मिलते। अंग्रेजी कोशों का इतिहास तो 16वीं सदी के अंतिम चरण से ही प्रारम्भ होता है, यद्यपि अब वे संसार में संभवतः सबसे आगे हैं।"[35] बहरहाल, आधुनिक समय के साथ पश्चिम में कोश-निर्माण कार्य के आरंभ के पीछे के कुछ-एक तर्कों को भी यहाँ जानने की आवश्यकता है; जिसके बारे में कहते हैं कि "भाषाओं को विकारों से बचाने के लिए विद्वान व्याकरण बनाते हैं, शब्दकोश बनाते हैं। जानसन और वैब्स्टर जैसे कोशकारों ने लिखा है कि उनका उद्देश्य था इंग्लिश और अमरीकन इंग्लिश को स्थायी रूप देना, उसे बिगड़ने से बचाना। उनके कोश आधुनिक संसार के मानक कोश बने।"[36] फिर भी, उनके जीते जी ही भाषा बदली, उसमें नए शब्द जुड़े और कोशों के नए संस्करण बनाने पड़े। आजकल तो अंग्रेजी के कोशों में सालों साल हज़ारों नए शब्द जोड़े जाते हैं।

आधुनिक अर्थों में कोश-रचना का श्रेय पश्चिम को दिया जाता है, किन्तु सभ्यता के आरंभिक कोश-कार्य का आविर्भाव कहाँ हुआ, यह विद्वानों की उत्सुकता और रुचि का विषय बना रहा है। अरविन्द कुमार लिखते हैं कि "पश्चिमी देश हमेशा दावा करते हैं कि कोशकारिता का आरंभ वहाँ हुआ था। वहाँ कोशों के किसी इतिहास में भारत का ज़िक्र नहीं होता। स्वयं रोजट इस भ्रम या सुखभ्रांति में थे कि उन का थिसारस संसार का पहला थिसारस है। पुस्तक छपते छपते उन्होंने सुना कि संस्कृत में किसी अमर सिंह ने यह काम छठी सातवीं सदी में ही कर लिया था। कहीं से अमर कोश का कोई अँगरेजी अनुवाद उन्होंने मँगाया, इधर उधर पन्ने पलट कर देखा और भूमिका में फ़ुटनोट में टिप्पणी कर दी कि 'मैं ने अभी-अभी अमर कोश देखा, बड़ी आरंभिक क़िस्म की बेतरतीब बेसिरपैर की लचर सी कृति है'।"[37] इस बात पर अरविंद कुमार टिप्पणी करते हैं कि हर कोश की तरह अमरकोश भी अपने समसामयिक समाज के लिए बनाया गया था और इस बात को रोजट अच्छी तरह समझ नहीं पाए। उल्लेखनीय है कि अमरसिंह के अमरकोश से स्वयं उनके व्यक्तित्व तथा तत्कालीन समाज के बहुत से सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं का अनुमान

---

[35] भोलानाथ तिवारी, *भाषा विज्ञान*, वही, पृष्ठ - 391

[36] https://www.rachanakar.org/2008/10/blog-post_2038.html#comment-form : Accessed on 22/04/2021

[37] https://www.rachanakar.org/2008/10/blog-post_2038.html#comment-form : Accessed on 22/04/2021

लगाया जा सकता है। अतः उसे उस कालखंड के संदर्भों से जोड़ कर देखना होगा। यही बात कोश-रचना-परम्परा को जानने के औचित्यपूर्ण अर्थों के संदर्भ में भी कह सकते हैं।

कहते हैं सबसे आरंभिक दौर में शब्द संकलन का कार्य भारत में हुआ, कोश-रचना का यह कार्य भारत में 'निघण्टु' ने रूप में शुरू हुआ, जिसके भाष्य 'निरुक्त' में यास्क ने इस कार्य को और आगे बढ़ाया।[38] किन्तु किसी भी काल में कोश-रचना का कार्य स्वतःस्फूर्त जैसा नहीं रहा है। इसलिए भारत में कोश-रचना की सुबह जिस 'निघण्टु' से मानी जाती है उसकी भी कुछ पूर्ववर्ती परम्परा अवश्य रही होगी।[39] निरुक्तकार यास्क से पहले भी अनेक निघंटुओं की रचना हुई, ऐसा तो स्वयं 'निरुक्त' से ही ज्ञात होता है। अतः भारत में कोशों के कालक्रम का आदि सूत्र नितांत प्राचीन और सनातन है। बहरहाल, भारत में कोश-रचना की यह परम्परा वेदों जितनी अर्थात् कम से कम पाँच हज़ार वर्ष प्राचीन है। वैदिक शब्दों का संग्रह 'निघंटु' कहलाया। यास्क का 'निरुक्त' निघंटु का ही भाष्य है। "प्रजापति कश्यप का निघंटु संसार का प्राचीनतम शब्द संकलन है। इस में 18 सौ वैदिक शब्दों को इकट्ठा किया गया है। निघंटु पर महर्षि यास्क की व्याख्या निरुक्त संसार का पहला शब्दार्थ कोश और विश्वकोश यानी ऐनसाइक्लोपीडिया है। इस महान शृंखला की सशक्त कड़ी है छठी या सातवीं सदी में लिखा अमर सिंह कृत नामलिंगानुशासन या त्रिकांड जिसे सारा संसार अमर कोश के नाम से जानता है।"[40] इसके अतिरिक्त "भारत के बाहर संसार में शब्द संकलन का एक प्राचीन प्रयास अक्कादियाई संस्कृति की शब्द सूची के रूप में मिलता है। यह शायद ईसा पूर्व सातवीं सदी की रचना है। ईसा से तीसरी सदी पहले की चीनी भाषा का कोश है

---

[38] "Lexicographic work started in India at a very early date with the compilation of word-lists (निघण्टु) giving rare, unexplained, vague, or otherwise difficult terms culled from sacred writings. These glossaries, of which that handed down and commented upon in Yaska's Nirukta is the best-known and probably oldest specimen, did not, however, constitute the prototype of the dictionaries (कोश) of later times." – Claus Vogel, *Indian Lexicography*, Jan Gonda (Edited), *A History of Indian Literature, Volume -V*, Wiesbaden : Otto Harrassowitz, Edition - 1979 A. D., Page - 303

[39] पूर्व के इन निघंटुओं में शब्द-संग्रह की पद्धति क्या थी, इसका ठीक-ठीक निर्धारण नहीं होता लेकिन वर्तमान में उपलब्ध 'निघंटु' के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि उनमें नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात चारों प्रकार के शब्दों का संग्रह रहा होगा; जिसका संबंध वस्तुतः वेदविषयक या संहिताविशेष के मुख्य और विरल शब्दों से जुड़ा था। ऐसे संग्रह संभवतः गद्यात्मक ही रहे होंगे क्योंकि निघंटु का मुख्य अर्थ नामसंग्रह ही है जैसा कि निरुक्त में दी गई उसकी व्युत्पत्ति विषयक व्याख्या से ज्ञात भी होता है। वहीं निरुक्त का अर्थ निर्वचन से सम्बद्ध है, जो शब्द-व्युत्पत्ति से जुड़ा हुआ है। वैदिक शब्दों का अर्थ व्यवस्थित रूप से समझाना ही निरुक्त का प्रयोजन है और निघंटु तो वैदिक शब्दों का संग्रह ही है।

[40] https://www.rachanakar.org/2008/10/blog-post_2038.html#comment-form : Accessed on 22/04/2021

ईर्या ।"[41] बहरहाल, आरंभिक कोश परम्परा विषयक चर्चा अनेक देशों की सभ्यताओं से जुड़ा हुआ है। भारत के अतिरिक्त 'चीन' में ईसवी सन् के हजारों वर्ष पहले से कोश बनने लगे थे। पर इस श्रुतिपरंपरा का प्रमाण बहुत बाद में आगे चलकर उस प्रथम चीनी कोश में मिलता है, जिसकी रचना 'शुओ वेन' (Shuowen) ने पहली दूसरी शती ई० के आसपास की थी, जिसका निर्माण काल 121 ई० भी कहा जाता रहा है।[42] भाषाशास्त्री 'शुओ वेन' के कोश को चीन के 'हान' राजाओं के राज्यकाल में उपलब्ध माना जाता है। वहीं ज्ञात हो कि "यूरेशिया भूखंड में एक प्राचीनतम 'अक्कादी-सुमेरी' शब्दकोश का नाम लिया जाता है जिसके प्रथम रूप का निर्माण – अनुमान और कल्पना के अनुसार – ई०पू० 7वीं शती में बताया जाता है।"[43] प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि हेलेनिस्टिक युग के यूनानियों ने भी यूरोप में सर्वप्रथम कोश-रचना उसी प्रकार आरंभ की थी जिस प्रकार साहित्य, दर्शन, व्याकरण, राजनीति आदि के कुछ ग्रन्थों की। यूनानियों का महत्त्व समाप्त होने के बाद और रोमन साम्राज्य के वैभवकाल में तथा मध्यकाल में भी बहुत से 'लातिन' के कोश बने। 'लातिन' का उत्कर्ष और विस्तार होने पर लातिन तथा लातिन के साथ-साथ अन्य भाषाओं के कोश धीरे-धीरे बनते चले गए। पश्चिमी कोशकला का सूत्रपात भी इन्हीं लातिन-शब्द-सूचियों से हुआ, जिन्हें ग्लॉस या ग्लॉसेज कहते थे, जिसका अर्थ शब्दसूची होता था। वहीं 'ग्लॉसरी' की व्युत्पत्ति भी इसी मूल शब्द से मानी जाती है। ईस्वी सन् की सातवीं-आठवीं शताब्दी में निर्मित एक विशाल 'अरबी शब्दकोश' का उल्लेख भी कहीं-कहीं उपलब्ध होता है। इस तरह कोश-रचना की परम्परा संसार भर की भाषाओं में बहुत प्राचीन मालूम होती है।

आरंभिक कोश-रचना अर्थात् निघण्टु

आज विश्व का प्राचीनतम उपलब्ध कोश वैदिक संस्कृत कोश-परम्परा में निघंटु[44] को माना जाता है; जिसमें वेदों के कुछ कठिन शब्दों की विवेचना की गई है। वास्तव में निघंटु का

---

[41] https://www.rachanakar.org/2008/10/blog-post_2038.html#comment-form : Accessed on 22/04/2021

[42] श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), *हिंदी शब्दसागर (प्रथम भाग)*, वही, संपादकीय प्रस्तावना, पृष्ठ - 11

[43] वही, संपादकीय प्रस्तावना, पृष्ठ - 11

[44] "मोनियर विलियम्स (1990 : 546) कहते हैं कि 'निघंटु' शब्द घंट के मूल (बोलना) से व्युत्पन्न है और इसका अर्थ है शब्दों का संग्रह, शब्दकोश; ...एक संकलन। फिर भी, वर्तमान संदर्भ में निघंटु ऋग्वेद के कठिन शब्दों का एक विरल संकलन है, जो यास्क के निरुक्त के आधार पर वैदिक विद्वानों द्वारा भावी पीढ़ियों को हस्तांतरित हुई है।" – सुमनप्रीत, *निघंटु : कोश-निर्माण का उषाकाल*, मीरा सरीन (संपादक), *गवेषणा*, वही, पृष्ठ - 22-23

उद्देश्य कठिन वैदिक मंत्रों के अर्थ समझने में सहायता प्रदान करना था। यानी "निघंटु वेदों के उन शब्दों की सूची है, जो दुर्लभ, अस्पष्ट और अव्याख्यायित हैं। निघंटु की वैदिक शब्दावली को बहुत से विद्वानों ने भारत के पहले कोशीय कार्य के रूप में मान्यता दी है। आधुनिक शब्दकोश से भिन्न, बाहर हम पाते हैं कि निघंटु की रचना कुछ सम्मिलित अवधारणाओं के अंतर्गत आने वाले वैदिक श्लोकों के कठिन शब्दों को सरल ढंग से याद रखने के लिए की गई थी।"[45] कहा जाता है कि इससे पहले ऐसे कई निघंटुओं की परम्परा थी; किन्तु उसमें से आज केवल एक ही निघंटु उपलब्ध होता है, जिसमें कुल पाँच अध्याय हैं। निघंटु के रचनाकार का नाम आज ज्ञात नहीं है।[46] किन्तु यह ध्यान देने की बात है कि "भारत में कोशविज्ञान का आरम्भ 'निघण्टु' नामक वैदिक शब्दकोश से हुआ है। यास्क ने ई॰ पूर्व 600 में, इस शब्दकोश के शब्दों का निर्वचन देने के लिए जो भाष्य लिखा है, उसका नाम 'निरूक्तम्' है।"[47] आधुनिक विद्वान निघंटु का रचनाकाल ईसा से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व ही मानते हैं। निघंटु में 1768 वैदिक पद संग्रहीत हैं। अध्याय एक से तीन में पृथ्वी, हिरण्य, मेघ, मनुष्य, अन्न, धन, गो, बहु, ह्रस्व, प्रज्ञा, यज्ञ आदि से संबंधित 69 समानार्थक शब्दों का संकलन है। अध्याय चार में 279 कठिन पदों की व्याख्या की गई है। अध्याय पाँच में देवतावाचक 151 शब्द संग्रहीत हैं।[48] एक अन्य धारणा के अनुसार निघंटु पाँच अध्यायों में विभाजित है, जिसे पूर्ण रूप से तीन प्रमुख कांडों में विभाजित किया गया है।[49] जिसमें "प्रथम तीन अध्यायों को नैघंटुक कांड कहा गया है। चौथा अध्याय

---

[45] सुमनप्रीत, *निघंटु : कोश-निर्माण का उषाकाल*, मीरा सरीन (सं॰), *गवेषणा*, वही, पृष्ठ - 20

[46] "कतिपय विद्वान् यास्क को ही निघण्टु का रचयिता मानते थे। दुर्गाचार्य ने यास्क एवं निघण्टु के रचयिता को पृथक् माना है। महाभारत में वृष अथवा वृषाकपि अथवा प्रजापति कश्यप को इस का रचयिता माना है।" – सत्य पाल नारंग, *संस्कृत कोश-शास्त्र के विविध आयाम*, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1998 ई॰, पृष्ठ - 9

[47] वसन्तकुमार म॰ भट्ट, *भारत में कोशविज्ञान की भोर कब भई ?*, मीरा सरीन (सं॰), *गवेषणा*, वही, पृष्ठ - 9

[48] http://www.pravakta.com/kosh-parampara-singhavlokan/ : Accessed on 16/04/2021

[49] निघण्टु में त्रिविध काण्ड की जो वर्गीकृत व्यवस्था है वह उस काल में कोशविज्ञान की प्रायः पूर्ण विकसित स्थिति की परिचायक है अर्थात् कोश-प्रणयन में अर्थानुसारी शब्दचयन या पृथ्वीलोक-स्वर्गलोकादि सम्बन्धी शब्दों का चयन करना बहुत परवर्तीकाल की विकसित स्थिति है। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो भारत में 'निघण्टु' जैसे 'एकार्थक अनेक शब्दों' एवं 'अनेकार्थक एक-एक शब्द' का संग्रह (कोश) बनाने की प्रवृत्ति से भी पूर्वकाल में उणादि (पंचपादी सूत्रपाठ) सूत्रकार ने ही शब्दों के बाह्यशिल्प को अर्थात् शब्दों की अन्तिम ध्वनि सामान्य रूप से या समान रूप से कहाँ-कहाँ दिखाई दे रही है, इसकी गवेषणा की थी। बहरहाल, अर्थ से निरपेक्ष रहते हुए केवल शब्दों के अन्तिम भाग को ही देखकर शब्दों का युग्म बनाने का कार्य उणादिसूत्रों में शुरू हुआ था। अतः हम यहाँ कह सकते हैं कि इन उणादिसूत्रों की रचना के साथ ही कोशविज्ञान की भोर भई याकि शुरुआत हुई थी। देखें – वसन्तकुमार म॰ भट्ट, *भारत में कोशविज्ञान की भोर कब भई ?*, मीरा सरीन (सं॰), *गवेषणा*, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, अंक - 93, जनवरी-मार्च : 2009 ई॰

नैगम कांड है और पांचवें अध्याय को दैवत कांड कहा गया है। प्रथम अध्याय के नैघंटुक कांड में समाविष्ट 415 शब्दों के 17 उपविभाग हैं, जो भौतिक पदार्थों जैसे पृथ्वी, वायु जल और प्राकृतिक उपादानों जैसे मेघ, उषाकाल, दिन और रात से संबंधित हैं। दूसरे अध्याय में 22 उपविभागों में वर्गीकृत 516 शब्द हैं, जो मनुष्य के शारीरिक अंगों और इससे जुड़ी विशेषताओं जैसे क्रोध, समृद्धि आदि को दर्शाते हैं। चौथा अध्याय अमूर्त संकल्पनाओं जैसे भारीपन, हल्कापन आदि जैसे 410 शब्दों को लिए हुए है। समूचे तीन अध्यायों के कुल 1341 शब्दों को मिलाकर नैघंटुक कांड बना है। नैगम कांड में 279 शब्दों की सूची समाहित है जो समध्वनिक संबंधों के शब्द हैं। जबकि अंतिम कांड (दैवत कांड) में 151 शब्द हैं जो देवताओं से संबंधित हैं। इस प्रकार हम कुल 1771 शब्दों के साथ तीन स्पष्ट विभागों में विभक्त खजाने की तरह नैघंटुक हिस्से को उस सुदूर समय में संकल्पनात्मक ढंग से व्यवस्थित एक शब्दकोश – 'उपजीव्य ग्रंथ' के रूप में मौजूद पाते हैं।"[50] जिस कारण यहाँ आधुनिक कोशकला की तुलना में 'निघंटु' परम्परा को देखना आवश्यक जान पड़ता है "यद्यपि शब्दों का अर्थ न होने से आधुनिक अर्थों में निघण्टु को कोश नहीं कहा जा सकता फिर भी शब्दों का विभाजन निश्चित वर्गों में होने से इसका अनुकरण परवर्ती कोशकारों ने भी पर्याप्त मात्रा में किया है, अतएव निघण्टु को संस्कृत कोश-साहित्य का आरम्भ बिन्दु मान लिया जाना चाहिये।"[51] बहरहाल, आरंभिक कोश-रचना 'निघण्टु' के साथ-साथ उपलब्ध कोशकारिता की परम्परा में "भारतीय कोशविद्या का यह प्राचीनतम उपलब्ध रूप यद्यपि गद्यबद्ध था, तथापि परवर्ती पद्यबद्ध कोशों के लिये – विशेषतः पर्यायवाची कोशों का – पथप्रदर्शक और प्रेरणादायक रहा।"[52]

संस्कृत में कोश-रचना की परम्परा

संस्कृत में कोश-रचना की परम्परा के उल्लेख से पूर्व यह बात ध्यान में आती है, जो बलदेव उपाध्याय अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ संस्कृत-शास्त्रों का इतिहास में वस्तुतः बतलाते हैं कि "संस्कृत में कोशविद्या का उदय एक व्यावहारिक आवश्यकता की पूर्ति के निमित्त हुआ।"[53] इन

---

[50] सुमनप्रीत, *निघंटु : कोश-निर्माण का उषाकाल*, मीरा सरीन (सं०), *गवेषणा*, वही, पृष्ठ - 21

[51] अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, भूमिका, पृष्ठ - 31

[52] श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), *हिंदी शब्दसागर (प्रथम भाग)*, वही, संपादकीय प्रस्तावना, पृष्ठ - 2

[53] बलदेव उपाध्याय, *संस्कृत-शास्त्रों का इतिहास*, शारदा मन्दिर, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 1969 ई०, पृष्ठ - 320

कोशों का उद्देश्य आज के कोशों के विपरीत व्याकरणिक शब्द-संग्रह के निर्देशों के निमित्त न होकर कण्ठस्थ करने के लिए होता था। इसलिए इन कोशों में शब्दों का चयन आधुनिक कोश-रचना के मानकों जैसे वर्णानुक्रम या अकारादि क्रम से नहीं मिलता है। भले ही ऐसे अधिकांश कोशों की रचना अनुष्टुपों तथा कुछ अन्य छन्दों में की गई है।

संस्कृत में आरंभिक कोश-रचना की परम्परा निघंटु से आरंभ होती है जिसके बाद ही उपलब्ध होने वाला "निरुक्त वैदिक निघंटु के भाष्य के रूप में संभवतः ईसा से छः सौ वर्ष पहले लिखा गया था। इसमें वैदिक शब्दों की निरुक्ति बताई गई है। कौन-सा शब्द क्यों किसी विशेष अर्थ में व्यवहृत हुआ है, यह बात समझाई गई है।"[54] मुख्यतः यास्क ने निघंटु की व्याख्या निरुक्त में की है, किन्तु यह निरुक्त मात्र एक व्याख्या ग्रन्थ भर नहीं है, वस्तुतः इसमें भाषाशास्त्रीय मीमांसा आदि की बहुत महत्त्वपूर्ण प्राचीन धारणा, कल्पना और व्याख्या-प्रकारों का भी प्रामाणिक उल्लेख हुआ है। अतः वास्तव में निरुक्ति से संबंधित शास्त्र निरुक्त कहलाता है। निरुक्त के आरंभ में शब्दों की व्युत्पत्ति के ढंग का विस्तृत वर्णन मिलता है जो कि आधुनिक भाषा-विज्ञान में भी सर्वमान्य तथा प्रामाणिक उपयोगिता रखती है। यास्क ने निरुक्त में इस विषय की भी चर्चा की है कि किसी शब्द का जो अर्थ निश्चित हुआ है, वह वही क्यों है, इस प्रकार यह कारण खोजना ही निरुक्त में उस शब्द की निरुक्ति या निर्वचन कहलाता है। संस्कृत शब्दों के संबंध में यह मान्यता है कि सभी शब्दों के मूल में कोई न कोई धातु रूप है यानी यह सिद्धांत कि सर्व धातुजमाह निरुक्ते महर्षि यास्क ने ही प्रतिपादित किया था। अपने निरुक्त में उन्होंने शब्दों की व्युत्पत्ति धातुओं से दिखाकर उक्त सिद्धांत की पुष्टि की है। विभिन्न स्रोतों से यह जानकारी मिलती है कि उस समय में अनेक प्रकार के निघंटु और निरुक्त की परम्परा बनी हुई थी। यास्क ने स्वयं अपने बारह पूर्ववर्ती निरुक्तकारों यथा – आग्रायण, औपमन्यव, औदुम्बरायण, और्णवाभ, कात्थक्य, क्रौष्टुकि, गार्ग्य, गालव, तैटीकि, वार्ष्यायणि, शाकपूणि और स्थौलाष्ठीवि के मतों का यथास्थान उल्लेख किया है।[55] तेरहवें निरुक्तकार स्वयं यास्क हैं। उपरोक्त सभी निरुक्तकारों के विशिष्ट मत आदि की जानकारी निरुक्त के अनुशीलन से भली-भाँति ज्ञात होती है। यास्क कृत निरुक्त में बारह अध्याय हैं और अंत में दो अध्याय परिशिष्ट रूप में दिए गए हैं। बहरहाल,

---

[54] हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिन्दी साहित्य की भूमिका*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण - 2012 ई०, पृष्ठ - 146

[55] http://www.pravakta.com/kosh-parampara-singhavlokan/ : Accessed on 16/04/2021

बलदेव उपाध्याय लिखते हैं कि "'निरुक्त' वेद के षडङ्गों में अन्यतम है। आजकल यही यास्क रचित निरुक्त इस वेदाङ्ग का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। निरुक्त में बारह अध्याय हैं। अन्त में दो अध्याय परिशिष्ट रूप में दिये गये हैं। इस प्रकार समग्र ग्रन्थ चौदह अध्यायों में विभक्त है। परिशिष्ट वाले अध्याय भी अर्वाचीन नहीं माने जा सकते, क्योंकि सायण तथा उव्वट इन अध्यायों से भली भाँति परिचय रखते हैं। उव्वट ने यजुर्वेदभाष्य (१८।७७) में निरुक्त १३।१२ में उपलब्ध वाक्य को निर्दिष्ट किया है। अतः इस अंश का भोजराज से प्राचीन होना स्वतः सिद्ध है।"[56] इस कारण यास्क के निरुक्त की महत्ता बहुत अधिक है। वैसे तो निरुक्त स्वयं भाष्यरूप है फिर भी यह स्थान-स्थान पर इतना कठिन है कि इसके बोधगम्य और अर्थ अनुशीलन के लिए स्वयं इसके टीकाकारों को जूझना पड़ता है। इस प्रकार निरुक्त की टीकाओं की भी परम्परा रही है; जिसमें निरुक्त की सबसे महत्त्वपूर्ण और सम्पूर्ण टीका दुर्गाचार्य कृत दुर्गाचार्यवृत्ति को माना जाता है। किन्तु दुर्गाचार्य भी निरुक्त के आद्य टीकाकार नहीं हैं। वैसे भी दुर्गाचार्यवृत्ति की सबसे प्राचीन हस्तलिखित प्रति लगभग 1444 संवत् की मिलती है। अतः दुर्गाचार्य इस संवत् से पहले के ही होंगे। निरुक्त के टीकाकारों की परम्परा आगे भी मिलती रही है जिसमें सबसे उल्लेखनीय टीकाकारों में स्कन्ध महेश्वर की टीका लाहौर से प्रकाशित हुई है। यह टीका विद्वतापूर्ण तथा प्रामाणिक मानी जाती है। बहरहाल, विद्वानों में इस बात की स्वीकार्यता है कि निरुक्त और उसकी टीकाओं के संकेतों से मध्यकालीन भाष्यकार वेदों का भाष्य करने में कुशल हो सके हैं।

संस्कृत में कोशविद्या बड़े महत्त्व की मानी जाती थी किन्तु पूर्व काल में इस भाषा के कितने कोशकार हुए हैं ? यह संख्या बतलाना एक विषम पहेली है। वैसे कई उपलब्ध ग्रन्थों में प्राचीन कोशकारों के नामों का उल्लेख मिलता है जिससे उनके होने का स्वतः संकेत मिल जाता है। संस्कृत में कोशों का इतिहास लगभग दो हजार वर्षों से अधिक का है; जिसमें मुख्यतः शब्द-संग्रह की दृष्टि से दो प्रकार के कोश मिलते है, यथा – समानार्थक कोश जिसमें कोश के अन्तर्गत उन शब्दों का संकलन किया जाता है जो एक ही अर्थ के द्योतक होते हैं तथा नानार्थक कोश जिसमें अनेक अर्थों के संकेतक शब्दों का चयन किया जाता है। संस्कृत कोश-परम्परा में अमरसिंह कृत 'अमरकोश' संभवतः सर्वथा लोकप्रिय

[56] बलदेव उपाध्याय, *संस्कृत-शास्त्रों का इतिहास*, वही, पृष्ठ - 324

और स्वीकार्य कोश-ग्रन्थ है ।[57] अतः संस्कृत कोशविद्या के इतिहास में अगर अमरकोश को केन्द्र मानें तो संस्कृत कोश-परम्परा के इतिहास को अमूमन इन तीन कालों में विभक्त कर सकते हैं –

1. अमरकोश पूर्वकाल
2. अमरकोश काल
3. अमरकोश उत्तरकाल

अब इन्हीं उक्त काल-खण्डों के माध्यम से संस्कृत कोश-रचना की परम्परा के विकास-क्रम पर हम विचार करने का प्रयास करेंगे । बहरहाल, प्रसंगवश यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि संस्कृत कोशों की इस विकास परम्परा के केन्द्र में 'अमरकोश' को ही रखा गया है ।

अमरकोश पूर्वकाल

अमरसिंह से पूर्वकाल के कोशों का परिचय अमरकोश की टीकाओं में किए गए उल्लेखों तथा उद्धरणों से मिलता है । सर्वानन्द ने अमरकोश की टीका में व्याडि, वररुचि के कोश तथा त्रिकाण्ड एवं उत्पलिनी का उल्लेख किया है । क्षीररस्वामी ने अमरकोश की टीका में धन्वन्तरि, भागुरि तथा रत्नकोश एवं माला का उल्लेख किया है । ध्यान रहे कि इस परम्परा में केवल कुछ-एक कोश के अतिरिक्त अन्य कोई कोश समस्त रूप से उपलब्ध भी नहीं हुआ है । बहरहाल, अमरसिंह के परवर्ती कोशकारों – पुरुषोत्तमदेव, महेश्वर तथा हेमचन्द्र ने कात्यायन एवं वाचस्पति को भी अमरसिंह का पूर्ववर्ती कोशकार बतलाया है । आगे अमरकोश से पूर्ववर्ती कोशकारों का एक सामान्य परिचय दिया जा रहा है –

क. व्याडि का कोश : व्याडि का कोश अमरकोश के समान ही संकलित किया गया था; उसमें समानार्थक शब्दों की प्रधानता थी और एक परिच्छेद में कुछ नामार्थ शब्दों का चयन था । 'अभिधान चिन्तामणि' की टीका में हेमचन्द्र ने इस ग्रन्थ से कई उद्धरण दिए

[57] "The Amarakosa (अमरकोश) occupies the same dominant position in lexicography as Panini (पाणिनि) in grammar, not improbably composed about 500 A.D." – Arthur Anthony Macdonell, *A History of Sanskrit Literature*, D. Appleton Company, New York, Edition - 1900 A.D., Page - 433

हैं। जिनसे प्रतीत होता है कि इसमें शब्दार्थ के साथ-साथ विशेष ज्ञातव्य विषयों का भी संकलन था। व्याडि ने बौद्धधर्म-संबंधी विशिष्ट तथ्यों का वर्णन इसमें किया है जिससे स्पष्ट होता है कि उनका बौद्ध धर्म से प्रगाढ़ परिचय था। उन्होंने व्युत्पत्ति के द्वारा अर्थ अनुसंधान की प्रक्रिया भी दिखलाई है जैसे पूर्व के निघंटु की व्याख्या। पदचन्द्रिका में 'उत्पलिनी' के नाम से बहुत से मत उद्धृत किए गए हैं। पुरुषोत्तम की हारावली के अनुसार व्याडि के इस कोश का नाम 'उत्पलिनी' ही था।[58]

ख. कात्य का कोश : वररुचि के लिंग-विशेष-विधि नामक लिंगानुशासन ग्रन्थ का हर्षवर्धन आदि ग्रन्थकारों ने निर्देश किया है, क्षीरस्वामी तथा हेमचन्द्र कोश के प्रसंग में कात्य का ही उल्लेख करते हैं। जो वररुचि से भिन्न व्यक्ति हैं। कात्य का ग्रन्थ पूरा कोश था जो ठीक बाद के अमरकोश के ही समान कहा जा सकता है, इसमें अर्थ का वर्णनात्मक परिचय उपलब्ध था; जैसे तितउ शब्द का अर्थ है चालन (चलनी) जिससे सत्तू आदि चाला जाता है। अमरकोश में इसका निर्देश केवल अर्थपरक ही है – चालनी तितउ पुमान् (अमरकोश २।९।२६), परन्तु कात्य का अर्थ वर्णन-परक है – क्षुद्रच्छिद्रसमोपेतं चालनं तितउ पुमान्। कात्य के इस कोश का नाम 'नाममाला' था।[59]

ग. भागुरि का कोश : भागुरि के कोश का नाम 'त्रिकाण्ड' था; जो तीन काण्ड वाले अमरकोश से भिन्न तथा पूर्व का स्वतंत्र कोश था। भागुरि ने इसमें शब्दों के लिंगों के निर्देश की ओर ध्यान नहीं दिया केवल समानार्थक शब्दों का संकलन किया है। भागुरि के मत का निर्देश तथा उनके ग्रन्थ का उद्धरण अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। मुख्य रूप से 'नानार्थार्णव संक्षेप' में केशवस्वामी (1200 ई०) ने भागुरि के मतों का निर्देश किया है, जिससे इनका काल इससे पूर्व की शताब्दी का ही प्रतीत होता है।[60]

घ. रत्नकोश : रत्नकोश के रचयिता अज्ञात हैं। सर्वानन्द के अनुसार इसके परिच्छेदों का वर्गीकरण लिंग के आधार पर हुआ; जिसमें समानार्थक शब्दों का चयन हुआ था।[61]

ङ. माला या अमरमाला : प्राचीन कोशों में इन दोनों नामों से उद्धरण मिलते हैं किन्तु दोनों नामों से एक ही कोश-ग्रन्थ का तात्पर्य प्रतीत होता है। सर्वानन्द ने अपनी अमरटीका में

---

[58] बलदेव उपाध्याय, *संस्कृत-शास्त्रों का इतिहास*, वही, पृष्ठ - 330

[59] वही, पृष्ठ - 330

[60] वही, पृष्ठ - 330-331

[61] वही, पृष्ठ - 331

तीस से ऊपर उद्धरण अमरमाला से दिए हैं। इसके रचयिता का नाम संभवतः अमरदत्त था जो अमरसिंह से प्राचीन कोशकार माने जाते हैं।[62]

च. वाचस्पति का कोश : वाचस्पति के कोश-ग्रन्थ का नाम 'शब्दार्णव' था जो समानार्थक शब्दों का विशाल कोश था। यह अनुष्टुप छन्द में रचित था। इसकी एक विशेषता यह थी कि इसमें एक शब्द के विभिन्न रूपों तथा उसकी वर्तनी का भी उल्लेख किया गया था। हेमचन्द्र ने शब्दों का प्रपंच अपने कोशों में इसी ग्रन्थ की सहायता से किया है – प्रपञ्चस्तु वाचस्पति-प्रभृतेरिह लक्ष्यताम्। शब्दार्णव में एक नाम के अनेक रूपों को देने की विशिष्टता थी – इसका पता 'पदचन्द्रिका' में इसके उद्धरणों से चलता है। वे इसमें 'विरिञ्चि' के स्थान पर विरिञ्च, द्रुहिण तथा द्रुघण, नारायण तथा नरायण, श्रीवत्सलाञ्छन (विष्णु) के स्थान पर श्रीवत्स भी, रूप बनाते हैं। शिव के धनुष के लिए 'अजगव' शब्द ही प्रसिद्ध है लेकिन नाममाला आदि आकार मानकर 'आजगव' को भी शुद्ध मानते हैं। शब्दार्णव इस विषय में 'तृतीयः पन्थाः' है, क्योंकि वह 'आजकवं' तथा 'अजकावं' भी 'अजगवं' का विशिष्ट रूप मानता है। चन्द्रमा का वाचक संस्कृत शब्द 'चन्द्र' ही प्रसिद्ध है, किन्तु शब्दार्णव के मत में 'चन्द' भी पक्का संस्कृत है। यथा – 'हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्रः शशी चन्दो हिमद्युतिः' (पदचन्द्रिका प्रथम भाग, पृष्ठ - 107) इसी प्रकार 'चन्द्रिका' का अपर शब्द चन्द्रिका है (वही, पृष्ठ - 109)। अगस्त्य तथा अगस्ति दोनों रूप बनते हैं। भट्टि ने 'अगस्ति' शब्द को प्रयुक्त भी किया है – अगस्तिनाऽध्यासित-विन्ध्यशृंगम्। सूर्य के अर्थ में मार्तण्ड तथा मार्ताण्ड शब्द भी दोनों रूपों में वाचस्पति के शब्दार्णव कोश को स्वीकृत है।[63]

छ. धन्वन्तरि का कोश : धन्वन्तरि ने 'वैद्यक निघंटु' की रचना की है, जिसको 'धन्वन्तरि निघंटु' भी कहते हैं। इनका समय चौथी शताब्दी से पूर्व का ही रहा होगा। क्षीरस्वामी के अनुसार अमरसिंह ने अपने 'अमरकोश' में वनौषधि वर्ग की सामग्री इसी कोश से ली है, जिसके पाठ को ठीक न समझने के कारण उनसे कहीं-कहीं थोड़ी-बहुत गलती भी हुई है; क्षीरस्वामी के कथनानुसार धन्वन्तरि ने 'बालपत्र' शब्द को खदिर का पर्यायवाची बतलाया है, किन्तु अमरसिंह ने 'बालपत्र' को बालपुत्र समझने की गलती

[62] वही, पृष्ठ - 331

[63] वही, पृष्ठ - 331-332

की और इसीलिए उन्होंने खदिर का पर्यायवाची 'बालतनय' माना है जो क्षीरस्वामी की दृष्टि से एकदम अशुद्ध है। यहाँ उदाहरणार्थ देखें – बालपत्रो यवासः खदिरश्चेति द्वयर्थेषु धन्वन्तरिपाठमदृष्ट्वा बालपुत्रभ्रान्त्या ग्रन्थकृद् बालतनयमाह – बालतनयो खदिरो दन्तधावनः (अमरकोश - २।४।४९)[64]

ज. महाक्षपणक का कोश : महाक्षपणक रचित कोश दो नामों से हस्तलेखों में मिलता है, एक अनेकार्थमञ्जरी और दूसरा अनेकार्थध्वनिमञ्जरी। जो एक ही ग्रन्थ के दो नाम हैं। इनका समय निश्चय नहीं हो सका है। विद्वानों का मत है महाक्षपणक और क्षपणक दोनों एक ही व्यक्ति हैं। काश्मीरी टीकाकार वल्लभदेव ने रघुवंश के एक श्लोक की व्याख्या में अनेकार्थमञ्जरी का एक अवतरण उद्धृत किया है जो उस ग्रन्थ के हस्तलेख में उपलब्ध है। महाक्षपणक काश्मीरी ही थे; इस तरह एक काश्मीरी वल्लभदेव के द्वारा प्रख्यात काश्मीरी कोशकार के ग्रन्थ का उल्लेख स्वाभाविक जान पड़ता है। बहरहाल, हम महाक्षपणक के ग्रन्थों के रचनाकाल[65] का अनुमान लगा सकते हैं।[66]

अमरकोश काल

अमरसिंह ने पूर्ववर्ती कोशों के आधार पर 'नामलिंगानुशासन' नामक अद्वितीय एवं विशिष्ट प्रकार का सर्वांगपूर्ण कोशग्रन्थ लिखा था; जिसकी लोकप्रियता अमरकोश के रूप है। इस कोश का नामकरण इसकी महत्ता के प्रमाण को सिद्ध करता है। इस संदर्भ में यह धारणा है कि "जो स्थान व्याकरण में पाणिनि का, काव्यशास्त्र में मम्मट का, अद्वैतवेदान्त में शङ्कर का तथा वैदिक परम्परा में निरुक्त का है, वही स्थान संस्कृत कोषशास्त्र में अमर का है।"[67]

---

[64] वही, पृष्ठ - 332

[65] "वल्लभदेव के पौत्र कैयट (चन्द्रादित्य के पुत्र) ने आनन्दवर्धन के देवीशतक की व्याख्या ९७७-९७८ ई० में लिखी काश्मीर नरेश भीमगुप्त (९७७-९८२ ई०) के राज्यकाल में। फलतः वल्लभदेव का समय दशम शती के पूर्वार्ध में, ८२५ ई० के आसपास, मानना उचित प्रतीत होता है। महाक्षपणक के समय की यह पश्चिम अवधि है। इसकी दूसरी अवधि मानी जायगी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (४०१ ई०) का राज्यकाल क्योंकि महाक्षपणक धन्वन्तरि, अमरसिंह आदि के साथ उनकी सभा के नवरत्नों में से अन्यतम माने जाते थे फलतः इनका समय ३५० ईस्वी मानना अनुचित नहीं प्रतीत होता (द्रष्टव्य पी० के० गोडे – *Studies in Indian Literary History Vol. I* pp. 109-111)।" – बलदेव उपाध्याय, *संस्कृत-शास्त्रों का इतिहास*, वही, पृष्ठ - 332

[66] बलदेव उपाध्याय, *संस्कृत-शास्त्रों का इतिहास*, वही, पृष्ठ - 332

[67] सत्य पाल नारंग, *संस्कृत कोश-शास्त्र के विविध आयाम*, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1998 ई०, पृष्ठ - 32

ऐसे में अमरकोश संस्कृत कोश-रचना की परम्परा का सर्वथा उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण कोश-ग्रन्थ ठहरता है; जिसके विषय में यह तथ्य ज्ञात हो कि अमरकोश का नामकरण ही इसके रचयिता अमरसिंह के नाम पर 'अमरकोश' चल पड़ा है। अतः इस अवधि को 'अमरकोश काल' कहना भी कोशकार और कोश की महत्ता को ही प्रदर्शित करता है।

प्राचीन कोशों में कोश-रचना की दो प्रकार की शैलियाँ मिलती हैं यानी कि कुछ कोश केवल नामों का ही शब्द-संग्रह के रूप में निर्देश करते थे, वहीं कुछ कोश मात्र लिंगों के विवेचन को अपना मुख्य विषय मानते थे। बहरहाल, अमरसिंह ने इन दोनों पद्धतियों का समन्वय कर अपने कोश को सर्वांग पूर्ण बनाया। अमरकोश में शब्दों के लिंग-निर्देश के लिए उन्होंने कई शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिसमें पुल्लिंग, नपुंसक, स्त्री तथा अस्त्री आदि शब्दों से संस्कृत नामों के लिंगों को बतलाने में सहूलियत मिली है। अमरकोश तीन काण्डों में विभक्त है इसलिए इसको 'त्रिकाण्ड' नाम से भी प्रसिद्धि मिली। इसके प्रत्येक काण्ड अनेक वर्गों में विभक्त मिलते हैं, आगे उदाहरण देखें – प्रथम काण्ड में स्वर्ग, व्योम, दिक्, काल, धी, शब्दादि, नाट्य, पाताल, तथा नर्क – ये नव वर्ग हैं, वहीं कुछ विद्वान इसके साथ 'वारि' को दसवाँ वर्ग बतलाते हैं। द्वितीय काण्ड में पृथ्वी (भूमि), पुर, शैल, वनौषधि, सिंहादि, नृ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र – ये दश वर्ग हैं। तृतीय काण्ड में विशेष्यनिघ्न, संकीर्ण, नानार्थ, अव्यय तथा लिंगादि-संग्रह ये पाँच वर्ग हैं।[68] अमरकोश की रचना एक विशिष्ट प्रकार के छंद में हुई है अर्थात् इसमें कुल मिलाकर 1533 अनुष्टुप छंद हैं, जिसमें इस कोश के छठवें भाग (225 अनुष्टुप) में नानार्थ/अनेकार्थ का वर्णन हुआ है, बाक़ी के अन्य भाग में समानार्थक शब्दों का अर्थ बतलाया गया है। समानार्थक भाग में एक विषय के वाचक नामों को संकलित किया गया है। वहीं नानार्थ भाग में अंतिम वर्ण के अनुसार पदों का संकलन किया गया है। इसमें अव्ययों का वर्णन एक स्वतंत्र वर्ग के रूप में हुआ है तथा अमरकोश के अंत में लिंगों के साधक नियमों का एक साथ वर्णन मिलता है।[69] इस तरह 'अमरकोश' के उपरोक्त विश्लेषण से संस्कृत कोश-रचना की परम्परा में उसके महत्त्व को आँका जा सकता है।

---

[68] बलदेव उपाध्याय, *संस्कृत-शास्त्रों का इतिहास*, वही, पृष्ठ - 333 और इसके साथ संदर्भ में उल्लिखित कुछ-एक विशेष अंश के लिए यहाँ भी देखें - अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, भूमिका, पृष्ठ - 32

[69] वही, पृष्ठ - 333

अमरसिंह के कोश की लोकप्रियता इतनी अधिक है कि उस पर लगभग चालीस टीकाएँ[70] लिखी गई हैं, जिनमें से अधिकतर अधिक प्राचीन और प्रामाणिक भी मानी जाती हैं। क्षीरस्वामी की टीका 'अमरकोशोद्घाटन' तथा सर्वानन्द की टीका 'टीका-सर्वस्व' इनमें से सर्वाधिक मान्य हैं।[71] इन टीकाकारों ने अमरकोश के उद्धरणों से इसकी प्रामाणिकता को और पुष्ट किया है। बहरहाल, भारत और उसके बाहर भी अमरकोश की स्वीकार्यता बनी हुई है। ज्ञात हो कि उज्जयिनी के निवासी गुणरात द्वारा अमरकोश का चीनी भाषा में अनुवाद षष्ठशती में हुआ था इसलिए यह ग्रन्थ इस शती से पूर्व का माना जाएगा। फिर भी, अमरकोश लगभग चौथी शताब्दी के बाद और पाँचवीं-छठी शताब्दी के मध्य में अमरसिंह द्वारा संस्कृत भाषा में रचित कोश है; जिसके संदर्भ में कहा जाता है – 'अष्टाध्यायी जगन्माता अमरकोशो जगत्पिता'। अमरसिंह के कोश को नामलिंगानुशासन भी कहा गया अर्थात् इसमें नाम और लिंग दोनों को महत्त्व दिया गया है। तीन कांडों में विभक्त होने से इसे त्रिकांड भी कहा गया लेकिन इसकी लोकप्रियता अमरकोश नाम से ही हुई।

वर्तमान में संस्कृत कोश-शास्त्रों की परम्परा में अमरकोश के अनुशीलन से इसके संदर्भ में विद्वानों को आधुनिक कोश-रचना के कई सूत्र ज्ञात होते हैं, जिनका उपयोग उक्त कोश-रचना की परम्परागत शैली को समझने की दृष्टि से आज भी बहुत आवश्यक माना जा सकता है; जैसे यहाँ उदाहरण स्वरूप देखें तो यथा-तथ्य इसमें ऐसी कई उल्लेखनीय बातें भी जान पड़ती हैं – "शब्द वर्गीकरण की दृष्टि से अमरकोश आधुनिक थिसॉरस से जुड़ता है यद्यपि इसमें आंशिक रूप से विषयानुसार वर्गीकरण है और आंशिक रूप से सामाजिक मान्यताओं पर आधारित वर्गीकरण है।"[72] फिर भी, कोश-रचना की परम्परा के इतिहास में अमरसिंह के इस 'अमरकोश' को आधुनिक कोशविद्या के अनुकूल किया गया

---

[70] "इस कोश (अमरसिंह कृत अमरकोश) की डॉ॰ आफ्रेश द्वारा केटॉलागस कैटॉलागम् में दी गई चालीस टीकायें ही इसकी लोकप्रियता पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं।" – अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, भूमिका, पृष्ठ - 32

[71] अमरकोश के कुछ अन्य टीकाकारों में रायमुकुट की 'पदचन्द्रिका', सुभूतिचन्द्र की 'कामधेनु', भानुजि दीक्षित की 'रामाश्रमी', नारायण शर्मा की 'अमरकोश पंजिका' या पदार्थ कौमुदी, रमानाथ विद्यावाचस्पति की 'त्रिकाण्ड विवेक', मथुरेश विद्यालंकार की 'सारसुन्दरी', अच्युतोपाध्याय की 'व्याख्याप्रदीप', रघुनाथ चक्रवर्ती का 'त्रिकाण्डचिन्तामणि', महेश्वर का 'अमर विवेक' आदि टीकाएँ भी महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं।

[72] डॉ॰ श्रुति, *अमरकोश, नाममाला कोश और थिसॉरस*, शशि भारद्वाज (सं॰), *भाषा (द्वैमासिक)*, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार, वर्ष 46, अंक - 1, सितंबर-अक्तूबर : 2006 ई॰, पृष्ठ - 76-77

प्रथम प्रयास मानना ही पड़ता है; जो कोश-रचना के कई विद्वानों के लिए आज भी जिज्ञासा का विषय बना हुआ है। बहरहाल, अमरकोश देखते हुए यहाँ उल्लेखनीय जिस एक और विशेष बात का पता चलता है, उसका महत्त्व इसलिए भी है कि उससे संस्कृत कोश-रचना की परम्परा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के सामाजिक-सांस्कृतिक स्वरूप का बोध भी प्राप्त हो जाता है। दरअसल यहाँ वह उल्लेख योग्य बात यह कि शब्दों के वर्गीकरण के साथ उसकी प्रस्तुति में 'अमरकोश' के अंतर्गत अमरसिंह ने बुद्ध को हिन्दू त्रिदेवों से पहले स्थान दिया गया है; जिससे यह प्रतीत होता है कि अमरसिंह बौद्ध थे।[73]

अमरकोश उत्तरकाल

अमरसिंह के बाद के कोशकारों को देखें तो उनमें शब्दचयन की बहुत प्रौढ़ता और व्यापकता दिखलाई देती है; जिसके अमरकोशोत्तरकाल में कोश-रचना की परम्परा के दृष्टिकोण से कुछ-एक आवश्यक और उचित कारण हो सकते हैं। वैसे यहाँ यह कह सकते हैं कि इस काल में संस्कृत के साथ पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश आदि में भी कोश-रचनाएँ हुई हैं। बहरहाल, चूँकि यहाँ पर उल्लेखनीय रूप से सिर्फ़ अमरकोश उत्तरकाल के संस्कृत कोशों का संक्षिप्त परिचय अपेक्षित है; अतः अब आगे उसी की चर्चा करेंगे –

क. शाश्वत कृत अनेकार्थ समुच्चयः : इसमें अनेकार्थ शब्दों का चयन हुआ है। शब्दों की अर्थ प्रस्तुति में यह कोश अमरकोश की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ तथा पूर्ण प्रतीत होता है जो शाश्वत को अमरसिंह का परवर्ती सिद्ध करता है। इनके समय का निर्णय अनुमानतः ही करना पड़ता है जो विद्वानों के मत में लगभग 600 ई॰ के आस-पास का है। कुछ विद्वान जो कालिदास को पंचम शती का मानते हैं वे शाश्वत को कालिदासोत्तरकालीन कोशकार मानते हैं क्योंकि कालिदास की तुलना में शब्दों के 'दृष्ट-शिष्ट-प्रयोग' होने का

[73] "अमरसिंह बौद्ध थे – यह केवल अनुश्रुति पर ही आश्रित तथ्य नहीं है, प्रत्युत अमरकोश के मंगल श्लोक में टीकाकारों के अनुसार भगवान बुद्ध की स्पष्ट स्तुति है। क्षीरस्वामी ने इस श्लोक (यस्य ज्ञानदयासिन्धोरगाधस्यानधा गुणाहः। सेव्यतामक्षयो धीराः स श्रिये चामृता च॥ - अमरकोश १।१) की बड़ी सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत कर 'अक्षय' शब्द से 'अक्षोभ्य' बुद्ध का तात्पर्य विवृत किया है। ...इतना ही नहीं, अमर ने स्वर्ग-वर्ग में देवों तथा दैत्यों के नामकीर्तन के अनन्तर आदिदेव के रूप में बुद्ध का ही सर्वप्रथम नामोल्लेख किया है (श्लोक १३-१५) ब्रह्मा तथा विष्णु से पहिले। फलतः उनके बौद्ध होने की घटना संशय से सर्वथा बहिर्भूत है।" – बलदेव उपाध्याय, *संस्कृत-शास्त्रों का इतिहास*, वही, पृष्ठ - 334

अभिमान भरने वाले शाश्वत कालिदास से परिचित हैं – यह तथ्य उनके शब्द-चयन में प्रयोगगत विशिष्टता से स्वभावसिद्ध है।[74]

ख. धनञ्जय कृत नाममाला : धनञ्जय कृत नाममाला व्यवहार में आने वाले लोकप्रचलित संस्कृत शब्दों का एक उपयोगी कोश है। इसमें प्रस्तुत दो सौ श्लोकों द्वारा समानार्थक शब्दों का संग्रह किया गया है। इस कोश में नवीन शब्दों के निर्माण हेतु कई उपाय बतलाए गए हैं, यथा – पृथ्वी वाचक शब्दों में 'धर' शब्द जोड़ने से पर्वत के नाम, मनुष्यवाची शब्दों के आगे 'पति' शब्द जोड़ने से राजा के नाम, वृक्षवाची शब्दों में 'चर' शब्द जोड़ने से बन्दर के नाम आदि। इस प्रकार शब्दों के चयन में लोकव्यवहार को ही विशेष महत्त्व दिया गया है जिस कारण यह कोश कुछ हद तक आज भी विशिष्ट प्रतीत होता है। 'अनेकार्थनाममाला' जो मूल कोश (नाममाला) का ही पूरक अंग है और 'अनेकार्थ निघण्टु' जो 153 श्लोकों का एक लघुग्रन्थ है को भी धनञ्जय कृत माना जाता है।[75]

ग. पुरुषोत्तम देव कृत त्रिकाण्डकोश, हारावली और वर्णदेशना : इनका समय 12वीं शती का उत्तरार्ध माना जाता है। इनके कोश के आधारग्रन्थ हैं – वाचस्पति का शब्दार्णव, व्याडि की उत्पलिनी तथा विक्रमादित्य का संसारावर्त। अमरसिंह के समान पुरुषोत्तम देव भी बौद्ध थे। अपने कोश में इन्होंने बुद्ध के नामों के साथ उनके पुत्र राहुल और प्रतिद्वन्दी देवदत्त के नाम का भी निर्देश किया है। इनकी कोश विषयक तीन रचनाएँ उपलब्ध होती हैं, यथा – त्रिकाण्डकोश (यह अमरकोश का पूरक ग्रन्थ है, जिसमें लोकव्यवहार में प्रयुक्त किन्तु अमरकोश में अनुपलब्ध शब्दों का विशेष संग्रह है।), हारावली (इसमें तत्कालीन अप्रचलित तथा असामान्य शब्दों का संग्रह हुआ है।) तथा वर्णदेशना (यह वर्तनी की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कोश ग्रन्थ है।) इसके अतिरिक्त एकाक्षर कोश व द्विरूप कोश भी पुरुषोत्तम देव के नाम से ज्ञात प्रख्यात लघुकोश हैं।[76]

घ. हलायुध कृत अभिधान-रत्नमाला : हलायुध (समय लगभग दसवीं शताब्दी) ने इस ग्रन्थ की रचना में अमरकोश को अपना आदर्श मानते हुए अमरदत्त, वररुचि, भागुरि तथा वोपालित से नवीन सामग्री का संकलन किया है। अभिधान रत्नमाला में पाँच

---

[74] बलदेव उपाध्याय, *संस्कृत-शास्त्रों का इतिहास*, वही, पृष्ठ - 346

[75] वही, पृष्ठ - 347

[76] वही, पृष्ठ - 349-350

काण्ड हैं, जिसमें पहले चार – स्वर, भूमि, पाताल तथा सामान्य – समानार्थक शब्दों का वर्णन करते हैं। अंतिम काण्ड (अनेकार्थ काण्ड) में नानार्थ तथा अव्ययों का वर्णन मिलता है। इसमें रूपभेद के द्वारा लिंग का निर्देश किया गया है। वहीं हलायुध का समय दसवीं शती का उत्तरार्ध निर्धारित माना जाता है।[77]

ङ. यादवप्रकाश कृत वैजयन्ती : वैजयन्ती नामक इस महत्त्वपूर्ण कोश में समानार्थ और नानार्थ नामक दो खण्ड हैं। नानार्थ खण्ड में शब्दों का चयन अक्षरक्रम से किया गया है। इस प्रकार वर्णक्रम से शब्द-संग्रह का इसमें नवीन प्रयास किया गया है। जो इसके कोशकार को नई शैली के प्रवर्तक के रूप में विशेष महत्ता प्रदान करता है। ज्ञात हो कि यादवप्रकाश रामानुजाचार्य (1055-1137 ई०) के विद्यागुरु थे, अतः इनके कोश-ग्रन्थ का रचनाकाल 11वीं शताब्दी का उत्तरार्ध मानना चाहिए।[78]

च. महेश्वर कृत विश्वप्रकाश : विश्वप्रकाश एक नानार्थ कोश है जिसमें शब्दों का चयन अंतिम वर्ण के आधार पर किया गया है, यथा – 'कद्विक' में अर्क, पिक आदि शब्दों की गणना है जिसमें ककार शब्द के अन्त में दूसरा अक्षर पड़ता है। कोश में रूप-भेद से ही लिंग का निर्देश किया गया है। साथ ही, इसके अन्त में अव्ययों का भी संकलन मिलता है। इस कोश-ग्रन्थ की रचना 1111 ई० में हुई थी और अपने ही समय में इस कोश को पर्याप्त प्रसिद्धि मिल गई थी।[79]

छ. अजयपाल कृत नानार्थसंग्रह : अजयपाल 12वीं सदी के कोशकार हैं। इनका परिचय इनके कोश की शब्द वर्तनी से लगाया जा सकता है, चूँकि ये ब तथा व में अंतर नहीं मानते। यह विशेषता अधिकतर बंगीय लेखकों में मिलती है, इससे वे बंगदेशीय सिद्ध होते हैं। इनके कोश-ग्रन्थ में शब्दों का चयन वर्णक्रमानुसार हुआ है, जो इन्हें विशिष्टता प्रदान करता है। अमरकोश के कई टीकाकारों ने इसको सप्रमाण माना है।[80]

ज. मेदिनि कोश/मेदिनी कोश : इस कोश के निर्माता मेदिनिकर हैं। यह कोश 'विश्वप्रकाश' के आधार पर निर्मित है। दोनों ही नानार्थक कोश हैं, जिनके शब्द-चयन में पर्याप्त भिन्नता है। विश्वप्रकाश के अंतिम वर्ण की प्राथमिकता के विपरीत इसमें अकारादि

---

[77] वही, पृष्ठ - 350-351

[78] वही, पृष्ठ - 351

[79] वही, पृष्ठ - 351-352

[80] वही, पृष्ठ - 352

वर्णक्रम को यथासंभव प्राथमिकता देने के साथ अंतिम वर्ण को भी समान महत्त्व दिया गया है। मेदिनी कोश शब्द संख्या तथा उसके चयन की व्यवस्था में विश्वप्रकाश से अधिक वृहत्तर और सुव्यवस्थित है। इन दृष्टियों से कोश का रचनाकाल 'विश्वप्रकाश' के बाद ही ठहरता है। विद्वानों के मत निर्णय के आधार पर मेदिनी कोश का रचनाकाल 14वीं सदी का प्रथम दशक मानना ठीक होगा।[81] किन्तु इसका उल्लेख डॉ० गोडे ने कवि ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'वर्णरत्नाकर' में भी खोज निकाला है अर्थात् विश्वप्रकाश का उल्लेख करने से तथा वर्णरत्नाकर में उल्लिखित होने से मेदिनीकोश का निर्माण काल १२०० ई० से १२७५ ई० के बीच में मानना उचित प्रतीत होता है।[82]

झ. मंख कृत अनेकार्थ कोश : अंतिम वर्णक्रम आबद्ध यह कोश 1007 पद्यों में बिना किसी अनुच्छेद के पूर्ण हुआ है। यह कोश मुख्यतः काश्मीर के कवियों द्वारा प्रयुक्त शब्द चयन को प्रस्तुत करता है और इसी दृष्टि से कुछ हद तक महत्त्वपूर्ण जान पड़ता है, संभवतः यही कारण है कि काश्मीर से बाहर इसका अधिक प्रचार नहीं हो सका।[83]

ञ. हेमचन्द्र कृत अभिधान-चिन्तामणि आदि कोश : हेमचन्द्र (1088-1175 ई०) ने जिन चार कोशों की रचना कर संस्कृत कोश परम्परा को आगे बढ़ाया, उनके नाम इस प्रकार से मिलते हैं; यथा – अभिधान-चिन्तामणि (समानार्थ शब्दों का कोश), अनेकार्थ-संग्रह (नानार्थ शब्दों का कोश), निघण्टु शेष (वैद्यक कोश) तथा देशीनाममाला (प्राकृत शब्दों का कोश) के रूप में हैं। कोशकारों के गुणदोष की विवेचना के अवसर पर हेमचन्द्र का कार्य महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है, यही कारण है कि हेमचन्द्र का प्रभाव उनके बाद के कोशकारों के ऊपर भी दिखलाई पड़ता है, यथा देखें – केशव कृत कल्पद्रु कोश जिसका रचनाकाल 1660 ई० है।[84]

ट. केशवस्वामी कृत नानार्थार्णव संक्षेप : यह नानार्थ शब्दों का सबसे बड़ा कोश है जिसमें लगभग 5800 श्लोक हैं। यह अक्षरों की गणना के आधार पर छः काण्डों में विभक्त है तथा प्रत्येक काण्ड लिंग के अनुसार 5 भागों में विभक्त है। इसके प्रत्येक भाग में शब्दों का संग्रह अक्षरक्रम में हुआ है। इस तरह की विशेषताएँ पूर्व में यादवप्रकाश कृत

---

[81] वही, पृष्ठ - 353

[82] द्रष्टव्य है डॉ० गोडे का लेख : *Studies in Indian Literary History Vol.* I pp. 281-289 (Bombay, 1953)

[83] बलदेव उपाध्याय, *संस्कृत-शास्त्रों का इतिहास*, वही, पृष्ठ - 354

[84] वही, पृष्ठ - 354

वैजयन्ती कोश में भी मिलती हैं। कोशकार का समय 1200 ई० के आस-पास माना जाता है, अतः नानार्थार्णव संक्षेप का रचनाकाल इसी समयावधि के लगभग होगा।[85]

ठ. केशव कृत कल्पद्रु कोश : यह कोश ज्ञात समानार्थक कोशों में सबसे वृहत्तर है जिसके लगभग चार हजार श्लोक तीन स्कन्धों भूमि, भुवः तथा स्वर्ग में विभक्त हैं। प्रत्येक स्कन्ध में अनेक खण्ड हैं। कोशकार ने इस कोश का रचनाकाल दिया है जो 1660 ई० (४७६१ कलि संवत्) है। इस कोश में अनेक ज्ञातव्य तथ्यों का संग्रह इसे विश्वकोश का रूप प्रदान करता है, जैसे – 'हस्ति-प्रकरण' (श्लोक 142 से 188 श्लोक) जिसमें हाथियों के नामों का ही संग्रह नहीं है, अपितु उनके उत्पत्तिस्थान का भी विशिष्ट निर्देश है। अतः कल्पद्रु कोश सिर्फ़ शब्दार्थ देने वाला ही कोश नहीं है, बल्कि यह विषयों का विस्तृत विवरण देने वाले एक विश्वकोश की भूमिका भी रखता है।[86]

ड. शाहजी महाराज कृत शब्दरत्न समन्वय कोश : शाहजी महाराज (1684-1712 ई०) तंजोर के महाराष्ट्र नरेश थे। ये छत्रपति महाराज शिवाजी के अनुज वेंकाजी (एकोजी) के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका शब्दरत्न समन्वय कोश एक प्रकार का नानार्थ कोश है जिसमें शब्द-संग्रह की नवीन दृष्टि दिखलाई देती है। सामान्य दृष्टि से अंतिम वर्णों के अनुसार शब्दों का संग्रह मिलता है किन्तु इसमें (शब्दरत्न समन्वय कोश) प्रत्येक वर्ग के भीतर अक्षरक्रम से शब्दों का विन्यास किया गया है। इस प्रकार की विशेषता वस्तुतः बहुत कम संस्कृत कोशों में मिलती है। वैसे इस कोश की रचना स्वयं शाहजी ने की है, जिसके प्रमाण स्वरूप यह बतलाया जाता है कि इसका एक नाम राजकोश भी है।[87]

ढ. शब्द-रत्नाकर : संस्कृत में इस नाम से ज्ञात अनेक कोश उपलब्ध हैं, यथा – महीप कृत महीप-कोश नामक शब्द-रत्नाकर जो पूर्णतः उपलब्ध नहीं होता, वाचनाचार्य श्री साधु सुन्दरगणि रचित कोश भी शब्द-रत्नाकर नाम से प्रख्यात है जो अमरकोश की भाँति समानार्थक शब्दों का कोश है तथा वामनभट्ट बाण द्वारा निर्मित कोश भी शब्द-रत्नाकर नाम से ज्ञात है जो त्रिकाण्डात्मक और अमरकोश शैली में रचित है।[88]

---

[85] वही, पृष्ठ - 355-356

[86] वही, पृष्ठ - 356-357

[87] वही, पृष्ठ - 357-358

[88] वही, पृष्ठ - 358-359

ण. नानार्थरत्नमाला : इस कोश के रचनाकार इरुग दण्डाधिनाथ भास्कर हैं जो विजयनगर के महाराज हरिहर द्वितीय के सेनानायक भी थे। इस कोश का केवल प्रथम परिच्छेद 'एकाक्षरकाण्ड' ही प्रकाशित मिलता है, जिसका समय 14वीं शताब्दी का उत्तरार्ध ज्ञात होता है। कोश एकाक्षर शब्दों का प्रामाणिक चयन एवं अर्थ प्रस्तुत करता है।[89]

त. हर्षकीर्ति कृत शारदीयाख्यनाममाला : शारदीयाख्यनाममाला या शारदीयाभिधानमाला समानार्थक कोश-ग्रन्थ है। जो तीन काण्डों और प्रत्येक काण्ड के कई वर्गों में विभक्त हुआ है। उक्त कोश के प्रणेता हर्षकीर्ति का ऐसे तो कहीं विशेष परिचय नहीं मिलता किन्तु ज्ञात होता है कि इन्होंने व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष आदि विषयों के भी कुछ ग्रन्थों का निर्माण किया था।[90] जिससे हर्षकीर्ति कृत इस शारदीयाख्य नाममाला का उल्लेख भी संस्कृत कोश-रचना की परम्परा में कहीं-कहीं मिल जाता है।

शब्द-स्वरूप की दृष्टि से उक्त कोशों के तीन विभाग होंगे, जैसे – वैदिक, लौकिक तथा उभयात्मक कोश। निघण्टु, निरुक्त आदि वैदिक कोश हैं, अमरकोश आदि लौकिक कोश हैं इसके उत्तरोत्तर काल के कोशों को उभयात्मक कहना उचित होगा। संस्कृत में कई विशिष्ट विषयों जैसे संगीत, नृत्य, वैद्यक आदि को लेकर भी कोशों की रचना हुई है। यहाँ उपरोक्त विवरण में कुछ मुख्य कोशकारों का ही सामान्य परिचय दिया गया है। इसके अतिरिक्त भी अनेक कोश अभी तक हस्तलिखित रूप में हैं तथा अनेक कोशों का परिचय केवल संस्कृत के कुछ एक टीका शास्त्रों के उद्धरणों के रूप में मिलता है। संस्कृत कोश टीकाओं के कृतित्व का भी बड़ा महत्त्व है क्योंकि उससे इनमें दिए गए नए शब्द-अर्थ और नई व्याख्याओं के साथ अनेक कोशकारों तथा कोशग्रन्थों के नाम एवं उनसे संबंधित उद्धरण आदि भी हमें मिल जाते हैं। बहरहाल, आधुनिक काल में संस्कृत भाषा के कोश जहाँ एक ओर कई विदेशी विद्वानों ने तैयार किया, जिनमें डॉ० विल्सन (1819 ई०) तथा मोनियर विलियम्स (1851 ई०) को विशेष प्रसिद्धि मिली, वहीं दूसरी ओर भारतीय विद्वानों ने भी नई परिपाटी को अपनाते हुए इसमें अपना उत्कृष्ट एवं विशेष उल्लेखनीय योगदान दिया; जिसमें राजा राधाकांत देव बहादुर के शब्दकल्पद्रुम (1873 ई०), तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य के वाचस्पत्यम् (1873 ई०), वामन शिवराम आप्टे के स्टूडेंट्स इंग्लिश-संस्कृत

[89] वही, पृष्ठ - 359

[90] वही, पृष्ठ - 359-360

डिक्शनरी (1884 ई०) एवं द प्रैक्टिकल संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी (1890 ई०) आदि का कुछ विशेष स्वीकार और स्वागत हुआ है।[91]

पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश में कोश-रचना की परम्परा

संस्कृत कोश-परम्परा के बाद पालि[92] भाषा के कोशों का उल्लेख भी महत्त्वपूर्ण जान पड़ता है। संभवतः पालि में कोशों की परम्परा क्षीण रही होगी चूँकि इसमें लिखित कोशों की संख्या अधिक नहीं है। भिक्षु धर्मरक्षित पालि साहित्य का इतिहास[93] में उल्लेख करते हैं कि पालि में लिखित तीन कोश मिलते हैं; जैसे – अभिधानप्पदीपिका[94], एकक्खरकोस[95] और सद्दत्थरतनावली। पालि के इन कोशों को बौद्ध-कोश भी कहा गया क्योंकि इनकी मुख्य उपयोगिता पालि भाषा के बौद्ध-साहित्य को समझने में ही थी। अतः पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश कोश-रचना की परम्परा में सर्वप्रथम इन्हीं पालि कोशों की चर्चा शुरू करते हुए यहाँ हम क्रमशः प्राकृत एवं अपभ्रंश कोश-रचना की परम्परा का भी उल्लेख करेंगे।

पालि भाषा में प्रथम कोश सिंहली बौद्ध भिक्षु मोग्गल्लान थेर[96] द्वारा रचा गया अभिधानप्पदीपिका (अभिधानप्रदीपिका) प्राप्त होता है। इसकी रचना बारहवीं शताब्दी में हुई है और उल्लेखनीय है कि "इस ग्रन्थ में 1203 गाथाएँ आई हुई हैं। ग्रन्थ तीन भागों में विभक्त है – (१) सग्गकण्ड (स्वर्ग-काण्ड) – इसमें देवता, भगवान बुद्ध, देवयोनि, इन्द्र, निर्वाण आदि के पर्यायवाची शब्दों का संकलन है, (२) भूकण्ड (भू-काण्ड) – इसमें पृथ्वी, लोक, पशु, पक्षी, धन, युद्ध आदि लौकिक शब्दों के पर्यायवाची शब्द आए हुए हैं, (३) सामञ्ञकण्ड (श्रामण्य- काण्ड) – इसमें सामान्य शब्दों के पर्यायवाची शब्द संगृहीत

---

[91] http://www.pravakta.com/kosh-parampara-singhavlokan/ : Accessed on 16/04/2021

[92] "हिन्दी में हम जिसे पाली लिखा करते हैं, वह मूल शब्द पालि है, जो पंक्ति का वाचक है।" – हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिन्दी साहित्य की भूमिका*, वही, पृष्ठ - 171

[93] भरतसिंह उपाध्याय अपने *'पालि साहित्य का इतिहास'* (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण 1951 ई०) में पालि भाषा के दो प्रसिद्ध कोश अभिधानप्पदीपिका और एकक्खरकोस का ही उल्लेख करते हैं।

[94] देवनागरी लिपि में मुनि जिनविजय संपादित, गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर, अहमदाबाद, विक्रम संवत् १९८० (सन् १९२३ ई०)

[95] मुनि जिनविजय संपादित 'अभिधानप्पदीपिका' के संस्करण में ही पृष्ठ 157 से 170 के बीच 'एकक्खरकोस' सम्मिलित है।

[96] सिंहली भिक्षु मोग्गल्लान थेर लंका-नरेश पराक्रमबाहु (सन् 1153-1186 ई०) के समय में पोलोन्नरुव के जेतवन नामक विहार में रहते थे। यहाँ कोशकार मोग्गल्लान को वैयाकरण मोग्गल्लान से भिन्न समझना चाहिए क्योंकि ये दो अलग-अलग व्यक्ति हैं। कोशकार मोग्गल्लान को नव मोग्गल्लान भी कहा गया है।

हैं। यह ग्रन्थ संस्कृत-कोश अमरकोश के समान लिखा गया है।"[97] श्रीलंका, बर्मा आदि बौद्ध देशों में पालि कोश ग्रन्थ अभिधानप्पदीपिका का बहुत प्रचार है। पालि का दूसरा ज्ञात और उल्लेखनीय कोश बर्मी भिक्षु सद्धम्मकित्ति (सद्धर्मकीर्ति) कृत एकक्खरकोस (एकाक्षरकोश) है। इसकी रचना 1465 ई॰ में हुई है और "इसमें केवल 123 गाथाएँ आयी हैं और इनमें अ, आ आदि स्वरों से लेकर पाँचों वर्गों और स, ह, ळ, अं तक के सभी व्यंजनों का अर्थ दिया गया है और बतलाया गया है कि कौन-कौन से स्वर और व्यंजन किन-किन अर्थों में प्रयुक्त होते हैं।"[98] इसके लेखक ने सन् 1465 ई॰ में इस कोश की रचना संस्कृत के आधार पर की थी। किन्तु इसमें केवल संस्कृत कोशों का अनुकरण नहीं है बल्कि यह बुद्ध के वचनों के आधार पर बनाया गया एकाक्षर कोश है चाहे भले ही इसकी शैली संस्कृत कोशों-सी हो। पालि का तीसरा कोश सद्दत्थरतनावली आधुनिक काल यानी सन् 1927 से 1932 ई॰ में लिखा गया है। यह पालि में लिखित एवं सम्पादित एक विशाल शब्दकोश है, जिसके चार भाग ही प्रकाशित हैं। इनके लेखक बर्मी भिक्षु सोमाभिसिरि, सूरिय, राजिन्द और ञान हैं और भिक्षु ञान ने ही इसके चारों भागों का सम्पादन भी किया है। इसके लेखकों और सम्पादकों ने यूरोपीय भिक्षुओं के निवेदन पर इस विशालकाय शब्दकोश की पालि में रचना की थी। इस कोश में वर्णित प्रत्येक अक्षर और शब्द के अर्थ देकर त्रिपिटक से उसके उद्धरण भी दिए गए हैं। बहरहाल, इन ज्ञात कोशों के अतिरिक्त कहीं-कहीं पालि के 'महाव्युत्पत्ति' कोश का भी उल्लेख मिलता है; जिसके 285 अध्याय में लगभग नौ हजार श्लोकों का परिचय है। यह बौद्ध धम्म के पारिभाषिक शब्दों का अर्थ देने के साथ कई पशु, पक्षियों, वनस्पतियों और रोगों आदि के पर्यायों का संग्रह भी प्रस्तुत करता है। इसमें लगभग पालि के 9000 शब्दों के साथ कई मुहावरों, नामधातु के रूपों और वाक्यों का भी संकलन हुआ है।[99] इस प्रकार पालि कोश अपनी शब्दवाली में बौद्ध धम्म और उसकी दर्शन संस्कृति की परम्परा से कुछ हद तक जुड़े हुए हैं; जिसकी महत्ता में बौद्ध साहित्य और उसकी शिक्षाओं के प्रभाव को प्रमुखता से समझा जा सकता है।

---

[97] भिक्षु धर्मरक्षित, *पालि साहित्य का इतिहास*, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पुनर्मुद्रण विक्रम संवत् २०६६ (२००९ ई॰), पृष्ठ - 202

[98] वही, पृष्ठ - 202-203

[99] श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), *हिंदी शब्दसागर (प्रथम भाग)*, वही, संपादकीय प्रस्तावना, पृष्ठ - 6

प्राकृत भाषा का पहला कोश धनपाल रचित पाइयलच्छीनाममाला को माना जाता है जिसका रचनाकाल 962 ई० है; इसमें 279 गाथाएँ हैं, जो परिच्छेदों में विभक्त नहीं है, किन्तु इसमें चार विभाग किए गए हैं। यह ग्रन्थ अपने समय में बहुत प्रसिद्ध था। हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत कोश 'देशीनाममाला' में इसका उपयोग किया है। हेमचन्द्र का यह प्राकृत कोश अपने ढंग का एक रोचक कोश-ग्रन्थ है क्योंकि इसमें ऐसे कई शब्द आए हैं जो देशीय न होकर तद्भव की कोटि में रखे जा सकते हैं। इसमें आठ अध्याय या वर्ग हैं जिनमें शब्दों का संग्रह आदि अक्षर के आधार पर किया गया है। कोश के शब्दार्थों के अवलोकन से उस समय के लोकप्रचलित रीति-रिवाजों का भी भली-भाँति बोध होता है जिस दृष्टि से यह कोश विशेष अनुसंधान योग्य जान पड़ता है। विजयराजेन्द्र सूरि कृत 'अभिधानराजेन्द्र' भी प्राकृत का एक बृहद् कोश है। यह जैनों के मत, धर्म और साहित्य का आधुनिक प्रणाली में रचित सात भागों में संकलित ऐसा महाकोश है, जो विश्वकोशात्मक ज्ञानकोश की मिश्रित शैली का आधुनिक कोश कहा जा सकता है।

बहरहाल, क्रमशः अपभ्रंश[100] कोशों के रूप में प्रायः प्राकृत की कोश शैली का ही अनुगमन किया गया है। अतः अपभ्रंश शब्दों के लिए भी प्रायः प्राकृत के कोश ही उपयोग में लाए जाते रहे हैं; जिनसे अपभ्रंश भाषा के शब्दों की कठिनाइयों का भी समाधान हुआ है और चूँकि इन सभी प्राकृत कोशों में अपभ्रंश शब्दों की ही अधिकता है इसलिए वस्तुतः यह भी ठीक ही कहा गया कि "पतंजलि प्रभृति संस्कृत वैय्याकरणों के मतानुसार संस्कृत से निम्न सभी प्राकृत भाषायें अपभ्रंश के अन्तर्गत हैं। परन्तु प्राकृत भाषा के व्याकरणविदों ने अपभ्रंश भाषा को प्राकृत का ही एक अवान्तर भेद माना है। काव्यालंकार की टीका में नामसिन्धु ने लिखा है – 'प्राकृतमेवापभ्रंशः' अर्थात् अपभ्रंश भी शौरसेनी, मागधी आदि की भाँति एक प्रकार की प्राकृत ही है।"[101] और इसलिए अपभ्रंश का कोई विशिष्ट कोश उपलब्ध नहीं होता। फिर भी, यहाँ यह बात तो उल्लेखनीय है ही कि अपभ्रंश शब्दावली के बहुत से शब्दों का प्रयोग हिन्दी प्रदेश की आंचलिक बोलियों में होता आया है।

---

[100] "हिन्दी शब्दकोश में अपभ्रंश की देन तद्भव शब्दों के विषय में ही हो सकती है; क्योंकि अपभ्रंश में प्रायः तत्सम शब्दों का बहिष्कार किया गया है। ...साहित्यिक अपभ्रंश में तत्सम शब्द नहीं मिलते।" – नामवर सिंह, *हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पुनर्मुद्रण संस्करण - 2015 ई०, पृष्ठ - 141

[101] अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, भूमिका, पृष्ठ - 38

आधुनिक भारतीय भाषाओं में कोश-रचना की परम्परा

भारत में कोश-परम्परा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बावज़ूद आधुनिक भारतीय भाषाओं में कोश-रचना का प्रारंभ अठारहवीं शताब्दी में हुआ। मुख्य रूप से यह कार्य यूरोपीय संपर्क के बाद सामने आया है। भारत में विदेशी विद्वानों, धर्म-प्रचारकों और शासक अधिकारियों द्वारा आधुनिक ढंग से कोश-निर्माण का कार्य आरंभ हुआ। ये कोश मुख्यतः दो रूपों में बने – विदेशी भाषाओं (जैसे अंग्रेजी) में और अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में। भारत में विदेशी भाषाओं के माध्यम से भारतीय भाषाओं के जो कोश बने उनमें संस्कृत के कोशों का स्थान महत्त्वपूर्ण है। दूसरे वे कोश हैं जो अंग्रेजी आदि भाषाओं के माध्यम से बने, जो या तो हिन्दुस्तानी, हिन्दी और उर्दू के कोश हैं या अन्य भारतीय भाषाओं के। 1819 ईस्वी में डॉ॰ विलसन का 'संस्कृत इंग्लिश कोश' प्रकाशित हुआ; अंग्रेजी माध्यम से प्रकाशित होने वाले इस संस्कृत कोश को इस दिशा में एक आरंभिक कार्य कहा जा सकता है। इस कृति की भूमिका से ज्ञात होता है कि उस समय पुरानी पद्धति के कुछ संस्कृत कोश उपलब्ध थे। किन्तु यह कोश एक पर्यायवाची द्विभाषी कोश कहा जा सकता है। मोनियर विलियम्स के भी दो कोश – संस्कृत अंग्रेजी कोश और इंग्लिश संस्कृत कोश – जिनका प्रकाशन 1851 ई॰ में हुआ, महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। विलियम्स के कोश में धातुमूलक व्युत्पत्ति के साथ-साथ शब्दप्रयोग के संदर्भ का संकेत भी दिया गया है। इसके बाद आए वामन शिवराम आप्टे के संस्कृत-अंग्रेजी और अंग्रेजी-संस्कृत कोशों में न केवल संकेतमात्र बल्कि उद्धरण भी दिए गए हैं जो आप्टे के कोशों को पूर्व के कोशों की अपेक्षा अधिक उपयोगी बनाता है।[102] इनके अतिरिक्त अल्प महत्त्व के अनेक संस्कृत-अंग्रेजी कोश बनते रहे जिनमें कुछ प्रसिद्ध कोशों के नाम निम्न हैं – संस्कृत अंग्रेजी कोश (संपादक – डब्ल्यू॰ यीट्स, 1846 ई॰), संस्कृत डिक्शनरी (थियोडोर वेन्फे – 1866 ई॰) संस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी (लक्ष्मण रामचंद्र वैद्य – 1889 ई॰), आदि।

संस्कृत के साथ ही आरंभ में पश्चिमी विद्वानों ने हिन्दुस्तानी, हिन्दी और उर्दू के आधुनिक कोशों का निर्माणकार्य भी किया; जिसके पीछे के प्रमुख कारणों में ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार और शासक अधिकारियों के कार्य-कौशल को बढ़ाना था। बहरहाल, इसके

[102] श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), *हिंदी शब्दसागर (प्रथम भाग)*, वही, संपादकीय प्रस्तावना, पृष्ठ - 17

अतिरिक्त भारतीय विद्या, भारतीय दर्शन, वैदिक तथा उससे इतर संस्कृत साहित्य के विद्याप्रेम और भाषावैज्ञानिक अनुशीलन के लिए भी निःस्वार्थ भाव से यह सेवा की गई और कई महत्त्वपूर्ण कोशग्रन्थ बने। भारतीय आधुनिक भाषाओं में हिन्दी के विशिष्ट स्थान और महत्त्व की घोषणा किए बिना भी पाश्चात्य विद्वानों ने इसे हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा और संपर्क भाषा मान लिया था। वे हिन्दी-उर्दू को हिन्दुस्तानी मान कर ही चल रहे थे। अतः हिन्दुस्तानी के कोशों की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य विलियम हंटर का हिन्दुस्तानी-इंग्लिश डिक्शनरी (1808 ई०) के रूप में था, हंटर का कोश निरंतर संशोधित और परिवर्धित संस्करणों में क्रमशः 1819 ई०, 1820 ई० और 1834 ई० में प्रकाशित होता रहा। एम० टी० आदम का कोश 'दि डिक्शनरी आव हिन्दी ऐंड इंग्लिश' जॉन शेक्सपियर के सन् 1817 ई० के कोशकार्य 'डिक्शनरी ऑफ़ हिन्दुस्तानी-इंग्लिश' से कुछ पहले उपलब्ध था। वहीं सन् 1879 ई० में 'ए न्यू हिन्दुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी' नाम से फैलन ने बड़े श्रम के साथ एक कोश का संपादन किया। आधुनिक कोशविद्या की पद्धति से निर्मित यह ऐसा कोश है जिसमें पर्यायवाची शैली का भी योग मिलता है उसमें उद्धृत अंश एक ओर तो हिन्दुस्तानी साहित्य से लिए गए हैं वहीं साथ में लोकगीतों के उदाहरण भी पर्याप्त मात्रा में दिए गए हैं। बहरहाल, इस पूरे कालखंड में हिन्दुस्तानी की व्यावहारिक समझ और प्रयोग के लिए पश्चिमी विद्वानों द्वारा कोश-निर्माण के कई कार्य संपन्न भी हुए ही थे। अतः यहाँ इतना ही कहना है कि हिन्दी के नवीन कोशों की पहली पहल और प्रेरणा पश्चिम के कोशकारों द्वारा ही प्राप्त हुई जान पड़ती है। वहीं आगे स्वातंत्र्योत्तर भारत में पश्चिम के विद्वानों द्वारा किए गए कोश कार्य के क्षेत्र में एक उल्लेखनीय नाम फ़ादर कामिल बुल्के का आता है। वे कुछ यशस्वी भारतविदों में से एक थे। सन् 1968 ई० में आया इनका 'अंग्रेजी-हिन्दी कोश' कोशकारिता के क्षेत्र में हुए उल्लेखनीय उपलब्धियों में से एक माना जाता है।[103] जिसमें शब्दों के न केवल प्रचलित और विविध प्रयोग दिए गए हैं बल्कि

---

[103] "इससे पहले लगभग पचास अंग्रेज़ी-हिन्दी शब्दकोशों का प्रणयन हो चुका था। सबसे पहला कोश हिन्दुस्तानी भाषा का कोश है, जो 1773 ई० में लन्दन से प्रकाशित हुआ था। इसके कोशकार जॉन फ़रग्युसन हैं। महत्त्व की दृष्टि से फ़ादर जे० डी० वेट का हिन्दी भाषा का शब्दकोश (बनारस, 1870 ई०), एम० डब्ल्यु० फैलन का हिन्दुस्तानी कोश (बनारस) और जे० टी० प्लाट्स का उर्दू-हिन्दी और अंग्रेज़ी शब्दकोश (लन्दन, 1884 ई०) पुराने कोशों में सबसे अधिक उल्लेखनीय हैं।" – दिनेश्वर प्रसाद, *फ़ादर कामिल बुल्के (भारतीय साहित्य के निर्माता)*, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2002 ई०, पृष्ठ - 85

अंग्रेजी शब्दों के अर्थों का व्यावहारिक चयन संदर्भ और स्थिति के अनुसार किया गया है। यह कोश प्रमुख रूप से हिन्दी सीखने वालों की समस्याएँ दूर करने के उद्देश्य से लिखा गया है; जिसकी आज भी उतनी ही उपयोगिता है।

भारतीय हिन्दीतर भाषाओं में कोश-रचना की परम्परा प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक बराबर चली आ रही है। तमिल भाषा में कोश-निर्माण की परम्परा बहुत प्राचीन कही जाती है। प्रसिद्ध तमिल व्याकरण ग्रन्थ 'तालकाप्पियम्' में ग्रन्थकार ने सूत्र शैली में शब्दकोश तैयार किया था। ग्रन्थकार ने तमिल भाषा के शब्दों को चार वर्गों में विभक्त किया है, यथा – सामान्य देशी शब्द, साहित्यिक शब्द, विदेशी भाषाओं से व्युत्पन्न शब्द और संस्कृत से व्युत्पन्न शब्द। इसके साथ इस ग्रन्थ में शब्द-संग्रह वर्णानुक्रम के साथ हुआ है। यद्यपि इसका प्रकाशन अट्ठारहवीं शताब्दी का है फिर भी इसकी रचना ईसा की प्रथम-द्वितीय शताब्दी बतलाई जाती है। तमिल का दूसरा कोश 'तिवाकरम' है। बारह खंडों का यह कोश अमरकोश के आधार पर बना है। इसके सभी दस खंडों में वर्गमूलक शब्दसंचय है, ग्यारहवाँ खंड नानार्थ शब्दों का और बारहवाँ खंड समूहवाचक शब्दों का है। आधुनिक दौर में भी ऐसे कई अन्य तमिल कोश बनते आ रहे हैं जिनमें तमिल-पुर्तगाली कोश (1676 ई०), मलाबार ऐंड इंग्लिश डिक्शनरी (1779 ई०) आदि मुख्य माने जा सकते हैं। बहरहाल, इसके अतिरिक्त बंगला और मराठी का कोश साहित्य अत्यंत समृद्ध माना जाता है। अन्य भारतीय भाषाओं, यथा – पंजाबी, ओड़िया, गुजराती, नेपाली, काश्मीरी, उर्दू, असमिया आदि में भी कोशों की परम्परा रही है, जो वर्तमान में भी चली आ रही है, जिनमें से कुछ प्रमुख कोश निम्न हैं; जैसे राधाकमल विद्यालंकार का बंगला अभिधान (1811 ई०), पादरी केरे साहब का बंगला-इंग्लिश कोश (1825 ई०), ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा तैयार कराया गया बंगला-संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी (1833 ई०), ज्ञानेन्द्रमोहन दास का बंगला भाषार अभिदान (द्वितीय संस्करण 1927 ई०), चीफ कैप्टन गील्सवर्थ का अंग्रेजी-मराठी कोश (1831 ई०), महाराष्ट्र भाषे चा कोश (1829 ई०), रघुनाथ भास्कर गाडबोले का हंसकोश (1863 ई०), वोडकर का रत्नकोश (1869 ई०), लोदियन मिशन का पंजाबी शब्दकोश (1854 ई०), विशनदास पुरी का पंजाबी कोश (1922 ई०), मुहम्मद मुस्तफ़ा ख़ाँ मद्दाह का द्विभाषी उर्दू-हिन्दी शब्दकोश (1959 ई०) आदि।

पश्चिमी देशों में कोश-रचना की परम्परा : एक संक्षिप्त परिचय

आधुनिक कोश-विज्ञान का उदय पश्चिम में हुआ। पश्चिमी विद्वानों के संपर्क से भारत में भी आधुनिक कोश-पद्धति का विकास 18वीं सदी में आरंभ हुआ। आधुनिक कोश-रचना की परम्परा पश्चिम में पहले ही प्रचलित हो चुकी थी। पश्चिमी देशों में धर्मग्रन्थों के हाशिए पर उस ग्रन्थ में शामिल कुछ कठिन शब्दों के अर्थ लिखने की परम्परा रही है। जिसे बाद में अनुक्रमणिका या शब्दसूची का रूप दिया जाने लगा। इंग्लैंड में मिली 725 ई० की 'कॉर्पस ग्लॉसरी' (Corpus Glossary) इसी तरह की एक शब्दसूची है जिसमें लैटिन में अर्थ दिए गए हैं। यूरोप में 10वीं सदी में लैटिन शब्दों को आधार बना कर अंग्रेजी, फ्रांसीसी, और इटेलियन आदि के कुछ आरंभिक कोशों का निर्माण होना शुरू हुआ।[104] जिससे राह निकली और आगे चल कर "15वीं शताब्दी में प्रथम अंग्रेजी-लैटिन कोश का निर्माण हुआ जिसकी प्रविष्टियाँ पूर्णतया वर्णानुक्रम के अनुसार है।"[105] बहरहाल, यहीं से पश्चिमी कोशों तथा आधुनिक कोश विज्ञान का आरंभ माना जाता है। इस क्षेत्र में इंग्लैंड में पहले कई व्यक्तिगत प्रयास होने प्रारंभ हुए। यथा – "सन् 1604 में जी हार्वे का पहला अंग्रेजी कोश है जिसमें सिर्फ साहित्य के शब्द लिए गए हैं, सामान्य बोलचाल के शब्द नहीं हैं। 1623 में कॉड्रे (Cawdrey) के कोश में स्त्रियों के लिए शब्दों के संकलन के साथ-साथ बाज़ारू और शिष्ट व्यवहार में प्रयुक्त होने वाले शब्द भी दिए गए।"[106] आगे चल कर पश्चिम में इन्हीं व्यक्तिगत प्रयासों से 17वीं शताब्दी में जान बुलोकर (1616 ई०), हेनरी कौकेरम (1623 ई०), थॉमस ब्लाउंट (1656 ई०), फ़िलिप्स (1658 ई०), कोल्स (1676 ई०) इत्यादि के कोशों का भी निर्माण हुआ। वहीं आगे चल कर 1721 ई० में एन० बेली का Universal Etymological English Dictionary नामक कोश प्रकाशित हुआ, जिसमें व्युत्पत्ति पर अधिक बल दिया गया था। सन् 1755 ई० में डॉ० जॉनसन का कोश A Dictionary of English Language दो भागों में प्रकाशित हुआ जिसने आधुनिक अंग्रेजी कोश-रचना में

---

[104]https://epgp.inflibnet.ac.in/epgpdata/uploads/epgp_content/S000018HI/P001757/M023492/ET/1506596694HND_P5_M31_Koshvigyan.pdf : Accessed on 28/02/2021

[105]https://epgp.inflibnet.ac.in/epgpdata/uploads/epgp_content/S000018HI/P001757/M023492/ET/1506596694HND_P5_M31_Koshvigyan.pdf : Accessed on 28/02/2021

[106]https://epgp.inflibnet.ac.in/epgpdata/uploads/epgp_content/S000018HI/P001757/M023492/ET/1506596694HND_P5_M31_Koshvigyan.pdf : Accessed on 28/02/2021

कई वर्षों तक अपना प्रभाव बनाए रखा। कुछ आगे चल कर 1874 ई॰ में आर जी लॉथम द्वारा इसी कोश का संशोधित संस्करण प्रकाशित कराया गया, जो इसके महत्त्व को और अधिक रेखांकित करता है। 19वीं सदी में कोश के क्षेत्र में एक नया प्रयास हुआ जो कहीं न कहीं आज भी अपना वर्चस्व बनाए हुए है; इसमें कॉलरिज के संपादन में सन् 1884, 1928 और 1933 ई॰ में तीन अलग-अलग संस्करण में एक अंग्रेजी कोश प्रकाशित हुआ। बाद में एफ जे फर्निवाल, जे ए एच मरे, ब्रैडले, डबल्यु क्रेगी, सी टी ओनियन्स आदि ने इसी कोश पर कार्य किया और जो आजकल Oxford English Dictionary के नाम से बड़ा प्रसिद्ध है।[107] ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी की तैयारी का कार्य आरंभ 1857 ई॰ से शुरू हो कर 1879 ई॰ तक होता रहा; और 1884 ई॰ में इस कोश का प्रथम अग्रिम संपादित प्रारूप अंश छपकर आ गया था। आगे इसमें 1885 ई॰ से लेकर 1928 ई॰ तक संपादन और प्रकाशन का कार्य चलता रहा।[108] इस तरह लगभग 44 वर्षों में इसका प्रकाशन संभव हुआ और इसको तैयार होने में 73 वर्ष से अधिक समय लगा किन्तु कहना न होगा कि इसकी बहुत सी आधारिक सामग्री पूर्व के कई अंग्रेज़ी कोशकारों के कोशों में संकलित हो चुकी थी, जिससे निश्चित ही इसमें कुछ सहयोग मिला होगा। इस कोश के आज भी कई संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण प्रकाशित हो रहे हैं। अमेरिका में भी कोशों का विकास अलग से हुआ; जिसमें मुख्य नाम कोशकार एन वेब्स्टर द्वारा 1828 ई॰ में तैयार किए गए कोश The American Dictionary of English Language का आता है। यह कोश व्युत्पत्ति, उच्चारण, व्याख्या, परिभाषा इत्यादि की दृष्टि से जॉनसन के कोश से भी अधिक प्रामाणिक और उपयोगी प्रतीत होता है।[109] बहरहाल, इस प्रकार कह सकते हैं कि पश्चिम में अंग्रेजी की कोश-परम्परा बहुत समृद्ध रही है।

भारत में कोश-रचना की अद्यतन परिस्थितियाँ और उसके कुछ पहलू

संस्कृत में शब्द को ब्रह्म रूपक माना गया है। ईसाइयत में शब्द या लोगोस को कारयित्री प्रतिभा (Creative genius) माना गया है। इसी प्रकार क़ुरान को याद रखने वाले हाफ़िज

[107] https://epgp.inflibnet.ac.in/epgpdata/uploads/epgp_content/S000018HI/P001757/M023492/ET/1506596694HND_P5_M31_Koshvigyan.pdf : Accessed on 28/02/2021

[108] श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), *हिंदी शब्दसागर (प्रथम भाग)*, वही, संपादकीय प्रस्तावना, पृष्ठ - 29

[109] https://epgp.inflibnet.ac.in/epgpdata/uploads/epgp_content/S000018HI/P001757/M023492/ET/1506596694HND_P5_M31_Koshvigyan.pdf : Accessed on 28/02/2021

कहलाते थे। संस्कृत में भाषा को व्याकृता वाणी कहा गया है यानी वह नियमों से बनी और नियमों से बँधी सुव्यवस्थित क्रमबद्ध रूप में बोली जाती है। बहरहाल, कोई व्यक्ति जब किसी नई भाषा को सीखना आरंभ करता है तो वह सबसे पहले कोश की सहायता लेना चाहता है। शब्दकोश को पहले केवल व्याकरण का परिशिष्ट माना जाता था; यह कोश की आवश्यकता और उपयोगिता के लिए भी एक पर्याप्त तर्क है। जो कोश-निर्माण प्रक्रिया की समसामयिकता को अनिवार्य बनाता है। चूँकि "कोश एक भाषा के शब्दों के अर्थों का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता बल्कि उस समाज के भाषिक ज्ञान, समाज का विकास, संस्कृति एवं समाज की मर्यादाओं का भी प्रतिनिधित्व करता है।"[110] जिस कारण किसी भी भाषा के कोशों में शब्द-संपदा की क्रियाशीलता बनी रहती है। यानी अधिकांश भाषाओं में नित्य कई नए शब्दों और उनके प्रयोगों का निर्माण भी होता ही रहता है। अमूमन यह बात कही ही जाती है कि जीवित भाषाओं के शब्द स्थिर नहीं रहते है, वे अपने प्रयोगों में गतिशील बने रहते हैं। ऐसी भाषाओं में नए शब्दों की आवश्यकता भी लगातार बनी रहती है।

वर्तमान समय में भारत में कोश-रचना की उत्तरोत्तर अद्यतन परिस्थितियों पर दृष्टि डालें तो यह तथ्य और स्पष्ट रूप में सामने आता है कि उत्तरवर्ती कोश सामान्यतः किसी पूर्ववर्ती कोश का परिष्कृत, परिवर्द्धित अथवा संक्षिप्त रूप हैं। वास्तव में कोशों के निर्माण की यह प्रक्रिया ही कोश-रचना की परम्परा का एक प्रमुख आधार हैं। इसीलिए यह भी उचित ही कहा गया है कि पारस्परिक निर्भरता वस्तुतः भाषा-विज्ञान का ही एक मूलभूत सिद्धान्त है। और यहाँ हम यह कह सकते हैं कि यह उक्ति आजकल के कोशों पर और भी अधिक मात्रा में लागू होती है। बहरहाल, किसी कोश में शब्दों और अर्थों से भी अधिक उनकी नियोजन-प्रणाली यानी कोश में उनकी प्रविष्टि-व्यवस्था का महत्त्व है, जिसमें कोई भी कोशकार अपनी मौलिकता का उपयोग कर सकता है।

कहना न होगा कि लगभग सभी कोशों के पीछे सामाजिक और राजनीतिक उद्देश्य अंतर्निहित होते हैं। अतः कोश-रचना पूरी तरह से एक सामाजिक प्रक्रिया है और हर कोश अपने समसामयिक संदर्भ में ही रचा जाता है यानी कोशकार को ध्यान रखना पड़ता है कि कोश का उपयोग करने वाले लोगों की ज़रूरतें क्या हैं और वह कोश को किस संदर्भ में

[110] कांबले प्रकाश अभिमन्यु, *आधुनिक कोशविज्ञान और नए सैद्धांतिक पहलू*, मीरा सरीन (सं०), *गवेषणा*, वही, पृष्ठ - 12

देखेंगे।[111] ऐसे में यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उक्त दोनों ही दृष्टिकोण कोश-रचना पद्धति के साथ आरंभिक तौर पर जुड़े हुए होते हैं।

आजकल के कोशों में तो वर्णक्रमानुसार शब्द संकलित किए जाते हैं, जो संस्कृत की ज्ञात प्राचीन कोश-परम्परा से कुछ भिन्न परम्परा है। प्राचीन कोश जहाँ पद्यात्मक थे वहीं आधुनिक कोश गद्यात्मक हैं। अधिकांश आधुनिक कोशों में शब्द अकारादिक्रम में मिलते हैं और थिसॉरस में समान अर्थ/भाव/विचार वाले शब्द एक स्थान पर संयोजित होते हैं। संस्कृत में कोशों की परिभाषा के लिए 'कोशः शब्दस्य संग्रहः' की उक्ति है किन्तु अब कालांतर में आजकल के कोशों की वर्ण्य-विषय संबंधी धारणाएँ भी बदलने के साथ-साथ कुछ हद तक परिवर्द्धित हुई हैं; जैसे निघण्टु में मात्र वैदिक शब्दावली दी जाती थी, जिसकी व्याख्या बाद में निरुक्त में हुई किन्तु आज 'निघण्टु' शब्द परवर्ती कोशकारों द्वारा अपने कोशों के लिए भी प्रयुक्त होता है और वैद्यक शब्दकोशों के लिए तो प्रायः 'निघण्टु' नाम 'वैद्यक निघण्टु' का रूप ही ले चुका है। आधुनिक कोशों की परम्परा में निर्मित अद्यतन कोश-कर्म के लिए प्रचलित नामों और उनके प्रयोगों को भी जान लेने की आवश्यकता है, जिससे कोश-रचना की परम्परागत शैलियों के साथ नई धारणाओं का ठीक-ठीक अर्थ लगाया जा सके। अतः आगे उन्हीं की चर्चा है।

नाम-कोश (नामेन्क्लेचर) में नाम वाचक शब्दों अर्थात् जातिवाचक संज्ञाओं की ही प्रधानता रहती है। पर्यायकी (सिनानिमी) में एक दूसरे के पर्याय माने जाने वाले शब्दों में अर्थ व प्रयोग संबंधी पारस्परिक सूक्ष्म अंतर की विवेचना, शब्द का उचित अनुचित प्रयोग तथा आवश्यकतानुसार विपर्याय भी निर्देशित कर दिए जाते हैं। किसी विषय से संबंधित शब्दों का सीमित संख्या में व्याख्या रहित अथवा आंशिक व्याख्या वाला क्षेत्र-विशेष में प्रयुक्त शब्दों का क्रमबद्ध संकलन 'शब्दावली' (वाकेबुलेरी) कहलाता है। किसी कोश, लेखक, विभाषा व कला के आंशिक अंग के कठिन, विदेशी, असाधारण, पारिभाषिक एवं गत-प्रयोग वाले शब्दों की व्याख्या सूची को 'शब्दार्थी' (ग्लॉस्सेरी) कहते हैं। शब्दार्थी को 'व्याख्यात्मक शब्दावली' भी कहा जा सकता है। पुनः उपभाषा के शब्द-कोशों को भी साधारणतः शब्दार्थी नाम दे दिया जाता है। किसी कृति या ग्रन्थकार द्वारा प्रयुक्त शब्दों के

[111] https://www.rachanakar.org/2008/10/blog-post_2038.html#comment-form : Accessed on 22/04/2021

पूर्वस्थान को इंगित करते हुए अकारादिक्रम नियोजन को 'अनुसूची' कहते हैं। प्रतिष्ठित रचनाओं में प्रयुक्त विदेशी शब्दों का पाठकों की भाषा में अकारादिक्रम से अनुवाद भी 'अनुसूची' में ही किया जाता है। यदि प्रत्येक शब्द के उसी शब्द युक्त मुहावरों को प्रसंगों में जोड़ा गया हो तो वह वस्तुतः एक 'कॉनकार्डेन्स' कहलाता है। 'जीवनी-कोश' में दरअसल विभिन्न देशीय व्यक्तियों के व्यवसाय, चरित्र, वास्तविक, काल्पनिक, सामान्य एवं विशिष्ट दृष्टिकोण से अंकित होते हैं। भूगोल शास्त्र का कोश भौगोलिकी (गैज़ेटियर) ही कहलाता है। दर्शन, विज्ञान, गणित, शास्त्र, प्राकृतिक इतिहास, प्राणिशास्त्र, वनस्पति विज्ञान, रसायन शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, धातु विज्ञान, भवन निर्माण कला, रंगसाजी तथा संगीत, भैषज, शल्यचिकित्सा तथा शरीर-विज्ञान, राजनीति, कूटनीति, विधि तथा सामाजिक शास्त्र, कृषि, ग्रामीण अर्थशास्त्र और बागवानी, वाणिज्य, समुद्री विज्ञान, युद्धकला, खेलकूद इत्यादि विषयों के लिए विभिन्न विषय-कोश भी निर्मित हुए हैं। धातु कोश, मुहावराकोश, कहावतों तथा लोकोक्तियों जैसे विषयों के कोश, विभिन्न लेखक और कवियों द्वारा प्रयुक्त शब्दावली और सूक्ति वाक्यों के कोश भी आजकल उपलब्ध होते हैं। पदावली (फ्रेज़ियालोजी) किसी विशिष्ट वैज्ञानिक विषय के पारिभाषिक शब्दों तथा पदों की सूची होती है, जिसमें आवश्यकता अनुसार व्याख्याएँ भी दी जा सकती हैं, उदाहरण के लिए संविधानिक पदावली।[112] वहीं "विश्वकोश (एन्साइक्लोपीडिया) में विश्व के समस्त मुख्य-मुख्य विषय सम्बन्धी विस्तृत विवेचन करने वाले ऐसे सुदीर्घ निबन्ध या लेख होते हैं, जिनसे उस विषय से सम्बद्ध सभी ज्ञातव्य तथ्यों का परिचय उपलब्ध हो सके। 'एन्साइक्लोपीडिया' शब्द का प्रारंभिक अर्थ ज्ञान की प्रत्येक शाखा के समस्त 'वृत्त' से होता था, जिन तक प्राचीनों की उदार शिक्षा की पहुँच थी। विश्वकोश में 'उपकरणों का वर्णन' और शब्द-कोश में 'शब्दों का विश्लेषण' ही प्रमुख ध्येय होता है। इनमें से प्रथम वस्तुओं का और द्वितीय शब्दों का कोश है।"[113] अमूमन आज इन्हीं उपरोक्त पहलुओं के अनुसार भारत में कोश-रचना की अद्यतन परिस्थितियों का अध्ययन किया जाना एक विश्वसनीय और प्राथमिक प्रयास जान पड़ता है; जो भारतीय भाषाओं के बृहत्तर परिप्रेक्ष्य में अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं के कोश-रचना की परम्परा के पहलुओं और आवश्यकताओं के साथ भी जुड़ा हुआ है।

---

[112] अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, भूमिका, पृष्ठ - 19-21

[113] वही, भूमिका, पृष्ठ - 21

अंततः अब यहाँ हम कह सकते हैं कि आज विश्व के कुछ आधुनिकतम कोशों के निर्माण एवं रचना-प्रक्रिया के समतुल्य भारत में भी कोश-रचना की अद्यतन परिस्थितियाँ पहले से और अधिक बेहतर हुई हैं। कुछ व्यक्तिगत प्रयास और संस्थागत सहयोग आपस में मिल कर कोश-रचना के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं; जो उक्त दृष्टिकोण से आने वाले समय में बहुमूल्य माने जा सकते हैं। किन्तु कहना न होगा कि आजकल कोश प्रकाशित करने की अपेक्षा यह सब कार्य कंप्यूटर और इंटरनेट के माध्यम से अमूमन बहुत अधिक तेज़ी से होने लगा है; जिसके लिए कोशकारिता की नवीन परिस्थितियों के साथ अनुकूल कार्य करने की कई गंभीर चुनौतियाँ भी प्रत्यक्ष रूप में कोशकारों और कोश-प्रयोक्ताओं के सामने उजागर हो आई हैं। बहरहाल, यह हिन्दी समेत कई अन्य भारतीय भाषाओं के अस्मिता-निर्माण और स्थानीय सरोकारों के साथ उनकी वैश्विक पहचान निर्मित करने का एक आरंभिक दौर माना जा रहा है; जिसका सीधा-सीधा प्रभाव कुछ-एक प्रमुख भाषाओं-बोलियों के कोशों की आवश्यकता के साथ जुड़ गया है। अतः इस दौर में उक्त भाषायी कोश-कार्यों के लिए ही हिन्दी एवं उसकी बोलियों के शब्द-भंडार के साथ-साथ कई अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति कोशकारिता की पारस्परिक निर्भरता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है।

****

दूसरा अध्याय

हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा

दूसरा अध्याय

हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा

दूसरे अध्याय की पीठिका

आज से बहुत पहले मानव सभ्यता-संस्कृति के उदयकाल से ही माना जाता रहा है कि सही संप्रेषण के लिए सही अभिव्यक्ति आवश्यक है। सही अभिव्यक्ति के लिए सही शब्द चयन आवश्यक है। सही शब्द चयन के लिए शब्दों का संकलन आवश्यक है। अतः शब्दों के संकलन की आवश्यकता को समझ कर ही आधुनिक लिपियों के उदय से बहुत पहले मनुष्यों ने शब्दों का लेखाजोखा रखना शुरू कर दिया था और कह सकते हैं कि बाद के दिनों में शब्दों और भाषा के मानकीकरण की आवश्यकता को देखते हुए इसी कार्य-कारण के लिए कोश बनाए गए जिसके माध्यम से शब्दों का संग्रह किया जाता रहा। बहरहाल, इन संदर्भों में हिन्दी कोश-रचनाओं की क्या परम्परा रही है और वह किस प्रकार से एक प्रतिमान गढ़ती है; यह इस अध्याय विवेचन का मूल है। इस अध्याय में इस अध्ययन का भी प्रयास रहेगा कि किस प्रकार हम हिन्दी में कोश-रचना के विकास-क्रम को देखते हैं।

हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा का आविर्भाव और उसकी विकास प्रक्रिया क्या रही है ? याकि हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा क्या है ? यह अध्याय इन्हीं मूलभूत प्रश्नों की पड़ताल से सम्बद्ध है। मुख्य रूप से यहाँ हम रामचन्द्र वर्मा (1889-1969 ई.) से पहले तथा उनके जीवन-काल तक की हिन्दी कोश परम्परा का अध्ययन करने के साथ, रामचन्द्र वर्मा के बाद के समय में आधुनिक कोशकारिता के क्षेत्र से आए हिन्दी कोशों के कुछ अधुनातन प्रयोगों जैसे थिसॉरस, ऑनलाइन अथवा ई-कोश तथा कम्प्यूटरीकृत कोशकारिता आदि से संबद्ध कोश-कार्यों की निर्माण परम्परा का भी अध्ययन करने का थोड़ा-बहुत प्रयास करेंगे; इस प्रकार कुल मिलाकर कह सकते हैं कि हिन्दी में निर्मित कोश और कोशकार आदि की परम्परा का आकलन करना ही इस अध्याय का एकल उद्देश्य एवं शोध विषय के अध्ययन की मूल आवश्यकता का निर्धारित किया गया कार्य प्रमाण है।

हिन्दी भाषा का आविर्भाव और काल-विभाजन

कोई भी वस्तुतः कोश अपने शब्द-भण्डार से भाषा और साहित्य को समृद्ध करने का कार्य करते हैं। किसी भाषा को सुगठित बनाने के लिए उसमें व्याकरण तथा कोश-निर्माण की अत्यन्त आवश्यकता होती है। अतः एक समृद्ध भाषा के लिए हमें अच्छे वैयाकरण के साथ-साथ अच्छे कोशकार की भी ज़रूरत होती है; इसलिए कोश-रचना का कार्यक्षेत्र अथवा कोशकारिता किसी भी भाषा के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण हो जाती है। हिन्दी भाषा में तो इसकी एक समृद्ध परम्परा मिलती है।

हिन्दी कोश-परम्परा के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालने के क्रम में यहाँ हिन्दी भाषा के काल-विभाजन का आधार जान लेना नितांत आवश्यक है। जिसे ध्यान में रख आगे हम हिन्दी कोशों की परम्परा का अध्ययन करेंगे। बहरहाल, भोलानाथ तिवारी अपनी पुस्तक 'हिन्दी भाषा और नागरी लिपि' में हिन्दी भाषा के विकासक्रम का काल-विभाजन इस प्रकार करते हैं –

1. आदिकाल (1000 ई॰ से 1500 ई॰)
2. मध्यकाल (1500 ई॰ से 1800 ई॰)
3. आधुनिक काल (1800 ई॰ से अब तक)

अतः ऐसे में अब यहाँ यह कहना न होगा कि "हिन्दी जो पाँच उपभाषाओं (पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, पहाड़ी, बिहारी) का सामूहिक नाम है शौरसेनी, अर्धमागधी तथा मागधी अपभ्रंश से 1000 ई॰ के आस-पास उद्भूत हुई।"[114] इस तथ्य के पीछे का मुख्य तर्क बतलाते हुए भोलानाथ तिवारी लिखते हैं कि "यहाँ एक बात संकेत करने की है कि यों तो हिन्दी के कुछ रूप पालि में मिलने लगते हैं, प्राकृत में उनकी संख्या और भी बढ़ जाती है तथा अपभ्रंश में उनमें और भी वृद्धि हो गई है, किन्तु सब मिलाकर इनका प्रतिशत इतना कम है कि 1000 ई॰ के पूर्व हिन्दी का उद्भव नहीं माना जा सकता। साहित्य के इतिहासों में कुछ लोगों ने हिन्दी का प्रारम्भ और भी बाद में माना है; किन्तु वास्तविकता यह है कि

[114] भोलानाथ तिवारी, *हिन्दी भाषा और नागरी लिपि*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सोलहवाँ संस्करण - 2019 ई॰, पृष्ठ - 41

साहित्य में प्रयोग के आधार पर वे निष्कर्ष आधारित हैं और साहित्य में भाषा का प्रयोग जन्म के साथ ही नहीं हो जाता। जब किसी भाषा में जनमने के बाद कुछ प्रौढ़ता आ जाती है, उसका रूप कुछ निखर आता है तथा बहुस्वीकृत हो जाता है तभी साहित्यकार उसे अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है। इस तरह यदि लगभग 1150 ई० के आस-पास से भी हिन्दी साहित्य मिले तो भी उस भाषा का आरम्भ 1000 ई० के आस-पास ही मानना पड़ेगा।"[115]

हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा

वस्तुतः हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा को हिन्दी भाषा के काल-विभाजन के आधार पर ही परखने का किंचित् प्रयास करेंगे; जिसमें मुख्य रूप से हिन्दी कोश-रचना की परम्पराओं को आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल के अन्तर्गत विभाजित करने का प्रयास परम्परायुक्त ढंग से किया गया है। हिन्दी कोशकारिता का यह विभाजन मुख्य रूप से तीनों काल खण्डों में हिन्दी कोशों की भाषागत प्रवृत्तियों और कोश-रचना पद्धति के कारकों के अन्तर्गत परिभाषित होने वाले उनमें निहित शब्द संरचनाओं की कालगत एकरूपताओं के कारण किया गया है।

आदिकाल (1000 ई० से 1500 ई०)

इस काल-खण्ड की हस्तलिखित अथवा मुद्रित सामग्री का अभाव मिलता है। उल्लेख योग्य बात है कि कोश आदि के लिए इस काल में मौखिक विद्या को ही अधिक प्रोत्साहन मिला। अतः 13वीं शताब्दी से पूर्व हिन्दी में कोई कोश-ग्रन्थ रहा हो, उसका कोई स्रोत हमें नहीं मिलता। जबकि इससे पूर्ववर्ती कोश तो हिन्दी की अपेक्षा संस्कृत कोश-साहित्य से ही अधिक प्रभावित हैं; जो संस्कृत कोशों की श्रेणी में ही रखे जा सकते हैं। यह बात अलग है कि इन संस्कृत कोशों की सुदृढ़ परम्परा के आधार पर ही आगे के बहुत से हिन्दी कोशों का विकास हुआ है। प्रसंगवश यहाँ यह कहना होगा कि हिन्दी के जो आरंभिक कोश पद्यबद्ध मिलते हैं, उन कोशों पर संस्कृत के 'अमरकोश' का प्रभाव ही कुछ अधिक दिखाई पड़ता

[115] वही, पृष्ठ - 41-42

है। बहरहाल, कुछ आगे चलकर इस काल खण्ड में 'ख़ालिक़बारी' और 'वर्णरत्नाकर' नामक दो कोश अवश्य मिलते हैं; जिनका विवेचन आगे दिया जा रहा है –

ख़ालिक़बारी

इसकी सभी प्रतियाँ नस्तालीक़ लिपि में मिलती हैं।[116] अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर से ख़ालिक़बारी की एक हस्तलिखित प्रति देवनागरी लिपि में भी लिखी मिलती है, जिसके अंत में अमीर ख़ुसरो का नाम न होकर पण्डित अभयसोमि का नाम है। परंतु यह प्रति वास्तव में प्रचलित ख़ालिक़बारी की ही प्रतिलिपि मात्र है, केवल शब्दों के राजस्थानी रूप दे दिए गए हैं।[117] जनश्रुति के अनुसार ख़ालिक़बारी का रचयिता वस्तुतः अमीर ख़ुसरो (1253-1325 ई०) को ही माना जाता है, जिस आधार पर ज्ञात होता है कि इस कोश की रचना 13वीं शताब्दी में हुई थी। बहरहाल, "ख़ालिक़बारी का मूल लेखक जो भी हो, उसके प्रचलित रूपांतर के आधार पर कहा जा सकता है कि यह हिन्दी का प्रथम मौलिक कोश है। संस्कृत कोशों की पर्याय व अनेकार्थी पद्धति का पूर्ण त्याग कर, कोशकार ने एक नितान्त नवीन शैली का आविष्कार किया। इसमें हिन्दी, अरबी तथा फ़ारसी के तदर्थी शब्दों को एक साथ छंदोबद्ध किया गया है। किन्तु विभिन्न शब्दों की भाषा का कोई क्रम नहीं है"[118] जिसके साथ इसकी एक विशेषता यह बतलाई जाती है कि इसमें शब्द ही नहीं वाक्य या वाक्य खंडों के भी अरबी-फ़ारसी रूप मिलते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि ख़ालिक़बारी ने हिन्दी कोशों में एक नई शैली व दिशा प्रस्तुत की है, जिसके अनुकरण पर अनेक परवर्ती द्विभाषीय कोशों की रचना हुई। आज कल उपलब्ध ख़ालिक़बारी में शब्दों की संख्या इस प्रकार से मिलती है, जिसमें अरबी के 237, तुर्की के 2, फ़ारसी के 482 और हिन्दी के 575 शब्द हैं। इन शब्दों में केवल नाम संज्ञा ही नहीं बल्कि क्रियाएँ और अव्यय भी हैं। परमानन्द पांचाल 'ख़ालिक़बारी' के संदर्भ में एक दिलचस्प बात यह बतलाते हैं कि यह कोश इतना लोकप्रिय था कि इसकी लाखों प्रतियाँ लिखवाकर ऊँटों और गाड़ियों पर

---

[116] हिन्दी में 'ख़ालिक़बारी' का सर्वप्रथम सम्पादन श्रीराम शर्मा ने किया था। जो 1964 ई० में नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी से प्रकाशित हुआ था।

[117] अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य : एक विवेचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन*, वही, अध्याय - एक, पृष्ठ - 3

[118] वही, अध्याय - एक, पृष्ठ - 3

लदवाकर देशभर में बँटवाई गई थी; जिस कारण से इसके संदर्भ में एक निम्नांकित किंवदंती भी चल पड़ी थी –

एक लाख ऊँट, सवा लाख गारी,
तेहि पर लादी ख़ालिक़ बारी।[119]

बहरहाल, आदिकालीन हिन्दी कोश-रचना परम्परा की पहली कृति के रूप में ख़ालिक़बारी की लोकप्रियता का कारण उसका पद्यबद्ध स्वरूप, खड़ीबोली के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के शब्द-संग्रह प्रयोग और हिन्दी की वाक्य संरचना की परख की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

वर्णरत्नाकर

ज्योतिरीश्वर ठाकुर (सन् 1290-1350 ईस्वी) रचित वर्णरत्नाकर[120] मिथिला क्षेत्र के प्राचीन मैथिली-हिन्दी शब्दावली का एक गद्यात्मक विश्वकोशीय संग्रह माना जाता है, जिसमें तत्कालीन विभिन्न विषयों और स्थितियों का वर्णन मिलता है। ज्ञात हो कि ज्योतिरीश्वर ठाकुर मिथिला में 13वीं-14वीं शताब्दी के आस-पास मैथिल-संस्कृत घराने से होने के साथ-साथ मिथिला के कर्नत वंश (1097-1324 ई०) के राजा हरिसिंह देव के दरबारी कवि थे। वस्तुतः इनके द्वारा रचित वर्णरत्नाकर का रचना समय संभवतः सन् 1320 ई० है। यह आठ कल्लोलों के अंतर्गत वर्णित क्रमशः आठ विषयों नगर, नायिका, आस्थान, ऋतु, प्रयाणक, भट्टादि, श्मशान तथा अष्टम कल्लोल शीर्षक रहित रूप में विभक्त है; जिसमें लगभग कुल 6000 से अधिक शब्द हैं, जो मूलतः पुरानी मैथिली-हिन्दी भाषा के शब्दों का संग्रह माना जाता है। अतः उक्त कारणों से कहें तो 'वर्णरत्नाकर' में किए गए शब्द-संकलन और विषयानुसार उनके उल्लेख से वर्तमान समय में भी उसके अध्ययन की उपादेयता बढ़ जाती है। बहरहाल, उक्त कारणों से आदिकालीन हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में आज भी कोशकारिता और शब्द-संकलन के अध्ययन की ज़रूरत महसूस की जा सकती है।

---

[119] परमानन्द पांचाल, *अमीर ख़ुसरो : व्यक्तित्व और कृतित्व*, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, संस्करण - 2010 ई०, पृष्ठ - 53

[120] वर्णरत्नाकर, रचयिता : ज्योतिरीश्वराचार्य, संपादक : सुनीति कुमार चैटर्जी, प्रकाशक : रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, सन् 1940 ई०, आकार : आठ कल्लोल (देखें - अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, परिशिष्ट - 1, पृष्ठ - 362)

मध्यकाल (1500 ई॰ से 1800 ई॰)

हिन्दी कोशों के आदिकाल के पश्चात आगे मध्यकालीन हिन्दी कोश परम्परा[121] पर लौकिक संस्कृत के कोश-साहित्य एवं कोश-रचना विधि का प्रचुर प्रभाव पड़ा है। इस अवधि में छोटे-बड़े कई कोश-ग्रन्थ बने, जिनमें कुछ तो अब उपलब्ध भी हैं। अतः यहाँ उन्हीं में से कुछ एक महत्त्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध कोशों का अध्ययन करते हुए विवेचन प्रस्तुत कर देना उचित होगा, जिससे मध्यकालीन हिन्दी कोश-रचना पद्धति को समझने में अवश्य ही सुगमता होगी।

मध्यकालीन कोशों का विवेचन करते हुए अचलानन्द जखमोला ने अध्ययन की दृष्टि से इनको तीन सुस्पष्ट विभागों में वर्गीकृत किया है : प्रथम वर्ग में वे कोश तथा कोशकार शामिल हैं जिनका रचनाकाल कुछ हद तक निर्धारित है। द्वितीय वर्ग ऐसे कोशों को रखा गया है जिनके रचनाकारों का नाम ज्ञात है किन्तु कोश का रचना समय निर्धारित नहीं हुआ है। तृतीय वर्ग में वे कोश रखे गए हैं जिनके रचनाकार तथा रचना के समय का उल्लेख नहीं मिलता। इन तीनों वर्गों में क्रमशः प्रथम में 66, द्वितीय में 9 तथा तृतीय में 7 कोश-ग्रन्थों का विवरण मिलता है। अचलानन्द जखमोला के अनुसार इन द्वितीय तथा तृतीय वर्ग के कोशों की हस्तलिखित प्रति एवं भाषा को देखते हुए उन्हें मध्यकाल के अन्तर्गत ही रख लिया गया है।[122] अब यहाँ से आगे हम मुख्य रूप से इन्हीं तीन वर्गों के कुछ महत्त्वपूर्ण तथा प्रसिद्ध कोशों का क्रमशः काल-क्रमानुसार अध्ययन करेंगे –

---

[121] मध्यकालीन हिन्दी कोशों के परिचय संबंधी पूर्व में दो लेख मिलते हैं, जिनका उल्लेख अचलानन्द जखमोला अपने शोध प्रबंध (*हिन्दी कोश साहित्य : एक विवेचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन*) में करते भी हैं, उनमें से एक लेख है जवाहरहाल चतुर्वेदी का 'ब्रजभाषा के कोष ग्रन्थ' (जवाहरलाल चतुर्वेदी : ब्रजभाषा के कोष ग्रन्थ, पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ) जिसमें खोज विवरणों को आधार मान कर बिना कोई विस्तृत विवेचन के कुछ ब्रजभाषा कोशों का नामोल्लेख भर कर दिया गया है और दूसरा लेख है हरदेव बाहरी का 'कंट्रीब्यूशन टु हिन्दी लेक्सिकॉग्राफ़ी' (डॉ॰ हरदेव बाहरी : कंट्रीब्यूशन टु हिन्दी लेक्सिकॉग्राफ़ी, प्रोसीडिंग्ज़ आव् दि ऑल इंडिया ओरियंटल कॉन्फ्रेंस, बनारस : 1943-44 ई॰) जो मुख्यतः आधुनिक कोशों से सम्बद्ध है तथा जिसमें ऐतिहासिक क्रम बाँधने के लिए ही विद्वान लेखक ने कुछ मध्यकालीन कोशों का ज़िक्र मात्र कर विषय को आगे बढ़ा दिया है। बहरहाल, कहना न होगा कि प्रथम बार अचलानन्द जखमोला ने ही अपने शोध प्रबंध में प्रत्येक सम्भव स्रोत का समन्वय करते हुए अपने विश्लेषण और विवेचन के माध्यम से लगभग 82 से अधिक मध्यकालीन हिन्दी कोशों तथा कोशकारों के विवरण द्वारा मध्यकालीन कोश साहित्य की आधार-शिला को सुदृढ़ बनाया है।

[122] अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, अध्याय - एक, पृष्ठ - 1

डिंगलनाममाला

हिन्दी के समानार्थी शब्द कोशों में डिंगलनाममाला सबसे प्राचीन उपलब्ध कोश है। यह हरिराज याकि हरराज कृत माना जाता है तथा इसका रचनाकाल लगभग सन् 1561 ई॰ है। यह कोश आकार में बहुत छोटा है। इस छोटे से कोश में 27 छंदों में कुछ प्रचलित शब्दों के पर्याय छन्दबद्ध दिए गए हैं। इसकी पुष्पिका से प्रतीत होता है कि यह किसी 'पिंगल शिरोमणि' नामक पूर्ण ग्रन्थ का 'चित्रक कथन' नामक सप्तम अध्याय मात्र है – इति श्री कुँवर सिरोमणि हरिराज विरचितायां पिंगल सिरोमणे उडिगंल नाममाला चित्रक कथन नाम सप्तमोध्याय। पुनः इसका प्रकाशन डिंगल कोश के अन्तर्गत जोधपुर, राजस्थानी शोध संस्थान से सन् 1957 ई॰ में सम्पन्न हुआ है।[123] यह कोश प्राचीन होने के कारण तत्कालीन कई शब्दों की अच्छी जानकारी देता है। इसलिए राजस्थानी भाषा के विकास की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है।

अनेकार्थ और नाममाला

अष्टछाप के प्रसिद्ध वैष्णव कवि नन्ददास ने दो कोश-ग्रन्थों की रचना की है जो अनेकार्थ[124] और नाममाला[125] नाम से हैं। दोनों ही दोहा छंद में रचित हैं। इन दोनों कोशों का रचना काल सन् 1568 ई॰ माना जाता है। किन्तु इन दोनों कोशों को इसके लिपिकारों ने इतना घुला मिला दिया है कि ये दोनों नाम कभी-कभी एक-दूसरे के लिए भी प्रयुक्त किए जाते रहे हैं। वैसे ये दोनों ही समानार्थी कोश हैं तो यह सम्भव है कि नन्ददास ने इन दोनों कोशों की रचना भी एक साथ ही की हो।

---

[123] डिंगलनाममाला, रचयिता : हरिराज, रचनाकाल सन् 1561 ई॰, प्रकाशक : राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर - 1957 ई॰, आकार : 27 छंद (देखें - अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, परिशिष्ट - 1, पृष्ठ - 362)

[124] अनेकार्थ, रचयिता : नन्ददास, रचनाकाल सन् 1568 ई॰, आकार : 119 छंद (देखें - अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, परिशिष्ट - 1, पृष्ठ - 362)

[125] नाममाला, रचयिता : नन्ददास, रचनाकाल सन् 1568 ई॰, प्रकाशक : प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग - 1942 ई॰, संपादक : उमाशंकर शुक्ल, आकार : 265 छंद (देखें - अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, परिशिष्ट - 1, पृष्ठ - 362)

अनभै प्रबोध

इस कोश-ग्रन्थ के रचयिता स्वामी गरीबदास हैं एवं कोश की रचना सन् 1615 ई० में मानी जाती है। अनभै प्रबोध[126] संत साहित्य की साधनापरक शब्दावली का छोटा-सा पद्य-बद्ध समानार्थी कोश है; इसमें संतसाहित्य में विपर्यय अथवा उलटवांसियों में जो जो प्रधान शब्द प्रयुक्त होते हैं उनके प्रतीकों, उपमानों तथा पर्यायों का संग्रह किया गया है। देह, काया, मन, चित्त, माया, विकार, इन्द्रिय, संशय, प्राण, आत्मा, सुरति, निरति, विरह, ब्रह्म, गुरु इत्यादि शब्द जो प्रत्येक संतवाणी में अनवरत पाए जाते हैं, किन-किन प्रतीकों द्वारा उल्लिखित हैं, उसी का सहज ज्ञान 'अनभै प्रबोध' कराता है। संत साहित्य को समझने में अधिकांश कठिनाई इन शब्दों के प्रतीकों/पर्यायों में ही आती है, अतः संतवाणी के शब्दों का आंशिक निराकरण प्रस्तुत करने से इस कोश-ग्रन्थ की महत्ता अवश्य ही बढ़ जाती है।[127]

तुहफ़तुलहिन्द

'तुहफ़त्-उल्-हिन्द' का शाब्दिक अर्थ 'भारत का एक उपहार' है। सन् 1675 ई० का यह कोश-ग्रन्थ मिर्ज़ा ख़ाँ द्वारा रचित माना जाता है, जिनका पूरा नाम मिर्ज़ा जान इब्न फ़क्रुद्दीन मोहम्मद बतलाया जाता है; इसमें भारतीय साहित्य के सामान्य व विशिष्ट मात्र से संबद्ध विभिन्न विषयों का विवेचन किया गया है। जो नस्तालीक़ लिपि में लिखित तथा विशेष रूप से शब्दार्थ-शास्त्र, ध्वनि-शास्त्र व ब्रजभाषा के प्रारम्भिक व्याकरण की दृष्टि से प्रस्तुत यह ग्रन्थ हिन्दी साहित्य के लिए एक अमूल्य और अपरिहार्य समृद्ध निधि है। इस "समग्र ग्रन्थ में भूमिका तथा परिशिष्ट के अतिरिक्त सात अध्याय हैं। भूमिका में ब्रजभाषा की ध्वनियाँ और उनकी फ़ारसी में लिप्यंतरण एवं उच्चारण व्यवस्था तथा व्याकरण की विवेचना की गई है। इसके अतिरिक्त प्रथम अध्याय में छन्दशास्त्र, द्वितीय में तुक, तृतीय में रस व अलंकार, चतुर्थ में शृंगार रस व नायक-नायिका भेद, पाँचवें में संगीत शास्त्र, छठे में कामशास्त्र तथा सातवें में सामुद्रिकशास्त्र का निरूपण किया गया है। अंतिम अध्याय का

[126] अनभै प्रबोध, रचयिता : गरीबदास, रचनाकाल सन् 1615 ई०, प्रकाशक : श्री स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर - 1947 ई०, संपादक : स्वामी मंगलदास, आकार : 28 पृष्ठ 140 पद्य (देखें - अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, परिशिष्ट - 1, पृष्ठ - 362)

[127] अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, अध्याय - एक, पृष्ठ - 13

नाम 'ख़ातिमा' या परिशिष्ट है। इसमें 'दर् इल्मे लुग़त' या कोशशास्त्र का विवेचन किया गया है जिसको मिर्ज़ा ख़ाँ ने स्थान-स्थान पर 'लुग़तये हिन्दी' या हिन्दी कोश के नाम से भी अभिहित किया है।"[128] बहरहाल, कई विद्वानों द्वारा यह भी कहा गया है कि शब्द-संकलन, उच्चारण-व्यवस्था, नियोजन-पद्धति, अर्थ-प्रक्रिया एवं एक कोश में निहित अन्य सभी आवश्यक तत्त्वों की दृष्टि से, यदि प्रस्तुत कोश-ग्रन्थ का निरीक्षण करें तो इसकी तुलना का कोई दूसरा मध्यकालीन कोश, वास्तव में ठीक-ठीक उपलब्ध नहीं होता। साथ ही, एक अन्य तथ्य यह भी है कि लगभग साढ़े तीन हज़ार मूल हिन्दी शब्दों के अर्थ इस कोश में मिलते हैं, जो इसे तत्कालीन हिन्दी कोशों की श्रेणी में और अधिक महत्त्वपूर्ण बना देते हैं।

प्रकाशनाममाला

इस विशाल कोश के रचयिता मियाँ नूर हैं। वे लिखते हैं "सत्रह सै चवन बरस, बिजै दस्मि इषु मास। नूर नाम माला करी, भाषा नाम प्रकास॥"[129] अर्थात् 1754 विक्रम संवत् (यानी कि सन् 1697 ई०) में आश्विन मास की विजयादशमी को प्रकाशनाममाला कोशग्रन्थ पूर्ण हुआ। यह कोश संस्कृत के अमरकोश (चौथी-पाँचवीं शताब्दी) पर आधारित है। परंतु प्रकाशनाममाला मुख्य रूप से अमरकोश का अनुकरण करते हुए भी अमरकोश का भाषानुवाद नहीं कहा जा सकता। कोशकार ने एकांगी दृष्टिकोण न रखकर इस कोश में कई अन्य स्रोतों का भी पूर्ण रूप से उपयोग किया है। अतः लगभग इसके एक तिहाई शब्द अमरकोश से नहीं मिलते। यह कोश पाँच प्रकाशों में विभक्त है; जिसमें प्रथम तीन प्रकाशों में शब्दों का संकलन पर्याय शैली में हुआ है। चतुर्थ प्रकाश में अनेकार्थ प्रकरण है तथा पंचम प्रकाश में यह कोश एकाक्षरी आधार पर निर्मित हुआ है। कहना न होगा कि अपने इन्हीं उल्लेखनीय तथ्यों के कारण यह मध्यकालीन कोश हिन्दी कोशों की परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

हमीर नाममाला

इस कोश के रचयिता 'हमीरदान रतनू' हैं। ये रतनू शाखा के चारण थे। कच्छभुज के राजा महाराव श्री देशल जी प्रथम के महाराजकुमार लखपत इनके आश्रयदाता रहे हैं। हमीर

[128] वही, अध्याय - एक, पृष्ठ - 23-24

[129] वही, अध्याय - एक, पृष्ठ - 28

नाममाला[130] डिंगल कोशों में सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रचलित है। इसके निर्माणकाल के सम्बन्ध में हमीर नाममाला का एक छंद कोश के अन्त में इस प्रकार दिया गया है –

संमत छहोतरे सतर मैं, मती ऊपनी हमीर मन।
कीधी पूरी नाम-मालिका, दीपमालिका तेण दिन॥

(हमीर नाममाला, छंद - 311)

अर्थात् संवत् 1774 (सन् 1717 ई०) की दीपावली को यह ग्रन्थ समाप्त हुआ। जो डिंगल के प्रसिद्ध गीत शैली 'बोलियो' में लिखी गई है। इसके रचयिता द्वारा ग्रन्थ के प्रत्येक छन्द में पर्याय गिनाने के बाद उत्तरार्द्ध में हरिमहिमा संबंधी कुछ सुन्दर उक्तियाँ कहकर आराध्य व्यक्तित्व की छाप छोड़ने का प्रयत्न किया गया है, इसीलिए यह ग्रन्थ 'हरिजसनाममाला' के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसकी रचना में कई संस्कृत कोशों की यथोचित सहायता ली गई है; जैसे –

जोइ अनेकारथ धनंजय, 'मांणमंजरी' 'हेमी' 'अमर'।
नाम तिकां माहै निसरिया, उवै भेला भेलाया आखर॥

(हमीर नाममाला, छंद - 309)

इसमें कुल 311 छंद मिलते हैं। जिनमें प्राचीन तथा तत्कालीन डिंगल साहित्य में प्रचलित डिंगल भाषा के बहुत से शब्द अपने विशुद्ध रूप में सुरक्षित हैं।[131]

एकाक्षरी नाममाला

यह कोश वीरभाण रचित बतलाया जाता है। जो रतनू शाखा के ही चारण थे। इस कोश की रचना सन् 1730 ई० के लगभग मानी जाती है। एकाक्षरी कोश में देवनागरी वर्णमाला के कुछ अक्षरों के अनेकार्थ दिए गए हैं। आकार में अत्यन्त लघु इस कोश में केवल 34 पद्य हैं। संस्कृत में महाक्षपणक रचित एकाक्षरी कोश का प्रभाव इसमें निरंतर दिखाई पड़ता

[130] हमीर नाममाला, रचयिता : हमीरदान रतनू, रचनाकाल सन् 1717 ई०, प्रकाशक : राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर - 1957 ई०, आकार : 52 पृष्ठ 311 छंद (देखें - *अचलानन्द जखमोला, हिन्दी कोश साहित्य*, वही, परिशिष्ट - 1, पृष्ठ - 363)

[131] अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, अध्याय - एक, पृष्ठ - 31-32

रहता है। बहारहाल, यह कोश अत्यन्त अव्यवस्थित व क्रमहीन मालूम पड़ता है; जिसका कारण यह है कि वर्ण्य अक्षरों के न तो शीर्षक दिए गए हैं और न कोई स्पष्ट विभाजन किया गया है। इसमें अक्षरों का क्रम भी अनियमित है, जिससे स्थान-स्थान पर अस्पष्टता रह गई है। कुल मिला कर कह सकते हैं कि कोश अधिक उपादेय नहीं ठहरता।[132]

नामप्रकाश

यह कोश-ग्रन्थ संस्कृत के ज्ञाता हिन्दी कवि भिखारीदास द्वारा सन् 1738 ईस्वी में रचित बतलाया जाता है।[133] ऐसे इस कोशग्रन्थ का नाम 'नामप्रकाश' के अतिरिक्त कहीं-कहीं 'अमरकोश भाषा' तथा 'अमरतिलक' भी मिल जाता है। बहरहाल, भिखारीदासकृत इस कोश की निर्माण-तिथि कोश के प्रारम्भ में इस प्रकार दी गई है –

सत्रह से पचानवै, अगहन को सित पक्ष।
तेरसि मंगल को भयो, नाम प्रकाश प्रतक्ष॥

(नामप्रकाश, छंद - 9)

अर्थात् संवत् 1795 (1738 ई०) के अगहन मास शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को 'नामप्रकाश' प्रकाश में आया। भिखारीदास के अनुसार यह कोश मुख्य रूप से अमरकोश पर आधारित है – देखि के अमरकोष तिलक अनेकनि सों बूझि के बुधन जो सकत शेश सरिकै (नामप्रकाश, छंद - 1)। इसमें कुल तीन काण्ड हैं जिसके प्रथम काण्ड में दस, द्वितीय में भी दस तथा तृतीय काण्ड में केवल तीन वर्ग हैं। अमरकोश के तृतीय काण्ड के अन्तिम दो वर्ग – अव्यय व लिंगादिसंग्रह वर्ग नामप्रकाश में नहीं आए हैं। वहीं इसके अन्तिम वर्ग 'नानार्थ वर्ग' के अतिरिक्त समस्त कोश समानार्थी है। किन्तु इस कोश को पूर्ण रूप से अमरकोश का भाषा-अनुवाद नहीं कहा जा सकता क्योंकि शब्दों की क्या महत्ता है इससे कोशकार को भली-भाँति अवगत कहा जा सकता है। कोश मुख्य रूप से 'भाखा' के अध्येताओं के निमित्त रचा गया था, अतः संस्कृत के नामों के अतिरिक्त 'भाखा' के ग्रन्थों से भी

---

[132] वही, अध्याय - एक, पृष्ठ - 33

[133] नामप्रकाश, रचयिता : भिखारीदास, रचनाकाल सन् 1738 ई०, प्रकाशक : गुलशन अहमद यंत्रालय (प्रतापगढ़), सन् 1899 ई०, (देखें - अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, परिशिष्ट - 1, पृष्ठ - 363)

भिखारीदास ने कई पर्याप्त शब्द इस कोश में संकलित किए हैं।[134] जो मध्यकालीन ग्रन्थों की श्रेणी में इसकी भाषायी उपादेयता को और अधिक बढ़ा देता है।

सुबोधचन्द्रिका

इसके रचयिता का नाम फ़कीरचन्द मिलता है। फ़कीरचन्द ने कोश-ग्रन्थ का निर्माणकाल इस प्रकार बतला दिया है –

संवत ठार से बरष, चेत तीज सित पक्ष।
भई सुबोध चन्द्रिका सरस, देत ग्यान परतक्ष॥
(सुबोधचन्द्रिका, छंद - 5)

अर्थात् संवत् 1800 विक्रमी (सन् 1743 ई॰) के चैत मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया को प्रत्यक्ष ज्ञान देने वाली 'सुबोधचन्द्रिका' प्रकाश में आई। बहरहाल, यह विशाल एकाक्षर नाममाला 1021 छंदों में पूर्ण हुआ है। सर्वप्रथम इसमें स्वरों के अनेक अर्थ छंदबद्ध किए गए हैं। यह प्रथम उद्योत में समाप्त हुआ है, जिसके बाद द्वितीय उद्योत में 'वर्ण' (व्यंजन) एकाक्षरों के अर्थ दिए गए हैं। तृतीय उद्योत में अव्यय एकाक्षरों का निरूपण किया गया है जिनका ग्रन्थ में कोई निश्चित क्रम नहीं है। कोशकार के अनुसार सुबोधचन्द्रिका आचार्य सौभरि कृत संस्कृत कोश 'एकाक्षर नाममाला' के आधार पर निर्मित हुई है। किन्तु अन्य कवियों के मुख से सुने हुए शब्दों तथा अन्य शब्द कोशों का भी कोशकार ने इसमें पूर्ण उपयोग किया है और उन समस्त साधनों के आधार पर अपने कोश सुबोधचन्द्रिका को द्वादश वर्णों के अर्थ देते हुए सुसज्जित किया है –

सोभरि नाम अचार्य कृतं, हुती नाम की माल।
ताही के परमान कुछ, बरनौ जुगति रसाल॥
अधिक और कवि मुखन तें, सुनिकै कियो प्रमान।
सो प्रमान ह्याँ लायकैं, कहैं महा बुधवांन॥
सब्द सिन्धु सब मथ्य कै, रंच्यौ सु भाषा आनि।

[134] अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, अध्याय - एक, पृष्ठ - 36-37

अर्थ अनत इक वर्न के, द्वादश अनुक्रम बान ॥

(सुबोधचन्द्रिका, छंद - 2-4)[135]

विश्वनाममाला

यह कोश बालकराम विरचित है, जिन्होंने कोश में कई स्थानों पर अपना नाम अंकित किया है। इनका रचनाकाल सन् 1743 से 1763 ई० तक माना जाता है; जिसके आधार पर अचलानन्द जखमोला कोश का रचनाकाल अनुमानतः सन् 1750 ई० मानते हैं। प्रस्तुत कोश कुल मिलाकर 248 छंदों में पूर्ण हुआ है, जिनमें 250 नाम शब्दों के पर्याय गिनाए गए हैं। प्रायः एक नाम शब्द के पर्याय एक ही छंद में आए हैं; वर्णित छंदों में दोहे की प्रधानता है। नामों को किसी काण्ड या वर्ग आदि में विभाजित न कर एक क्रम में आरंभ से अन्त तक नियोजित किया गया है, जिस कारण से इसमें शब्द विशेष की स्थिति ज्ञात करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इसके शब्द भी मूलतः परम्परा श्रुत, कोशों में प्रचलित एवं रूढ़ हैं। वहीं दिन प्रति दिन की व्यावहारिक शब्दावली के लिए इस कोश में कहीं कोई स्थान नहीं है। बहरहाल, संक्षेप में यह कोश एक प्रचलित परम्परा में निर्मित ग्रन्थ है, जिसका उद्देश्य एक चलती हुई धारा में अपना योगदान करने जैसा था। ऐसे में किसी नवीनता या विशिष्टता के लिए इसमें कोई स्थान कहाँ हो सकता है।[136]

कर्णाभरण

कर्णाभरण कोश-ग्रन्थ के रचयिता हरिचरणदास (सन् 1709-1777 ई०) हैं। इस कोश से ही यह ज्ञात होता है कि कोशकार मूलतः बिहार के अन्तर्गत परगन्ना गौआ गाँव चैनपुर के निवासी थे। किन्तु कालांतर में ये मारवाड़ आकर कृष्णगढ़ बस गए। 'कर्णाभरण' कोश ग्रन्थ का रचनाकाल विवादास्पद है, इसके अंतिम 54वें पत्र के पृष्ठभाग पर एक दोहा इस प्रकार मिलता है –

संवत बाइस सौ बित्तै तापर है अड़तीस।
कीन्हों कर्णाभरण हरि, हो राजी जगदीश ॥

[135] वही, अध्याय - एक, पृष्ठ - 38-39

[136] वही, अध्याय - एक, पृष्ठ - 39-40

अचलानन्द जखमोला बतलाते हैं कि इस दोहे में 'बाइस सौ' शब्द भूल से लिखा गया प्रतीत होता है क्योंकि कोशकार के जीवन काल तथा अन्य रचनाओं की तिथि को देखते हुए यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि मूल में 'बाइस सौ' के स्थान पर 'ठारह सौ' होना चाहिए।[137] वैसे इस निष्कर्ष के फलस्वरूप कर्णाभरण का रचनाकाल विक्रम संवत् 1838 (सन् 1781 ई०) ठहरता है। बहरहाल, इस कोशग्रन्थ की विशेषता यह है कि मूल कोश के अतिरिक्त इसमें टीका भी दी गई है। कोश में पर्याय गिनाने वाले मूल श्लोकों की संख्या 1200 तथा टीका के श्लोकों की संख्या 700 है। कर्णाभरण की टीका में संकलित शब्दों का विश्लेषण के उपरान्त उन्हें अकारादि क्रम से संयोजित किया गया है। वहीं इस टीका में स्थान-स्थान पर गद्य का भी प्रयोग हुआ है। अतः गद्य के माध्यम से भी पर्यायों को दर्शाने वाला यह एक अनुपम ग्रन्थ है जिसमें तत्कालीन गद्य का स्वरूप भी कुछ हद तक लक्षित होता है। इन सब विशेषताओं को देखते हुए कर्णाभरण की उपादेयता निस्संदेह स्पष्ट हो जाती है।[138] वहीं इस तरह के मध्यकालीन कोश में तत्कालीन भाषा तत्वों के स्वरूप का अध्ययन भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

पारसी पारसात नाममाला

इस कोश-ग्रन्थ को कुँअर कुशल सूरी कृत माना जाता है। यह ब्रजभाखा तथा फ़ारसी शब्दों का एक द्विभाषी कोश है, जिसमें ब्रजभाषा के शब्दों का फ़ारसी में या फ़ारसी शब्दों का ब्रजभाषा में, उसी अर्थ के द्योतक शब्दों के साथ छंदबद्ध किया गया है। इसकी लिपि देवनागरी है और इसमें फ़ारसी शब्दों को भी देवनागरी लिपि में अपनी प्रवृत्ति के अनुसार लिखा गया है। कोश-ग्रन्थ का रचनाकाल अन्त में इस प्रकार दिया गया है : इति श्री पारसातनाममाला भट्टारक कुँअरकुशल सूरी कृत सम्पूर्णा ॥ संवत 1857 ना आसू वदि 10 सोमे सम्पूर्णा कृता ॥ अर्थात् आशय यह है कि इस कोश-ग्रन्थ की रचना सन् 1800 ई० में हुई। कोश में कुल 353 छंद हैं। वहीं समस्त कोश दस 'बाब' (अध्याय) में विभाजित है;

---

[137] नाथू राम कालभोर ने अपने शोध ग्रन्थ *'हिन्दी कोश साहित्य : समीक्षात्मक अध्ययन'* (1981 ई०) के पृष्ठ 76 पर यह दोहा संदर्भ के साथ कुछ इस प्रकार से उद्धृत किया है : संवत ठारह सौ बित्तै तापर है अड़तीस। / कीन्हों कर्णाभरण हरि, हो राजी जगदीस ॥ (*राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज*, लेखक उदयसिंह भटनागर, उदयपुर साहित्य-संस्थान, सन् 1952 ई०, तृतीय भाग)

[138] नाथू राम कालभोर, *हिन्दी कोश साहित्य : समीक्षात्मक अध्ययन*, वही, अध्याय २, पृष्ठ - 77

प्रत्येक 'बाब' में उस वर्ग से सम्बद्ध शब्दावली के ब्रजभाषा और उनके फ़ारसी रूप के छंदों में नियोजित हैं। इस कोश-ग्रन्थ में शब्दों का संकलन बिलकुल मौलिक पद्धति से किया गया है। जहाँ एक ओर इसमें विवेचित नामों का शीर्षक देकर नाममालाओं की परिपाटी का अनुगमन किया गया है; वहीं दूसरी ओर शब्दों के प्रस्तुतिकरण में 'ख़ालिक़बारी' तथा 'अल्लाख़ुदाई' जैसे द्विभाषी-त्रिभाषी कोशों की शैली भी अपनाई गई है। कह सकते हैं कि इस दृष्टि से दोनों धाराओं का संगम इसमें मिलता है।[139]

पुनश्च यहाँ कहना होगा कि 1800 ई॰ के बाद भी कुछ ऐसे कोश-ग्रन्थ लिखे गए जिनकी शैली और प्रवृत्ति मध्यकालीन है। वहीं मध्यकाल में 1500 ई॰ से 1800 ई॰ की अवधि में ही इसके कुछ अपवाद भी मिलते हैं क्योंकि कई यूरोपीय विद्वानों ने इसी दौर में कुछ आधुनिक ढंग के हिन्दी कोशों की रचना भी की है। अतः यहाँ मध्यकाल की समकालीनता की अवधि का अतिक्रमण करते हुए, ऐसे कोश-ग्रन्थ जो मध्यकालीन ढंग के हैं, उनका उल्लेख भी आगे किया जा रहा है तथा आधुनिक ढंग के यूरोपीय विद्वानों द्वारा तैयार किए गए मध्यकालीन हिन्दी कोशों का उल्लेख आधुनिक काल के अंतर्गत किया जाएगा। जिनकी कोशकारिता के पीछे तत्कालीन हिन्दी आदि भाषाओं और उनमें कार्यरत जनसामान्य में रुचि रखने वाले यूरोपीय जिज्ञासुओं के अतिरिक्त भारत में नियुक्त उच्च यूरोपीय पदाधिकारियों की सुविधा का विशेष ध्यान रखा गया था। यही कारण है कि ऐसे कोश-ग्रन्थों ने न केवल तत्कालीन यूरोपीय अध्येताओं को सहायता पहुँचाई बल्कि हिन्दी शब्द-भंडार में वृद्धि कर अपना अमूल्य योगदान भी दिया। जिसने आगे चल कर बाद के कई भारतीय और यूरोपीय कोशकारों के लिए नई राह दिखाने का कार्य किया। वैसे मौलिकता की दृष्टि से भी इस दौर में यूरोपीय विद्वानों द्वारा तैयार ऐसे कोशों की महत्ता कम नहीं है; जैसे वर्णानुक्रम शैली, शब्दों के व्याकरणिक रूप तथा शब्द संबंधी अर्थ, व्याख्या, व्युत्पत्ति एवं आज के आधुनिक कोश में निहित आवश्यक अन्य कई विवरण मिलने से ऐसे कोशों ने परवर्ती कोशकारों के लिए नई राहों का अन्वेषण ही किया है। ऐसे किसी भी भाषा में प्रायः कोशकार अपने पूर्ववर्ती कोश-रचनाओं तथा कोशकारों से सहयोगात्मक संबंध बना ही लेते हैं; जिसका कारण यह है कि आज भी कोश-रचना बहुत हद तक पारस्परिक निर्भरता का कार्य माना जाता है।

---

[139] अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, अध्याय - एक, पृष्ठ - 51

आगे मध्यकाल की शैली और प्रवृत्ति वाले कुछ ऐसे हिन्दी कोश-ग्रन्थों का परिचय दिया जा रहा है जिनका रचनाकाल तो सन् 1800 ई० के बाद का है लेकिन उनकी शैलीगत संरचना मध्यकालीन कोशकरिता से जुड़ी हुई है –

उमरावकोश

प्रस्तुत कोश के रचयिता सुवंश शुक्ल हैं। उमरावकोश संस्कृत के अमरकोश का भाषा में अनुवाद सा है अर्थात् जो संस्कृत का अध्ययन नहीं कर सकते उनके लिए सुवंश ने भाषा में छंदबद्ध कोश तैयार किया है। कोश में कुल तीन कांड, 21 वर्ग तथा 1856 छंद हैं। यद्यपि इसके तीन कांड का कारण सुवंश ने तीनों लोकों के नामों का उमरावकोश में समाहार होना बतलाया है फिर भी यह वस्तुतः व्यवस्था अमरकोश के आधार पर ही प्रतीत होती है। वहीं उमरावकोश का रचनाकाल इस प्रकार दिया गया है –

युग रस बसु अरु निशापति संवत वर्ष विचारि।
माघ कृष्ण प्रतिपदा को, भयो ग्रंथ औतार॥
(उमरावकोश, ३।२।१०४)

अर्थात् संवत् 1832 (सन् 1805 ई०) के माघ मास में कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को यह ग्रन्थ संपूर्ण हुआ। अचलानन्द जखमोला के अनुसार उमरावकोश में सुवंश की मौलिकता कम दिखाई पड़ती है, फिर भी अनावश्यक शब्दों को उन्होंने इसमें त्याग दिया है। इस कोश में अमरकोश से अतिरिक्त शब्द अधिक संख्या में नहीं हैं किन्तु छंद पूर्ति हेतु आए शब्द अन्य कोशों की अपेक्षा अधिक हैं।[140] जिससे यह उमरावकोश वस्तुतः तत्कालीन कोश परम्परा में शब्दों की निर्मित और उसकी प्रस्तुति को किंचित् पूर्ण करने वाला प्रतीत होता है।

अनेकार्थ

अनेकार्थ कोश के प्रणेता चन्दनराम हैं। ये रीतिकालीन कवि थे। इस कोश को 'नामार्णव' भी कहा जाता है। इस कोश-ग्रन्थ का रचनाकाल 'अनेकार्थ' के अंत में इस प्रकार दिया गया है –

[140] वही, अध्याय - एक, पृष्ठ - 53-54

सम्बत रस ऋतु नाग सिसि, आश्विन दसमि स्वच्छ।
ससि सुत वासर को भयो, अनेकार्थ अवलच्छ॥
(चन्दनरामकृत अनेकार्थ, पृष्ठ - 41)

अर्थात् विक्रम संवत् 1866 (यानी सन् 1809 ई०) में आश्विन मास के बुधवार को अनेकार्थ कोश निर्मित हुआ। किन्तु अन्य कोशों की तरह इस 'अनेकार्थ' में कोई विशेष मौलिकता नहीं है। कोशकार ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि प्रस्तुत कोश में क्षपणक, अमरसिंह तथा धनंजय के अनेकार्थ कोशों का 'सार' लिया गया है –

छपनक, अमर, धनंजयो तिहूं ग्रंथ को सार।
अनेकार्थ भाषा विषै, यह हौ कियो उचार॥
(चन्दनरामकृत अनेकार्थ, पृष्ठ - 40)

बहरहाल, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है वस्तुतः इस कोश में एक शब्द के अनेक अर्थ दिए गए हैं; जिसमें शब्द कुल संस्कृत के तत्सम व सर्वप्रचलित ही हैं। अचलानन्द जखमोला कहते हैं कि 'सार' ग्रहण करने में चन्दनराम ने यह ध्यान नहीं रखा कि कोई शब्द विशेष हिन्दी में प्रचलित है या नहीं। इनका मूल उद्देश्य संस्कृत परिपाटी पर हिन्दी में भी एक 'नाममाला' प्रस्तुत करना था जिसको कंठस्थ किया जा सके –

नामार्णव संभव सगुन, अनेकार्थ मनि माल।
कंठ करहु सज्जन लहो, महिमा प्रभा रसाल॥
(चन्दनरामकृत अनेकार्थ, पृष्ठ - 41)

पूरे कोश में कुल मिलाकर 285 दोहे आए हैं जो तीन परिच्छेदों में विभक्त हैं।[141] जिनके आधार पर यह कोश हिन्दी कोशों की परम्परा में उल्लेखनीय बन जाता है।

धनजी नाममाला और अनेकार्थी

इन दोनों कोशों के रचयिता सागर कवि हैं; जिनका जन्म सन् 1786 ईस्वी में माना जाता है। सागर कवि के जन्म वर्ष को ध्यान में रखते हुए अचलानन्द जखमोला ने दोनों कोशों का

[141] वही, अध्याय - एक, पृष्ठ - 57-58

रचनाकाल सन् 1820 ई० माना है । धनजी नाममाला 145 दोहों का एक छोटा सा समानार्थी कोश है। यह कोश अधिकांश रूप में संस्कृत कोशकार धनंजय की नाममाला से प्रभावित है। इसलिए 'धनजीनाममाला' शीर्षक भी धनंजय नाममाला का ही अपभ्रंश रूप प्रतीत होता है। पूरे कोश में शब्दों को किसी वर्ग या काण्ड के अन्तर्गत समाहित न करते हुए आरम्भ से अन्त तक एक क्रम में रखा गया है; जिसमें कुल 108 मूल नाम शब्दों के पर्याय दिए गए हैं। बहरहाल, इसमें शामिल शब्द केवल नाम संज्ञा हैं – सर्वनाम, विशेषण या क्रियाएँ नहीं हैं। वहीं 'अनेकार्थी' 60 दोहों का एक छोटा-सा कोश है; जिसमें शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ दिए गए हैं। इसमें शामिल शब्द भी सामान्यतः पूर्ववर्ती कोशों में संकलित जैसे ही हैं, उनके चयन या निरूपण पद्धति में कोई नवीनता नहीं है। अतः अनेकार्थी कोश भी केवल मध्यकालीन कोशों की चलती हुई परिपाटी में अंशतः योगदान मात्र ही देता है।

अवधानमाला, अनेकारथी और एकाक्षरी नाममाला

यह तीनों कोश-ग्रन्थ बारहठ मारवाड़ के थबूकड़ा ग्राम के निवासी उदयराम/उदैराम रचित हैं। कोशकार की जन्म संबंधी निश्चित तिथि उपलब्ध नहीं होती पर कुछ अन्य साधनों[142] के आधार पर यह सिद्ध होता है कि ये जोधपुर के राजा मानसिंह (सन् 1782-1843 ई०) के समकालीन थे। अचलानन्द जखमोला इसी आधार पर तीनों कोशों का रचनाकाल लगभग सन् 1835 ई० निर्धारित करते हैं। अवधानमाला एक समानार्थी कोश है जिसमें कुल 561 दोहे हैं। इस कोश में संस्कृत शब्दों के अतिरिक्त डिंगल के शब्द ही अधिक मात्रा में आए हैं। कोशकार ने इस कोश में पर्याप्त शब्दों को स्वयं भी निर्मित किया है। अतः तत्कालीन डिंगल साहित्य के अध्ययन में इस कोश की उपादेयता महत्त्वपूर्ण हो जाती है। दूसरी ओर 'अनेकारथी' एक नानार्थी कोश है जिसमें एक शब्द में 'उठे' अनेक अर्थों को छंदबद्ध किया गया है, कोशकार 'अनेकारथी' के एक छंद में कहता भी है –

एक सबद पद में उठे अरथ अनेक उपाय।
अनेकारथ 'उदा' उकत विवधा नाम वणाय॥

[142] नारायण सिंह भाटी के अनुसार शोध संस्थान जोधपुर में सुरक्षित महाराजा मान सिंह के समकालीन कवियों के चित्र में उदयराम का चित्र भी नाम सहित मिलता है। देखें - *डिंगलकोश* (सं० नारायण सिंह भाटी), राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर, संस्करण - 1957 ई०, भूमिका, पृष्ठ - 12

अनेकारथी में कुल 89 दोहे हैं, जिनके अन्तर्गत 129 नाम संज्ञाओं के अनेकार्थ दिए गए हैं। बहरहाल, इस कोश पर शाश्वतकृत 'अनेकार्थ समुच्चय' तथा नन्ददास के 'अनेकार्थ' का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत होता है। वहीं 'एकाक्षरी नाममाला' में 282 दोहे छंदबद्ध हैं। इसमें प्रत्येक स्वर तथा व्यंजन के प्रचलित अर्थ दिए गए हैं। एक व्यंजन के समस्त बारह वर्णों में से अंतिम विसर्गान्त वर्ण को छोड़कर अन्य सब वर्णों के नानार्थ भी प्रस्तुत कोश में छंदबद्ध किए गए हैं। प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि 'एकाक्षरी नाममाला' में कोशकार द्वारा लगभग अधिकांश शब्दों की निरूपण शैली संस्कृत में सौभरिकृत 'एकाक्षरीनाममाला' और हिन्दी में फ़कीरचन्दकृत 'सुबोधचन्द्रिका' के समान ही की गई है। यह भी ध्यान देने की बात है कि ठेठ डिंगल के अतिरिक्त 'एकाक्षरी नाममाला' में संस्कृत के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है किन्तु कहीं-कहीं जन-जीवन में प्रचलित अत्यन्त साधारण शब्दों को भी कोशकार ने अनोखे ढंग से अपनाया है; उदाहरण के लिए 'झै' अर्थ में इन्होंने एकाक्षरी नाममाला के छंद 116 में 'करभ झैकतांकाज' अर्थात् ऊँट को बिठाते समय किया जाने वाला शब्दोच्चारण दिया है जो उस समय के जन-जीवन में अत्यन्त प्रचलित माना गया है। इस प्रकार ऐसे शब्दों का प्रयोग कोशकार कवि उदयराम की सूक्ष्म वैशिष्ट्यता का परिचायक बन जाता है।[143]

अब आगे यहाँ उन कोशों का नामोल्लेख मात्र किया गया है जिनके रचनाकारों के नाम तो उपलब्ध हैं किन्तु उनकी रचना अवधि ज्ञात नहीं है। बहरहाल, ऐसे कोशों की वर्णन-शैली और प्रवृत्तियों के आधार पर इन्हें मध्यकालीन कोशगत श्रेणी में रखना उचित लगता है; जैसे नाथ अवधूत रचित अनेकार्थ नामावली, रघुनाथ कृत प्रदीपिका नाममाला, राठौड़ फ़तहसिंह महेशदासोत निर्मित नाम सार, दुर्गालाल कायस्थ कृत नाममाला, बसाहूराम कृत नाममाला, माधोराम रचित अनेकार्थ, बिहारीलाल अग्रवाल निर्मित नाम प्रकाश, उदोत कवि कृत अनेकार्थ मंजरी इत्यादि।

इसके अतिरिक्त यहाँ उन कोशों का भी उल्लेख किया जाना उचित होगा जिनका न तो रचनाकाल निश्चित हो सका है और न रचनाकार का ही कहीं भी कोई स्पष्ट निर्देश किया गया है। अचलानन्द जखमोला बतलाते हैं कि ऐसे कोशों में अधिकांश का आरम्भिक या

---

[143] अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, अध्याय - एक, पृष्ठ - 65-67

अंतिम हिस्सा प्रायः नष्ट हो गया है, अतः इनके विषय में ठीक-ठीक कुछ अनुमान लगाना भी संभव नहीं है; जैसे कि नागराज डिंगल कोश, आरंभ नाममाला, शब्द कोश, नाममाला इत्यादि।

उपरोक्त वर्णित या उल्लिखित कोशों के अतिरिक्त हिन्दी भाषा के मध्यकालीन दौर में और भी अन्य कुछ-एक कोशों की रचना हुई है, किन्तु जिनका उक्त संदर्भ में कहीं पर कोई अत्यधिक विवरण हमें नहीं मिलता। अतः यहाँ उनका नामोल्लेख भर करना ही संभवतः पर्याप्त होगा – बनारसीदास कृत नाममाला (1613 ई०), भीखजन कृत भारती नाममाला (1626 ई०), भगवतीदास अग्रवाल कृत अनेकार्थ नाममाला (1630 ई०), हरिदास कृत नाममाला और नामनिरूपण (1630 ई०), विनयसागर उपाध्याय कृत अनेकार्थ नाममाला (1646 ई०), बद्रीदास कृत मानमंजरी (1668 ई०), 'शुक्र उल्लाह' अर्थात् ईश्वर के अनुयायी कोशकार प्रणीत अल्लाखुदाई (1688 ई०), महासिंह पाँडे कृत अनेकार्थ नाममाला (1703 ई०), कवि रत्नजित रचित भाषा शब्द सिन्धु और भाषा धातु माला (1713 ई०), केसरकीर्ति कृत नामरत्नाकर कोश (1729 ई०), दयाराम त्रिपाठी रचित अनेकार्थ (1738 ई०), हरिकवि प्रणीत अमरकोश भाषा (1753 ई०), खंडन कृत नाम प्रकाश (1756 ई०), कनककुशल प्रणीत लखपत मंजरी नाममाला (1766 ई०), रामहरी या हरीराम जौहरी कृत लघुनामावली और लघुशब्दावली (1777 ई०), प्रेमी यमन रचित अनेकार्थ नाममाला (1778 ई०), खुमान या खुमाण विरचित अमरप्रकाश (1779 ई०), चेतनविजय रचित आतमबोध नाममाला (1790 ई०), जगतसिंह प्रणीत रत्नमंजरी (1806 ई०), रणधीर सिंह कृत नामार्णव (1810 ई०), प्रयागदास प्रणीत शब्द रत्नावली (1812 ई०), गोकुलनाथ भट्ट प्रणीत नामरत्नमाला (1813 ई०), नवलसिंह विरचित नाम चिन्तामणि और नाम रामायण (1846 ई०) इत्यादि।

इनके अतिरिक्त इस काल में उल्लिखित कुछ ऐसे कोश भी हैं जिनमें कई ऐसी विशिष्टताएँ हैं जो अन्यत्र किसी मध्यकालीन कोश-ग्रन्थ में नहीं मिलती। ऐसे कोशों की शब्दावली अन्य कोशों के समान काव्य-साहित्य विषयक न होकर किसी संप्रदाय या क्षेत्र विशेष से ही अधिकांशतः संबंध रखती हैं; जैसे निरंजनदासकृत हरिनाममाला, सारंगधर कृत विरह बुध चन्द्रिका (1717 ई०) इत्यादि।

इन मध्यकालीन कोशों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अमरकोश तथा कभी-कभी अन्य कोशों के आधार पर भी हिन्दी के अनेक पद्यात्मक कोश बने हैं जो अपने स्वरूप में पर्यायवाची, समानार्थी या अनेकार्थक कोश थे। तो लगभग इन सभी समानार्थी, अनेकार्थी और एकाक्षरी कोशों के रचयिता संस्कृत कोशों की बहुलता अथवा उनमें अंतर्निहित अपार शब्द-भण्डार से भलीभाँति परिचित थे। किन्तु जैसा कि कहते हैं परम्परा में निहित संस्कृत की लोक व्यावहारिकता से दूरी और उसकी दुरूहता के कारण ही दरअसल संस्कृत की अपेक्षा 'भाखा' में शब्द प्रयोगों की आवश्यकता को देखते हुए ऐसे मध्यकालीन हिन्दी कोश-ग्रन्थों का सृजन किया गया था। बहरहाल, यही स्थिति कुछ हद तक ख़ालिक़बारी, तुहफ़तुलहिन्द और अल्लाख़ुदाई जैसे बहुभाषी कोशों की रचनात्मक आवश्यकताओं के संदर्भ में भी बतलाई कही जा सकती है; जो तत्कालीन शाब्दिक और भाषायी आवश्यकता के अनुरूप निर्मित हुए थे।

बहरहाल, इसके अतिरिक्त कुछ लोकोपकार, परमार्थ, सांसारिक तथा व्यावहारिक ज्ञान इत्यादि के लाभार्थ और साधारण पाठक के हितार्थ भी मध्यकाल में कुछ कोशों का सृजन किया गया है। कहना न होगा कि इन कारकों की पृष्ठभूमि में संस्कृत की क्लिष्टता से दूर 'भाखा' की सुस्पष्टता का संकेत ही यहाँ मुख्य ठहरता है; जिसका प्रयोजन मध्यकाल में काव्य-शास्त्र के अध्येताओं, व्याख्याकारों तथा स्वयं कवियों के लिए भी पर्याप्त जान पड़ता है। इसका एक स्पष्ट कारक कोशों का छंदबद्ध होना है ताकि इनको भी संस्कृत कोशों की तरह कंठस्थ किया जा सके। अब यह मध्यकालीन कोशों की कुछ सीमाएँ ही हो सकती हैं कि वह अपने तत्कालीन साहित्यिक या जन-प्रचलित भाषा का पूर्ण या आंशिक रूप में कितना प्रतिनिधित्व करता है ? वहीं आजकल के कोशों की तरह प्राथमिक उपयोगिता 'संदर्भ-ग्रन्थ' के रूप में माने जाने से, ऐसे कोशों की उपादेयता का प्रश्न भी आज विचारणीय हो जाता है। जबकि कुछ-एक मध्यकालीन हिन्दी भाषा के कोशों में शब्दों के क्रमसंयोजन में नूतन और भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि का परिचय भी मिलता है; साथ ही साथ उनमें से कई कोशों में तो शब्दों की विस्तृत व्याख्या भी दे दी गई है। इसके अतिरिक्त मध्यकालीन पद्य कोशों में शब्दों की वर्तनी में, लिखित रूप की अपेक्षा बोलचाल के स्वरूप का अधिक ध्यान रखा गया है। आगे महत्त्वपूर्ण यह है कि हिन्दी के मध्यकालीन कोशों में प्राचीन वर्णानुसारी विभाजन के अतिरिक्त केवल शीर्षकानुसारी विभाजन भी

मिलता है, जैसे कि 'अथ गो शब्द', 'अथ सदृश शब्द' इत्यादि। वस्तुतः यही कारण है कि हिन्दी के अधिकांश मध्यकालीन कोश ग्रन्थों में शब्द-संकलन का कार्य मुख्यतः संस्कृत के कुछ प्रसिद्ध कोशों के आधार पर हुआ है। किन्तु इसमें कुछ अपवाद भी हैं कि अमीर ख़ुसरो और उनसे प्रभावित कोशों के समय से ही जनजीवन या बोलचाल के शब्दों को भी इनमें संगृहीत करने की चेष्टा होती रही है।

हिन्दी के इन मध्यकालीन कोशों की कुछ सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित बतलाई जा सकती हैं, जैसे कि पद्यात्मकता, नामसंग्रह की अधिकता से साथ कभी-कभी कुछ धातु कोश भी मिल जाते हैं, पारिभाषिक शब्दकोश जैसे 'आतमबोध' या 'अनल्पप्रबोध' आदि भी मिलते हैं, कुछ डिंगल कोशों में नामपद के साथ क्रियाओं का संकलन भी दिखाई देता है तथा कभी-कभी कुछ महत्त्वपूर्ण शब्दों की पर्यायगणना और परिभाषाएँ भी इन कोशों में संग्रहीत होते रहे हैं। व्युत्पत्ति का पक्ष हिन्दी के मध्यकालीन कोशों में पूर्णतः परित्यक्त ही था। बहरहाल, संस्कृत कोशों की तरह हिन्दी के मध्यकालीन कोशों की न तो परम्परागत टीकाएँ लिखी गईं और न तद्भव शब्दों की व्युत्पत्ति का कहीं अनुशीलन ही हुआ। अतः कोशविद्या के विकासात्मक कौशल की दृष्टि में इस काल में प्रायः कोई ख़ास प्रगति नहीं मिलती। कहना न होगा कि "संस्कृत के अधिकांश कोशकारों की दृष्टि में कविता के निर्माण में सहायता पहुँचाना – पर्यायवाची कोशों का कदाचित एक अति महत्त्वपूर्ण लक्ष्य था। इसी प्रकार श्लेष, रूपक आदि अलंकारों में उपयुक्त शब्दनियोजन के लिए शब्दों को सुलभ बनाना अनेक नानार्थ शब्द-संग्राहकों का मुख्य कोशकर्म था। हिन्दी के कोशकारों ने भी संभवत इस प्रेरणा को अपना प्रियतर उद्देश्य समझा। इसी कारण गतानुगतिक और संस्कृतागत शब्दकोश की निधि को असंस्कृतज्ञों के लिए सुलभ करने की इतिकर्तव्यता हिन्दी कोशों में भी हुई। थोड़े से कोशकारों ने आरंभ में पर्याय या अनेकार्थ शब्दों में नए शब्द जोड़े। पर उससे बहुत आगे बढ़ने का स्वतंत्र प्रयास कम हुआ। फिर भी कुछ कोशकारों ने तद्भव आदि शब्दों की थोड़ी बहुत वृद्धि करने का प्रयास किया। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि मध्यकालीन हिन्दी शब्दकोशों में कोशविद्या के किसी भी तत्त्व की प्रगति नहीं हो पाई।"[144] किन्तु कोश-कार्य क्षेत्र में परम्परा की दृष्टि से

[144] श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), *हिंदी शब्दसागर (प्रथम भाग)*, वही, संपादकीय प्रस्तावना, पृष्ठ - 9

हिन्दी को बृहत्तर भाषायी प्रौढ़ता प्रदान करने वाले तत्वों ने इस दौरान भी उक्त भाषा और साहित्य को पर्याप्त संभावनाओं से भर दिया। समग्रतः मध्यकालीन कोशों का ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, तत्कालीन भाषा-साहित्य के अध्ययनार्थ भी उनकी बहुमूल्य उपादेयता असंदिग्ध है।

आधुनिक काल (1800 ई॰ से अब तक)

नाथू राम कालभोर ने अपने प्रकाशित शोधकार्य (1981 ई॰) 'हिन्दी कोश साहित्य : समीक्षात्मक अध्ययन' में हिन्दी भाषा और उसकी कोश परम्परा के संदर्भ में आधुनिक काल के इस कालगत विभाजन को निम्नांकित दो भागों में विभाजित किया है –

1. ब्रिटिश राज्यकाल (1800 ई॰ से 1947 ई॰)
2. स्वातंत्र्योत्तर काल (1947 ई॰ से 1977 ई॰)

बहरहाल, उक्त कालगत विभाजन को आधार मान कर आधुनिक काल[145] को कोशकार रामचन्द्र वर्मा के जीवन के अंतिम दशक अर्थात् सन् 1970 ई॰ तक सीमित किया गया है।

ब्रिटिश राज्यकाल (1800 ई॰ से 1947 ई॰)

नाथू राम कालभोर ब्रिटिश राज्यकाल को रेखांकित करते हुए बतलाते हैं कि "इस काल से मेरा आशय भारत में ब्रिटिश शासन की नींव दृढ़ करने अर्थात् फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना वर्ष 1800 ई॰ से लेकर अंग्रेजों के भारत छोड़ने के समय सामान्यतः 1947 ई॰ (15 अगस्त, 1947) तक से है।"[146] यानी स्पष्ट रूप से यह काल तब का है जब आरम्भ में अंग्रेज़ों का भारतीयों के साथ निकट का संबंध स्थापित होने लगा। उन्होंने अपने साम्राज्य

---

[145] आधुनिक काल तो अब तक चल रहा है। अतः कुछ बातों को ध्यान में रखते हुए इसको भारतीय कोशविज्ञान के आधुनिक यास्क माने जाने वाले कोशकार रामचन्द्र वर्मा, जिन्हें इस शोधकार्य का आधार भी बनाया गया है, के जीवनकाल (1889-1969 ई॰) के अंतिम दशक अर्थात् वर्ष 1970 ई॰ तक रखने का ही प्रयास हुआ है जिसके अनंतर आधुनिक काल में कोश-रचना संबंधी कुछ आधुनिक पहलुओं जैसे थिसॉरस, ऑनलाइन या ई-कोश तथा कम्प्यूटरीकृत कोशकारिता आदि के अध्ययन का किंचित् लघु-प्रयास भी किया गया है।

[146] नाथू राम कालभोर, *हिन्दी कोश साहित्य : समीक्षात्मक अध्ययन*, वही, अध्याय २, पृष्ठ - 82

के विस्तार, सुदृढ़ प्रशासन और धार्मिक प्रचार के लिए भारतीय भाषाओं को समझने तथा अपनी भाषा दूसरों को सिखाने हेतु देशी भाषाओं के कोशों की रचना पर ध्यान केन्द्रित किया।[147] ऐसी स्थिति में अंग्रेज़ों की नज़र में कोशों को प्रमुख जातीय और भाषायी साधन के रूप देखा जाना अपरिहार्य हो गया। अतः इसी दूर दृष्टि से अंग्रेज़ों ने इस क्षेत्र में कार्य करना प्रारम्भ किया; जिससे कि उन्हें भारतीय भाषाएँ समझने तथा भारतीयों को अंग्रेज़ी भाषा से अवगत कराने में सुविधा हो। वस्तुतः यह क्षेत्र भी उनकी उस दीर्घकालीन योजना का हिस्सा थी जो वे भारत पर शासन चलाने के लिए ज़रूरी समझते थे। यूरोपीय कोशकार विद्वानों द्वारा तैयार हिन्दी के ऐसे अधिकांश आरंभिक द्विभाषी कोशों में कुछ अपवादों को छोड़ कर 'हिन्दुस्तानी' शब्दों के लिए रोमन लिपि का ही व्यवहार होता था। जो बहुत हद तक तत्कालीन यूरोपीय लोगों की सहूलियत को ध्यान में रख कर बनाए जाते थे। ऐसे कुछ कोशों में फ्रांसिस्कस एम॰ तुरोनेसिस का हिन्दुस्तानी भाषा का कोश (1704 ई॰), जे॰ फ़र्गुसन का हिन्दुस्तानी कोश (1773 ई॰), जॉन गिलक्राइस्ट का वाकेबुलेरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश (1786 ई॰), हेरिस का ए डिक्शनरी : इंग्लिश एण्ड हिन्दुस्तानी (1790 ई॰), कैप्टन टेलर का ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश (1808 ई॰), रूसो का हिन्दुस्तानी कोश (1812 ई॰), शेक्सपियर का ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश (1817 ई॰), पादरी आदम का हिन्दी भाषा का कोश (1829 ई॰), जे॰ टी॰ टॉमसन का हिन्दी अंग्रेज़ी कोश (1846 ई॰), डंकन फ़ोर्ब्स का हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी कोश (1848 ई॰) अधिक महत्त्वपूर्ण कहे जा सकते।

उक्त ब्रिटिश राज्यकाल में यूरोपीय देशों से आए लोगों द्वारा भारत में ईसाई मत के प्रचार-प्रसार करने और व्यापार के उद्देश्य से कई कार्य किए जा रहे थे। कालांतर में इन लोगों ने ही भारत पर शासन करने और सत्ता हथियाने का प्रयास आरंभ किया। किन्तु इस पूरी प्रक्रिया में फ्रांसीसी, पुर्तगाली, डच आदि सभी के मिलेजुले प्रयासों के बाद सफलता अंग्रेजों के हाथ लगी और भारत में ब्रिटिश राज्यकाल का आरंभ हुआ; जिसके बाद धर्म प्रचार, व्यापार और शासन तीनों ही कामों के लिए यहाँ की भाषा सीखना उनके लिए अनिवार्य हो गया था। इसलिए कोश तैयार करना भी उनके लिए उसी प्रक्रिया की एक

[147] वही, अध्याय २, पृष्ठ - 82

कड़ी थी। वस्तुतः इन विदेशियों ने तीन तरह के कोश तैयार किए जो अंग्रेजी-हिन्दुस्तानी, हिन्दुस्तानी-अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी-हिन्दुस्तानी कोश के तौर पर उपलब्ध हुए। इनमें से प्रत्येक वर्ग के कुछ प्रमुख उल्लेखनीय कोश इस प्रकार बतलाए जाते हैं –

अंग्रेजी-हिन्दुस्तानी कोश वर्ग में डच मूल के जॉन जेशुआ केटलर ने हिन्दुस्तानी व्याकरण और उसके कोश का निर्माण किया था, जिसका रचनाकाल स्वयं जॉर्ज ग्रियर्सन ने सन् 1715 ई० बतलाया है। आगे जे० फर्ग्युसन द्वारा तैयार कोश 'ए डिक्शनरी ऑफ हिन्दुस्तानी लैंग्वेज़ इन टू पार्ट्स – इंग्लिश एंड हिन्दुस्तानी और हिन्दुस्तानी एंड इंग्लिश' (सन् 1773 ई०) का उल्लेख मिलता है, जिसमें शब्दों की वर्तनी के लिए रोमन लिपि का प्रयोग किया गया था। इस श्रेणी के कोशों में एक और नाम जॉन गिलक्राइस्ट के 'ए डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश एंड हिन्दुस्तानी' (दो खण्ड – सन् 1787 व 1790 ई०) का भी मिलता है, जिसमें संस्कृत की अपेक्षा अरबी-फ़ारसी के साथ तद्भव शब्दों पर अधिक ध्यान दिया गया है।

हिन्दुस्तानी-अंग्रेजी कोश वर्ग में पहला नामोल्लेख जोसेफ टेलर द्वारा तैयार किए गए कोश 'ए डिक्शनरी ऑफ हिन्दुस्तानी-इंग्लिश' (सन् 1808 ई०) का मिलता है; जिसमें हिन्दी और हिन्दुस्तानी में भेद किया गया है। इस कोश में संस्कृत और अरबी-फ़ारसी शब्दों के लिए क्रमशः देवनागरी व फ़ारसी लिपि का प्रयोग किया गया है तथा शब्द अकारादि क्रम से दिए गए हैं। बहरहाल, आगे इस प्रकार के कोश कार्यों की परम्परा में फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष रहे कैप्टेन विलियम प्राइस के कोश 'ए वोकेबुलरी ऑफ द खड़ी बोली एंड इंग्लिश प्रिंसिपल वर्ड्स' (सन् 1814 ई०) तथा 'ए वोकेबुलरी ऑफ द ब्रजभाषा एंड इंग्लिश प्रिंसिपल वर्ड्स' (सन् 1815 ई०) का उल्लेख मिलता है। कहना न होगा कि इनके कार्यकाल में ही हिन्दुस्तानी विभाग का नाम 'हिन्दी विभाग' कर दिया गया था। बहरहाल, उक्त कोशों के अतिरिक्त हिन्दुस्तानी-अंग्रेजी कोशों की परम्परा में हमें जॉन शेक्सपियर के कोश 'डिक्शनरी ऑफ हिन्दुस्तानी-इंग्लिश' (सन् 1817 ईस्वी), डंकन फार्ब्स के कोश 'हिन्दुस्तानी-इंग्लिश डिक्शनरी' (सन् 1848 ईस्वी), एस० डब्ल्यू० फालेन/फैलन के कोश 'ए न्यु हिन्दुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी' (सन् 1879 ई०) इत्यादि का उल्लेख भी मिलता है; जो पश्चिमी विद्वानों द्वारा आधुनिक हिन्दी कोश-रचना की परम्परा को बढ़ाने के तौर पर हिन्दुस्तानी-अंग्रेजी कोश वर्ग में किया गया बहुमूल्य योगदान है।

जहाँ तक हिन्दुस्तानी-हिन्दुस्तानी कोश परम्परा की बात है तो इस प्रकार के कोश विदेशियों ने बहुत कम बनाए। जो बनाए उनमें सन् 1829 ई० में पादरी एम० टी० एडम कृत 'हिन्दी कोश' (हिन्दी कोष संग्रह किया हुआ पादरी आदम साहिब का, स्कूल बुक सोसायटी, कलकत्ता : सन् 1829 ई०) का नाम ही उल्लेखनीय है। आगे हम इसी कोश की चर्चा करते हुए स्वातंत्र्योत्तर काल में हिन्दी कोश-रचना की परम्परा को जानने का प्रयास करेंगे।

आधुनिक काल में हिन्दी का प्रथम प्रकाशित कोश ग्रन्थ किसे माना जाए, विद्वानों में इस विषय पर मतान्तर दिखाई देता है,[148] चूँकि ज्ञात होता है कि "एक ओर जब कि बाबू श्यामसुन्दर दास पादरी एम० टी० एडम कृत 'हिन्दी कोश' सन् 1829 ई० को हिन्दी भाषा या देवनागरी अक्षरों में प्रकाशित पहला कोश मानते हैं, तब दूसरी ओर आधुनिक कोष-विधा के प्रकांड पंडित श्री रामचन्द्र वर्मा के मत से श्री राधालाल कृत 'शब्दकोश' सन् 1873 ई० में मुद्रित हिन्दी का पहला कोश है।"[149] अपनी कृति 'कोशकला' में रामचन्द्र वर्मा लिखते हैं कि "हिन्दी का जो पहला मुद्रित कोश मेरे देखने में आया, वह गया ट्रेनिंग स्कूल के हेड मास्टर श्री राधालाल कृत 'शब्द-कोश' था, जो सन् 1873 ई० में काशी से प्रकाशित हुआ था।"[150] हिन्दी का प्रकाशित पहला कोश विषयक मतमतान्तरों की वास्तविकता को देखते हुए नाथू राम कालभोर को आगरा के श्री उदयशंकर शास्त्री के निजी

---

[148] नाथू राम कालभोर ने 'हिन्दी कोश साहित्य : समीक्षात्मक अध्ययन' के पृष्ठ 83 से 87 में, हिन्दी के प्रथम कोश विषयक मतों पर प्रकाश डालते हुए, कुछ विद्वानों के हवाले से जो बातें कही हैं उसके अनुसार श्यामसुन्दरदास के पादरी आदम और रामचन्द्र वर्मा के राधालाल वाले कोश के मतों के विपरीत नवलजीकृत 'नालन्दा विशाल शब्दसागर' की भूमिका में बांकीपुर से प्रकाशित बाबा बैजूदास के 'विवेक कोश' (1892 ई०) को हिन्दी का प्रथम कोश कहा गया है; जो इस तर्क पर स्वतः गलत सिद्ध हो जाता है कि इस भूमिका में पादरी आदम और राधालाल के कोश का कोई उल्लेख नहीं है व 'विवेक कोश' का रचनाकाल भी बहुत बाद का है। यही नहीं लेखक कृष्णाचार्य का 'हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ' (भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 1966 ई०, पृष्ठ - 8) में यह कहना कि श्री लल्लूजीलाल कवि द्वारा सम्पादित व नागरी लिपि में अँगरेजी, हिन्दी और फ़ारसी के पर्याय सहित प्रकाशित शब्दकोश 'अथ अँगरेजी हिन्दी फ़ारसी बोली लिख्यते' (1810 ई०) को हिन्दी के लेखक द्वारा प्रस्तुत तथा मुद्रित प्रथम कोश मानना चाहिए; वास्तव में रामविलास शर्मा के इस मत (रामविलास शर्मा (संपादक), भारतीय साहित्य, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा, जनवरी-अप्रैल : 1970 ई०, अंक : 3-4, पृष्ठ - 156) से ख़ारिज हो जाता है कि यह कोई पारिभाषिक शब्द कोश नहीं बल्कि शब्दों की सूची मात्र है; अतः इसे शब्दावली कहना विशेष उपयुक्त होगा।

[149] नाथू राम कालभोर, *हिन्दी कोश साहित्य : समीक्षात्मक अध्ययन*, वही, अध्याय २, पृष्ठ - 83-84

[150] रामचन्द्र वर्मा, *कोश-कला*, वही, शब्द-क्रम, पृष्ठ - 64

संग्रहालय से 'सप्तसिंधु' अप्रैल-मई 1954 ई॰ में प्रकाशित श्री रामचन्द्र वर्मा का एक आलेख 'भारतीय भाषाएँ और उनके शब्दकोश' मिला जिसमें स्वयं रामचन्द्र वर्मा का कथन इस प्रकार लिखा मिलता है कि "देवनागरी अक्षरों का पहला हिन्दी कोश पादरी एम॰ टी॰ एडम ने 1829 ई॰ में कलकत्ते से निकाला था। श्री जे॰ डी॰ वेट, श्री एम॰ डब्ल्यू॰ फेलन तथा श्री जे॰ टी॰ प्लाट्स के कोश आगे चलकर अच्छे भी हुए और विशेष प्रचलित तथा प्रामाणिक भी।"[151] अतः इस प्रसंग में पादरी मेथ्यून थामसन आदम का 'हिन्दी कोश' (हिन्दी कोष संग्रह किया हुआ पादरी आदम साहिब का) ही वस्तुतः आधुनिक पद्धति का वर्ण-क्रमानुसार संयोजित हिन्दी का प्रथम कोश मान्य ठहरता है।

आगे कुछ कहने से पहले यह बतलाना उचित होगा कि ब्रिटिश राज्यकाल को भी सुविधा की दृष्टि से दो भागों में विभक्त करना[152] आवश्यक समझा गया है; जिसमें से एक को 'हिन्दी शब्दसागर पूर्वकाल' और दूसरे को 'हिन्दी शब्दसागर काल तथा उसके अनंतर' कहा गया है –

हिन्दी शब्दसागर पूर्वकाल : भारत में पश्चिमी कोशों और कोशकारों के प्रभाव में आधुनिक ढंग से विकसित हुए कुछ हिन्दी कोश निर्माण कार्यों की चर्चा पहले की जा चुकी है। ऐसे में यहाँ यह कहना उचिन होगा कि "इन कोशों में यद्यपि पाश्चात्य-कोश-विद्या के सिद्धांतों का प्रौढ़ता से पालन नहीं हुआ है तथापि उसी पद्धति पर चलने का आरंभिक प्रयास शुरू हो गया था। अकारादिवर्णानुक्रम इनकी सर्वप्रथम विशेषता है। परंतु वह क्रम भी पुराने कोशों में पूर्णतः व्यवस्थित नहीं था।"[153] हिन्दी शब्दसागर से पूर्व निर्मित इन हिन्दी कोशों में शब्द संग्रह का मुख्य आधार संस्कृत ही था जिनमें व्यावहारिक भाषा में प्रयुक्त शब्द अपेक्षाकृत कम थे। वहीं इन कोशों में व्याकरणिक निर्देश और शब्दार्थ के लिए आधुनिक कोशविद्या का प्रयोग कम ही मिलता था। इसके अतिरिक्त शब्दों की व्याख्या, व्युत्पत्ति, उदाहरण इत्यादि की भी कई कमियाँ इनमें थी जो उस युग की दृष्टि से इन कोशों की एक सीमा ही कही जा सकती है; जिसका ऐसे एक कारण यह भी था कि इन कोशों का निर्माण प्रायः

---

[151] रामचन्द्र वर्मा, *भारतीय भाषाएँ और उनके शब्दकोश, सप्तसिन्धु*, अप्रैल-मई 1954 ई॰, पृष्ठ - 12

[152] जैसा कि 'हिन्दी शब्दसागर' की संपादकीय प्रस्तावना (नागरीप्रचारिणी सभा : 1986 ई॰) और 'हिन्दी कोश साहित्य : समीक्षात्मक अध्ययन' के द्वितीय अध्याय (नाथू राम कालभोर : 1981 ई॰) में किया गया है।

[153] श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), *हिंदी शब्दसागर (प्रथम भाग)*, वही, संपादकीय प्रस्तावना, पृष्ठ - 28-29

व्यक्तिगत प्रयास से हुए थे। यही कारण है कि इनमें संकलित अधिकांश शब्द संस्कृत, हिन्दी आदि के पूर्ववर्ती कोशों से ले लिए जाते थे और एक जिल्दीय व्यवहार उपयोगी कोश तैयार करना इन कोशकारों और कोशों का मुख्य प्रयोजन बन पड़ता था। बहरहाल, हिन्दी शब्दसागर पूर्वकाल के कुछ-एक अन्य उल्लेखनीय हिन्दी कोश-ग्रन्थ निम्नलिखित हैं – हरिविलास का विष्णुविलास भाषा कोश (1874 ई०), मूलचन्द का भाषा कोश (1877 ई०), मिर्ज़ा कैसरबख़्श का कैसर कोश (1885 ई०), मधुसूदन पण्डित का मधुसूदन निघण्टु (1887 ई०), मंगीलीलाल का मंगल कोश (1887 ई०), बाबा बैजूदास का विवेक कोश (1892 ई०), श्रीधर त्रिपाठी का श्रीधर भाषा कोश (1894 ई०), गौरीदत्त शास्त्री का गौरी नागरी कोश (1901 ई०), द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी का हिन्दी शब्दार्थ पारिजात (1914 ई०), रमाशंकर शुक्ल रसाल का भाषा शब्द कोश (1936 ई०) इत्यादि। बहरहाल, इस दौर में प्रकाशित हिन्दी भाषा-कोशों के विषय में यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि ये सभी कोश अपने व्यावहारिक प्रयोगों की दृष्टि से खड़ीबोली हिन्दी के साथ-साथ नागरी के मानक रूपों के प्रचार-प्रसार और उसके स्थायित्व को बनाए रखने हेतु अपनी आवश्यक भूमिका निभा रहे थे। अतः ऐसे में हिन्दी शब्दसागर पूर्वकाल के इन आरम्भिक कोशों में शब्दसागर-निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की परम्परागत झलक तो मिलती ही है, विशेषतः ऐसे प्रयासों को हिन्दी कोशकारिता की मौलिक सूची-संबद्धता से भी जोड़ कर देखा जा सकता है।

हिन्दी शब्दसागर काल तथा उसके अनंतर : सन् 1907 ई० में नागरीप्रचारिणी सभा ने संस्थागत प्रयास से कोश निर्माण और प्रकाशन की योजना बनाई; जिसका परिणाम कुछ आगे चल कर 'हिन्दी शब्दसागर' के रूप में प्रकट हुआ। इसका संपादन मुख्य रूप में 1910 ई० से 1927 ई० तक हुआ किन्तु मुद्रित होकर प्रथम बार आठ भागों में 1912 ई० से 1929 ई० तक सामने आया। वहीं बाद में सन् 1965-1976 ई० के बीच इसका परिवर्द्धित संस्करण ग्यारह भागों में नागरी-प्रचारिणी सभा से ही प्रकाशित हुआ। सन् 1986 ई० में भी सभा द्वारा फिर एक बार 'हिन्दी शब्दसागर' का ग्यारह भागों में एक परिवर्धित संशोधित नवीन संस्करण प्रकाशित किया गया था। बहरहाल, हिन्दी शब्दसागर की रचनादृष्टि वास्तव में कोश निर्माण की प्रेरणा और प्रयास के साथ-साथ उस समय के उपलब्ध साधन एवं परिस्थितियों के विचार से एक अत्यंत बृहत्तर कार्य सिद्ध हुआ था; जिसकी महान

सफलता के पीछे कुछ सीमाएँ हो सकती हैं किन्तु उसकी उपलब्धि को न्यूनतम कह कर टाला नहीं जा सकता। यही कारण है कि आधुनिक दौर में 'हिन्दी शब्दसागर' आगे चल कर हिन्दी कोश परम्परा में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस कोश का संपादन कार्य नागरी-प्रचारिणी सभा के तत्त्वाधान में सन् 1910 ई॰ में आरंभ हुआ था; जो मूल संपादक श्यामसुन्दरदास तथा कई अन्य सहायक संपादकों के सम्पादन नेतृत्व में लगभग 20 वर्षों के बाद सम्पन्न हुआ। हिन्दी शब्दकोशों की विकास परम्परा में 'हिन्दी शब्दसागर' का प्रथम प्रकाशन प्रामाणिकता तथा उपादेयता की दृष्टि से वस्तुतः एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य सिद्ध हुआ। चूँकि इस अत्यंत बृहत् कोश ग्रन्थ के सम्पादन और प्रकाशन में 20 वर्ष से अधिक का समय लगा था; अतः सम्पादन कार्य में लगे व्यक्तियों की साधना और श्रम को देखते हुए कोश के प्रकाशन के साथ ही तत्कालीन विद्वत् समाज तथा सामान्य जन में इसे लेकर पर्याप्त प्रशंसा और प्रसिद्धि का भाव जागा। जो कोश के संपादन कार्य में जुड़े संपादक सहित अन्य सभी सदस्यों और नागरीप्रचारिणी सभा के लिए स्वाभाविक रूप से सराहनीय व निरंतर कार्यबल प्रदान करने वाला सिद्ध हुआ। कहना न होगा कि हिन्दी शब्दसागर के प्रकाशन से हिन्दी कोश-रचना के क्षेत्र में नए दृष्टिकोण का सूत्रपात भी हुआ था। वास्तव में हिन्दी शब्दसागर का प्रकाशन इस दिशा में हिन्दी वालों के लिए तो एक वरदान था ही, दूसरे यह हिन्दीतर भारतीय भाषाओं में भी अपने तरह का पहला महत्त्वपूर्ण कोश बन गया था। इसके पहले आठ बड़ी जिल्दों में प्रकाशित प्रथम संस्करण की भूमिका में कोश के मूल संपादक श्यामसुन्दरदास स्वयं यह उल्लेख करते हैं कि "इसमें सब मिलाकर 93, 115 शब्दों के अर्थ तथा विवरण दिए गए हैं और आरंभ में हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास का इतिहास भी दे दिया गया है।"[154] बहरहाल, यह कोश अपने आकार और विस्तार में निहित उपादेयता से हिन्दी कोश-रचना क्षेत्र की परम्परा के परवर्ती कोश कार्यों के लिए एक उपजीव्य ग्रन्थ सिद्ध हुआ जान पड़ा; चूँकि इसके तत्काल बाद में ही कोश की उपयोगिता और महत्ता को देखते हुए सामान्य जन तथा विद्यार्थियों की दृष्टि से कोशकार रामचन्द्र वर्मा द्वारा इसका एक संक्षिप्त संस्करण 'संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर' नाम से सन् 1933 ई॰ में नागरीप्रचारिणी सभा (वाराणसी) से प्रकाशित किया गया। जो वस्तुतः अपनी उपादेयता या महत्ता से हिन्दी कोशों की परम्परा में अपने उपजीव्य कोश-ग्रन्थ से आगे बढ़कर थोड़ा और

[154] श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), *हिंदी शब्दसागर (प्रथम भाग)*, वही, संपादकीय प्रस्तावना, पृष्ठ - 7

अधिक प्रमाणित तथा अतिआवश्यक ही प्रतीत हुआ।[155] इस प्रकार हिन्दी शब्दसागर और उसके अनंतर हुए इन कुछ-एक कोश-कार्यों पर मुख्य रूप से हिन्दी भाषा की शब्द-समृद्धि के लिए किए जा रहे आरंभिक प्रयासों का ही प्रभाव अधिक था।

स्वातंत्र्योत्तर काल (1947 ई॰ से 1970 ई॰)

15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में विदेशी अंग्रेज़ी भाषा की अपेक्षा हिन्दी को 'राष्ट्रभाषा' का स्थान दिलाने की बातों ने इसका महत्त्व बहुत नहीं तो कुछ हद तक अवश्य बढ़ाया। अंततोगत्वा इसमें पूर्व के निर्धारित कोश-कार्यों से आगे बढ़ कर कुछ नए प्रयास भी होने शुरू हुए। जो कोशों की भूलें तथा त्रुटियों को सुधार कर उन्हें अद्यतन शब्द सम्पदा से समृद्ध करने और शब्दों के प्रयोग में दैनिक व्यवहार की दृष्टि से समता एवं एकरूपता लाने अर्थात् हिन्दी के मानकीकरण के लिए प्रामाणिक कोशों की नितांत आवश्यकता पर ध्यान दिए जाने से जुड़ गए। आज कुछ मामलों में हिन्दी भाषा को संवैधानिक संरक्षण भी मिला है जो इसके प्रचार-प्रसार, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक आधारों की समृद्धि सुनिश्चित करने में केन्द्र और राज्य सरकारों के दायित्वों को रेखांकित करता है। बहरहाल, किसी भाषा को मिले ऐसे अवसरों से कोश-रचना के क्षेत्र में किए जाने वाले प्रयास कितने सफल हुए ? भविष्य में ऐसे अवसरों से निकल कर कैसी चुनौतियाँ और समाधान सामने आएँगे ? ऐसे कई प्रश्न आज गौण रह गए हैं; जिन पर अवश्य ही विचार किया जाना चाहिए।

हरदेव बाहरी अपने चर्चित आलेख 'हिन्दी कोश-कार्य' में बतलाते हैं कि राष्ट्रीय ग्रन्थालय, कलकत्ता से 1964 ई॰ में भारतीय भाषाओं के 2190 कोशों की एक सूची प्रकाशित हुई थी, जिसके अध्ययन से पता चलता है कि उसमें हिन्दी के कोश-ग्रंथों की संख्या सबसे अधिक थी। इसी आलेख के हवाले से यह तथ्य भी ज्ञात होता है कि 'भाषा' पत्रिका के सितंबर और दिसंबर 1967 के दो अंकों में भोलानाथ तिवारी ने 'हिंदी कोशों की परंपरा' का सटिप्पण लेखा-जोखा प्रस्तुत किया था। उनकी इस सूची में 363 कोश थे,

[155] "यदि काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की कृपा से हिन्दी शब्द-सागर और उसका संक्षिप्त संस्करण न निकल गया होता, तो सम्भवतः आज हिन्दी का कोश-क्षेत्र बहुत-कुछ सूना ही दिखाई देता।" – रामचन्द्र वर्मा, *कोश-कला*, वही, नम्र निवेदन, पृष्ठ - 2

जिनमें कुछ ऐसे प्राचीन कोश हस्तलिखित रूप में भी मिलते हैं, जो प्रकाशित नहीं हैं।[156] बहरहाल, उक्त संदर्भों में दी गई बातों से मुख्य आशय यह है कि हिन्दी में हुए कोश-कार्यों का आरंभिक परिचय अकादमिक रूप से होता आया है। अतः इसी परम्परा के आलोक में यहाँ स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के कुछ हिन्दी कोश-कार्यों का परिचयात्मक विवेचन करने का एक प्रयास किया जाएगा।

भारत में कोश-रचना की परम्परा के इस स्वातंत्र्योत्तर काल में हिन्दी कोश-निर्माण के जो कुछ महत्त्वपूर्ण रचनात्मक प्रयास सम्पन्न हुए हैं वे इस प्रकार हैं – हरिशंकर शर्मा का अभिनव हिन्दी कोश (1947 ई०), नवल जी का नालन्दा विशाल शब्दसागर (1948 ई०), रामचन्द्र वर्मा का प्रामाणिक हिन्दी कोश (1949 ई०), लालधर त्रिपाठी का प्रचारक हिन्दी कोश (1950 ई०), रामचन्द्र पाठक का भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोश (1950 ई०), श्यामसुन्दरलाल दीक्षित का नारायण शब्दसागर (1950 ई०), ब्रजकिशोर मिश्र का राष्ट्रभाषा कोश (1951 ई०), विश्वेश्वर नारायण श्रीवास्तव व देवी दयाल चतुर्वेदी का हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश (1952 ई०), कालिका प्रसाद श्रीवास्तव व अन्य का बृहत् हिन्दी कोश (1952 ई०), राहुल सांकृत्यायन का संक्षिप्त राष्ट्रभाषा कोश (1952 ई०), कृष्णमोहन गुप्त का संक्षिप्त हिन्दी प्रामाणिक कोश (1955 ई०), दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का भारतीय हिन्दी कोश (1956 ई०), पुरुषोत्तम नारायण अग्रवाल का नालन्दा अद्यतन कोश (1957 ई०), बलराम सिंह का हिन्दी शब्दकोश (1957 ई०), आदित्येश्वर कौशिक का अशोक हिन्दी कोश (1958 ई०), रामचन्द्र वर्मा व अन्य का मानक हिन्दी कोश (1962 ई०), करुणापति त्रिपाठी का लघु हिन्दी शब्दसागर (1964 ई०) इत्यादि।

उपरोक्त कोश-कार्यों के संदर्भ में उल्लेख करते हुए यहाँ हम देखें तो ज्ञानमण्डल से प्रकाशित कालिकाप्रसाद श्रीवास्तव, राजवल्लभ सहाय और मुकुंदीलाल श्रीवास्तव द्वारा संपादित बृहत् हिन्दी कोश (1952 ई०) कुछ दृष्टियों से थोड़ी-बहुत नवीनता लेकर सामने आता है। जिसे हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक उपयोगी कोश कहा जा सकता है क्योंकि इसमें हिन्दी के शब्दों के साथ-साथ संस्कृत, फ़ारसी और अंग्रेजी आदि के भी कई प्रचलित

[156] हरदेव बाहरी, *हिंदी कोश-कार्य*, देवेन्द्रदत्त नौटियाल (सं०), *भाषा (त्रैमासिक)*, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार, विश्व हिंदी सम्मेलन अंक, प्रथम ई-संस्करण : 2019 ई०, भूमिका, पृष्ठ - 156

और बहुप्रयुक्त शब्दों का उदार संग्रह किया गया है। किन्तु यह कोश भी संस्कृत कोशों पर आधारित रहा है जिसमें संस्कृत की सहायता से हजारों शब्द मूल और यौगिक रूप में बढ़ाए गए हैं, जिनमें से कई शब्द ऐसे भी हैं जो हिन्दी में अप्रयुक्त हैं। इस कोश की नवीनता है संस्कृत कोशों के अनुकरण पर मूल शब्द के अंतर्गत उससे बने अनेक नए शब्द रूपों और यौगिक पदों का समावेश किया जाना। जैसे कि वचन शब्द के अंतर्गत वाचन, इतिहास के अंतर्गत ऐतिहासिक, व्याकरण के अंतर्गत वैयाकरण, सर्व के अंतर्गत सार्वदेशिक और सार्वभौमिक आदि शब्द रख दिए गए हैं; जिससे कोश में निर्धारित शब्द-क्रम-स्थापना की पूर्वापर अस्तव्यस्तता उत्पन्न होती है और कोश देखने में समस्या आ जाती है। अतः सर्वमान्य निश्चय और स्वीकार किए बिना हिन्दी कोशों में उक्त पद्धति का अपनाया जाना कुछ कठिन जान पड़ता है। फिर भी ज्ञानमंडल के इस कोश में यह प्रयास, जहाँ तक ज्ञात है, मौलिक और नवीन ही कहा जाएगा। वहीं इससे पूर्व नवल किशोर जी का नालन्दा विशाल शब्दसागर वस्तुतः हिन्दी शब्दसागर को पूर्णतः लेकर और मनमाने ढंग से उसमें शामिल शब्दों के अंगों, अंशों को घटा-बढ़ा कर तथा कुछ अनावश्यक नए शब्दों को जोड़कर कोश का ढाँचा खड़ा किया गया है। अतः शब्दसंख्या की दिखावटी वृद्धि के अतिरिक्त इस एक जिल्द के 'विशाल' कोश में ऐसी कोई भी विशेष बात नहीं है, जो कोश-रचना के स्तर को ऊपर उठाए। भले ऐसे किए गए अव्यवस्थित प्रयासों से 'हिन्दी शब्दसागर' द्वारा निर्धारित और मूल्यगत कोश-रचना कार्य का स्तर कुछ हद तक नीचे खिसक आया है। इसके अनंतर रामचन्द्र वर्मा का प्रामाणिक हिन्दी कोश (सन् 1949 ई०) और पाँच खण्डों में तैयार मानक हिन्दी कोश (सन् 1962 ई०) उनके 'हिन्दी शब्दसागर' के कार्यानुभवों का ही साधनातुल्य परिणाम है; जिसके विषय में यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि वास्तव में कोश-रचना का यह कार्य व्यावहारिक रूप में सीखने और उसे अमल करने की सतत-प्रक्रिया से जुड़ा है; जिसके श्रमसाध्य परिणाम के लिए रामचन्द्र वर्मा आजीवन इस क्षेत्र में कार्यरत रहते हुए कोशविद्या के कई सिद्धांतों की व्यावहारिक मीमांसा दशकों तक करते रहे।

उपरोक्त उल्लिखित जिन अन्य कोशों का यहाँ उल्लेख नहीं किया जा रहा उनके विषय में सारांश यह है कि स्वातंत्र्योत्तर काल के आरंभ से पहले भी ऐसे कई कोश-ग्रन्थ उपलब्ध थे जो शब्द समृद्धि की दृष्टि से अपर्याप्त जान पड़ते थे और कुछ यही स्थिति इन

शेष कोशों की भी है। जो कोशकारिता की चली आ रही परिपाटी का मात्र अनुकरण करने के उद्देश्य से बनाए गए हैं। अतः इन कोशों के विषय में अधिक क्या कहा जाए। कुछ सोच कर इतना और कहना पर्याप्त होगा कि "इनके संपादक कोशकला से अनभिज्ञ हैं और हिन्दी भाषा की प्रकृति को भी पकड़ नहीं पाए। ये सब कोश दूसरे कोशों से बने हैं और इनका उद्देश्य मात्र व्यावसायिक है।"[157] वे कोश जो दूसरे कोशों की सहायता से बने हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य मात्र व्यावसायिक रहा है, वे अपने उद्देश्य में कुछ हद तक सफल तो कहे जा सकते हैं; और उनसे हिन्दी कोशों की संख्या भी बढ़ी है किन्तु उन कोशों का कोश अध्ययन क्षेत्र में कोई विशेष स्थान नहीं है यानी हिन्दी कोश-रचना के विकास में उनका योगदान ठीक-ठीक क्या है यह बतलाया नहीं जा सकता। किन्तु यहाँ कहना न होगा कि किसी भी कोश में दोष या सीमाएँ कोशकार के कोश-रचना संबंधी आधारों और उसके शब्दबोध पर ही अधिक निर्भर करता है जो कोशकार की सीमाएँ कहला सकती हैं; अतः उन्हें कमियाँ कहना उचित न होगा। ऐसे में इस तरह के हुए अधिकांश कोश-कार्य हिन्दी कोश-रचना के क्षेत्र में होने वाले प्रयासों की महत्ता को ही रेखांकित करते हैं।

यहाँ प्रस्तुत किए गए अधिकांश विवेचन में उन्हीं कोशों का अध्ययन किया गया है जिसमें मुख्य या उपयुक्त आधार शब्द हिन्दी का है, भले ही उसका अर्थ या व्यवहार हिन्दी अथवा किसी अन्य भाषा में दिया गया हो। उदाहरण स्वरूप यहाँ हिन्दी-अंग्रेजी कोशों की बात तो है किन्तु अंग्रेजी-हिन्दी कोशों को शामिल नहीं किया गया क्योंकि इस प्रकार के कोश अंग्रेजी के माने जाएँगे। कुछ मत इस प्रयास से भिन्न भी हो सकते हैं किन्तु यहाँ हिन्दी कोश अध्ययन की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए यही प्रयास उचित जान पड़ता है। बहरहाल, उपरोक्त उल्लिखित कोशों के अध्ययन और विवेचन से समग्रतः कोशग्रन्थों का ऐतिहासिक महत्त्व तो रेखांकित होता ही है, जिसके साथ में अब तत्कालीन भाषा-साहित्य के अध्ययन प्रयोजन की दृष्टि से भी इन उक्त कोशों की बहुमूल्य उपादेयता स्वीकारी जा सकती है; जिनसे हिन्दी की शब्द-सम्पत्ति और भाषा-साहित्य की अभिवृद्धि आवश्यक संभावनाओं से भरी हुई जान पड़ती है। कहना न होगा कि इस प्रकार आवश्यक रूप से हिन्दी कोश-रचना की आधुनिक परम्परा का महत्त्व भी यहाँ प्रतिपादित होता है।

---

[157] हरदेव बाहरी, *हिन्दी कोश-कार्य*, त्रिभुवननाथ शुक्ल (सं०) *कोश निर्माण : प्रविधि एवं प्रयोग*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण आवृत्ति - 2016 ई०, पृष्ठ - 124

आधुनिक काल में विविध विषयी और भाषायी कोशों की महत्ता अब और अधिक बढ़ गई है। ऐसे में रामचन्द्र वर्मा का मत भी ध्यान में रखना आवश्यक हो जाता है; जब वे कहते हैं कि कोश एक कला है जिसमें शब्दकोशों के रचना सिद्धांतों का विवेचन होता है। प्राचीनकाल में शब्दार्थ आदि देखने की प्रक्रिया अनुक्रमणिकाओं द्वारा सरलीकृत की गई थी किन्तु आधुनिक कोश विज्ञान एवं कोश-रचना की परम्परा इससे भिन्न है। यहाँ कम समय में भाषा के सटीक विश्लेषण हेतु कोशों में वर्णानुक्रम पद्धति अधिक सफल हो सकती है; यह पद्धति श्लोकों या छंदबद्ध पंक्तियों की अपेक्षा अधिक सटीक व सरल मानी जाती है। नवनिर्मित कोशों में कोशकार को ध्यान रखना चाहिए कि न केवल भाषा के सिद्धहस्त अपितु भाषा सीखने वाले लोग भी कोशों का प्रयोग करते हैं। अतः इस रूप में आधुनिक कोशों को प्राचीन या पूर्ववर्ती कोशों की परम्परा में कोश की सहायता से कोश निर्माण या कैंची-लेई कोश बनाने व बनने से बचना चाहिए। यहाँ इन उपरोक्त बातों का निष्कर्ष यह निकलता है कि हिन्दी भाषा में कोशों का सूत्रपात चाहे पूर्व में जिस रूप में हुआ हो, आज के दौर में उसके वैश्विक ज्ञान परम्परा के मूलभूत पूँजी निर्माण और साझा मानवीय प्रयासों को देखते हुए, दुनिया भर से नए रूपों में हिन्दी भाषा में कोश-निर्माण परम्परा की नितांत आवश्यकता बनी हुई है। कोशों के माध्यम से परम्परागत शब्दों का परिचय तो मिलता ही है, आधुनिक आवश्यकताओं और भाषा विकास की ज़रूरतों के हिसाब से नई शब्द-सम्पदा का विवेचन भी इसमें शामिल रहता है; जो भाषाओं को साहित्यिक भाषा के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान और आधुनिक तकनीक की भाषा बनाने में मददगार हो जाती है।

हिन्दी में विश्वकोश, ज्ञानकोश और थिसॉरस अर्थात् समांतर कोश

वर्तमान संदर्भों में आधुनिक कोशविद्या को अत्यंत व्यापक परिवेश में विकसित माना जाता है। सामान्य रूप में शब्दकोश के अतिरिक्त विश्वकोश और ज्ञानकोश की भी चर्चा होती है, जिससे कोश का स्वरूप बहुमुखी प्रौढ़ता की ओर बढ़ता हुआ लक्षित हो जाता है। आज कोशकारिता का कार्यक्षेत्र भाषाविज्ञान, व्याकरण, शब्द प्रयोग एवं व्युत्पत्ति, साहित्योपांगों, ज्ञानानुशासनों के ऐतिहासिक विकास, मानविकी, वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी, पारिभाषिक शब्दावली जैसे विविध विषयों के बौद्धिक शब्दार्थ संकलनों का हिस्सा बन गया है। इधर हिन्दी में विविध साहित्यिक विधाओं के अन्तर्गत भी अनेक प्रकार के योग्य कोश-ग्रन्थ

अस्तित्व में आने लगे हैं और यह प्रयास आगे भी निरंतर जारी है। वहीं इसी अवधि में विभिन्न विषयों की पारिभाषिक शब्दावलियों पर भी काम हुआ है जो अनुवाद आदि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कहे जा सकते हैं।

आज हिन्दी में हुए कुछ कोशकार्यों के लिए विश्वकोश और ज्ञानकोश शब्द भी प्रयुक्त होने लगे हैं। यद्यपि इसके अतिरिक्त ज्ञानदीपिका, विश्वदर्शन, ज्ञानसरोवर, ज्ञानमण्डल जैसी संज्ञाओं का प्रयोग पहले से ज्ञानकोश आदि के अर्थ संदर्भ में होता आया है। किन्तु अंग्रेज़ी के इन्साइक्लोपिडिया (Encyclopedia) के अनुवाद रूप में 'विश्वकोश' शब्द ही अधिक प्रचलित माना गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि बृहत् परिवेश के व्यापक ज्ञान सूत्रों का पारिभाषिक और विशिष्ट शब्दों के माध्यम से ज्ञानार्थ देने वाले ग्रन्थ का नाम विश्वकोश निर्धारित हुआ, जैसे Encyclopedia Britannica और Encyclopedia Americana; वहीं अपेक्षाकृत इससे लघुतर कोशों को ज्ञानकोश नाम दिया गया है जो दरअसल चरितकोश, कथाकोश, जीवनकोश, पौराणिक कोश इत्यादि के रूपों में जाना जाता है। इस तरह ज्ञानकोश से वास्तविक अभिप्राय किसी विषय कोश से है जिसमें ज्ञान की विविध विधाओं को लेकर कोश-रचना की जाती है।[158] अतः हिन्दी में इस श्रेणी के कुछ उल्लेखनीय कोशों के उदाहरण आगे दिए जा रहे हैं, जैसे कि श्रीकृष्ण शुक्ल विशारद का हिन्दी पर्यायवाची कोश (1935 ई०), राहुल सांकृत्यायन व अन्य द्वारा तैयार किया गया शासन शब्दकोश (1948 ई०), धीरेन्द्र वर्मा के सम्पादन-निर्देशन में तैयार हुआ हिन्दी कथा कोश (1954 ई०), भोलानाथ तिवारी का वृहद् पर्यायवाची कोश (1954 ई०), हरदेव बाहरी का प्रसाद साहित्य कोश (1957 ई०), धीरेन्द्र वर्मा तथा अन्य द्वारा संपादित व दो भागों में प्रकाशित हिन्दी साहित्य कोश (जिसका पहला भाग पारिभाषिक शब्दावली तथा दूसरा भाग नामवाची शब्दावली नाम से क्रमशः सन् 1958 ई० और 1963 ई० में आया), निर्मला सक्सेना का सूरसागर शब्दावली (1962 ई०), रामचन्द्र वर्मा का शब्दार्थक ज्ञान कोश (1967 ई०), दशरथ ओझा का हिन्दी नाटक कोश (1975 ई०) इत्यादि।

जबकि विश्वकोश मानव सभ्यता के बौद्धिक विकास के प्रतीक कहे जाते हैं जिनसे किसी देश की भाषा, साहित्य, समाज और संस्कृति के उत्कर्ष का बोध होता है। इस तरह

[158] नाथू राम कालभोर, *हिन्दी कोश साहित्य : समीक्षात्मक अध्ययन*, वही, अध्याय ५, पृष्ठ - 194

शब्दों को अधिक-से-अधिक सर्वबोध्य और विवरणात्मक बनाने के प्रयास में विश्व-कोशों का भी वर्तमान में निर्माण होने लगा है। हिन्दी में श्री नगेन्द्रनाथ बसु ने पहले पहल कुछ हिन्दी विद्वानों की सहायता से एक 'हिन्दी विश्वकोश' का सम्पादन सन् 1915-1931 ई० तक किया था। यह विश्वकोश 25 खण्डों में है। इस विश्वकोश के अनंतर हिन्दी में एक कोश 'हिन्दी विश्व भारती' नाम से कृष्णवल्लभ द्विवेदी के सम्पादन में लखनऊ, विश्वभारती कार्यालय से प्रथम संस्करण के साथ सन् 1939 ई० प्रकाशित हुआ था; जिसके बाद के संस्करण सन् 1958-1960 ई० तक कुल 10 खण्डों में प्रकाशित हुए। वहीं कुछ आगे चल कर नागरीप्रचारिणी सभा से धीरेन्द्र वर्मा आदि के सम्पादन में एक हिन्दी विश्वकोश सन् 1960-1970 ई० तक 12 खण्डों में प्रकाशित हुआ। बहरहाल, उल्लेखनीय है कि इन सब विश्वकोशों का मुख्य लक्ष्य केवल शब्दार्थ देना न होकर वस्तुतः हिन्दी में बहुविध विषयक प्रामाणिक ज्ञान प्रस्तुत करना था।

अरविन्द कुमार द्वारा अरविन्द लैक्सिकन बनाए जाने में लगभग दस लाख से ज़्यादा इंग्लिश-हिन्दी अभिव्यक्तियों वाला संसार का विशालतम डाटाबेस एक ऐसा कार्य है जो अपने आप में थिसारस भी है, शब्दकोश भी और लघु ज्ञानकोश भी। सन् 1996 ई० में अरविन्द कुमार और कुसुम कुमार द्वारा हिन्दी संसार को मिला समांतर कोश भारतीय भाषाओं में सब से पहला आधुनिक हिन्दी थिसारस है। यह भारत में कोशकारिता की परम्परा के क्षेत्र को आगे बढ़ाने वाला कार्य है। वहीं इन्हीं के द्वारा सन् 2007 ई० में तैयार द पेंगुइन इंग्लिश-हिन्दी/हिन्दी इंग्लिश थिसारस ऐंड डिक्शनरी संसार का विशालतम द्विभाषी थिसारस तमाम विषयों के पर्यायवाची और विपर्यायवाची शब्दों का महाभंडार माना जाता है। आगे सन् 2013 ई० में अरविन्द कुमार के समांतर कोश का परिवर्धित और परिष्कृत संस्करण बृहत् समांतर कोश के रूप में सामने आया।[159] जिसे हिन्दी भाषा के समांतर कोश की परम्परा में एक ऐतिहासिक पहल कहना अधिक उचित ठहरेगा। बहरहाल, अरविन्द कुमार के दो और उल्लेखनीय कोश भी हैं, जिनमें से एक है अरविन्द सहज समांतर कोश जो किसी भी भारतीय भाषा में कोशक्रम से आयोजित एकमात्र थिसारस है और दूसरा शब्देश्वरी जो भारतीय मिथक पात्रों का संसार की किसी भी भाषा में तैयार एकमात्र संकलन

[159] https://bharatdarshan.co.nz/article-details/599/arvind-lexixon.html : Accessed on 14/06/2021

है। अतः कहना न होगा कि इस प्रकार के कोश-कार्यों से आधुनिक कोश-रचना के क्षेत्र में हिन्दी की भागीदारी और अधिक प्रबल हुई है।

यहाँ यह समझना भी आवश्यक हो जाता है कि आख़िर थिसॉरस है क्या ? हिन्दी में थिसारस का पर्याय शब्द है समांतर कोश। थिसारस यूनानी शब्द थैजोरस का हिन्दीकरण है। वास्तव में थिसारस या समांतर कोश और शब्दकोश एक दूसरे के बिलकुल विपरीत होते हैं। किसी शब्द का अर्थ जानने के लिए हम शब्दकोश का सहारा लेते हैं; वहीं जब कोई बात कहने के लिए हमें किसी शब्द की तलाश होती है तो लाखों शब्दों में से प्रयोग हेतु उपयुक्त शब्द हमें थिसारस से आसानी से मिल पाता है जो शब्दकोशों की तुलना में यह कार्य सहजता से कर पाने में अधिक सहायक सिद्ध होता है।[160] अर्थात् समांतर कोश की सहायता से किसी भी ज्ञात शब्द के सहारे उसके अन्य किसी अज्ञात या विस्मृत प्रयोग रूप वाले शब्द तक आसानी से पहुँच सकते हैं। आधुनिक काल में "कोश के संदर्भ में थिसॉरस शब्द का प्रथम प्रयोग करने और उसे प्रचारित करने का श्रेय डॉ॰ पीटर मार्क रॉजेट को जाता है।"[161] दरअसल रॉजेट के समय अंग्रेजी कोश विज्ञान में डिक्शनरी या ग्लॉसरी जैसे शब्द ही कोश के लिए प्रचलित थे और अपने कोशग्रन्थ की नवीनता को पहचानते हुए उन्होंने प्रथम बार उसके लिए 'थिसॉरस' शब्द का प्रयोग किया जो मूल लैटिन या ग्रीक 'थिसॉरस' से आया शब्द है, जिसका अर्थ ट्रेज़र या खज़ाना के लिए व्यवहार में लाया जाता था।[162] वास्तव में रॉजेट एक ऐसे कोश का निर्माण करना चाहते थे जिसमें शब्द या शब्द समूहों का संकलन कुछ इस प्रकार से हो कि विषय या विचारानुसार जब भी किसी शब्द की आवश्यकता हो उसे तुरंत ढूँढा जा सके। दरअसल इस तरह की कोशगत आवश्यकताओं को देखते हुए ही 'थिसॉरस' की परिकल्पना अस्तित्व में आई होगी।

कहना न होगा कि कोश और थिसॉरस एक दूसरे के पूरक होते हुए भी एक दूसरे के विपरीत माने जाते हैं। इसका कारण यह है कि जहाँ तक किसी आधुनिक कोश में शब्द वर्णानुक्रम से होते हैं वहीं थिसॉरस में एक समान अर्थ, भाव, विचार वाले शब्दों को एक

---

[160] http://www.nirantar.org/1006-nidhi-samantar-kosh : Accessed on 24/06/2021

[161] डॉ॰ श्रुति, *अमरकोश, नाममाला कोश और थिसॉरस*, शशि भारद्वाज (सं॰), *भाषा (द्वैमासिक)*, वही, पृष्ठ - 78

[162] वही, पृष्ठ - 78

स्थान पर संयोजित किया जाता है। जैसे कि अरविन्द कुमार का समांतर कोश दो भागों में है; जिसका एक भाग अनुक्रम खंड और दूसरा संदर्भ खंड है। अनुक्रम खंड में अकारादि क्रम में उन सभी शब्दों की सूची दी गई है जो इस समांतर कोश में शामिल हैं और जिसके सहारे संदर्भ खंड में उपयुक्त शब्दों तक पहुँचा जा सकता है। उदाहरण के लिए मान लें कि हमें 'निकाह' शब्द की तलाश है और हमें 'विवाह' शब्द याद है। ऐसे में अनुक्रम खंड में विवाह शब्द देख कर उसके क्रम संख्या के आधार पर संदर्भ खंड में 'निकाह' शब्द से जुड़े अन्य कई समांतर अर्थ वाले प्रयुक्त महत्त्वपूर्ण शब्दों को भी बड़े स्वाभाविक ढंग से देख सकते हैं। अतः किसी भी एक शब्द की तलाश में प्राप्त हुए अन्य शब्दों से रूबरू कराने वाले थिसॉरस अर्थात् समांतर कोश को रीतिरिवाजों, प्रथाओं, परम्पराओं, विचारधाराओं, दर्शनों, सिद्धांतों, मिथकों, मान्यताओं, संस्कृतियों आदि का दर्पण कहा जा सकता है।

हिन्दी में ऑनलाइन कोश और कम्प्यूटरीकृत कोशकारिता

आज इंटरनेट में कई भाषाओं के अनेकों ऑनलाइन भाषायी शब्दकोश उपलब्ध हैं, किन्तु इस मामले में भी सभी भाषाओं की स्थिति एक जैसी नहीं कही जा सकती। हिन्दी जैसी भाषा में तो ऑनलाइन शब्दकोश अभी आरंभिक अवस्था में ही हैं। ऑनलाइन कोशों को कंप्यूटर-आश्रित अनुवाद (Computer-aided translation) के उपकरणों में गिना जाता है। जिन्हें हम संक्षेप में कैट (CAT) उपकरण भी कह सकते हैं। उल्लेखनीय है कि ऑनलाइन शब्दकोशों की सबसे बड़ी वेबसाइट http://www.yourdictionary.com जिसमें वस्तुतः दुनिया भर की भाषाओं के सैकड़ों शब्दकोश उपलब्ध हैं। इसी वेबसाइट के अन्तर्गत डिजिटल कोशकारिता के आधार पर हिन्दी के भी कुछ-एक ऑनलाइन शब्दकोश इस लिंक http://www.yourdictionary.com/languages/indoiran.html#hindi में देखे जा सकते हैं।[163] किन्तु यहाँ दिया गया हिन्दी कोश एक शुरुआती प्रायोगिक स्तर का प्रयास मात्र ही प्रतीत होता है। आगे इस तरह के कोश-कार्यों में नवीन अनुसंधान और व्यावहारिक प्रयास होने बाक़ी हैं, जिस दृष्टि से हिन्दी में ऑनलाइन कोश निर्माण की अपार संभावनाएँ बची हुई हैं।

---

[163] हेमचन्द्र पाँडे, *हिन्दी के कुछ ऑनलाइन द्विभाषी शब्दकोश*, शशि भारद्वाज (सं०), *भाषा (द्वैमासिक)*, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, भारत सरकार, जुलाई-अगस्त : 2009 ई०, वर्ष 48, अंक - 6, पृष्ठ - 22

ऐसे वर्तमान समय में हिन्दी के और भी अन्य कई द्विभाषी ऑनलाइन कोश इंटरनेट पर आ गए हैं; जिनमें से कुछ-एक का आगे उल्लेख किया जा रहा है –

1. http://www.shabdkosh.com : इस ऑनलाइन कोश का आरंभ सन् 2003 ई॰ में हुआ है। यह ऑनलाइन कोश हिन्दी-अंग्रेजी तथा अंग्रेजी-हिन्दी दोनों रूपों में समान रूप से शब्दों के अर्थ जानने में सहायता प्रदान करता है, किन्तु यह भी ऑनलाइन कोश-निर्माण की अपनी आरंभिक अवस्था में ही है।

2. http://dict.hinkhoj.com : यह हिन्दी-अंग्रेजी का एक द्विभाषी कोश है, किन्तु इस में शब्दों के प्रयोग के लगभग सभी उदाहरण अंग्रेजी के ही दिए हुए हैं, जिससे यह हिन्दी शब्दकोश की आवश्यकता पूर्ति के रूप में अधिक सहायक नहीं जान पड़ता।

3. http://www.shabdkosh.com/shabdanjali : यह अंग्रेजी हिन्दी ऑनलाइन कोश है जिसे हैदराबाद स्थित भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान के भाषा प्रौद्योगिकी अनुसंधान केन्द्र द्वारा बनाया गया है। यह कोश डाउनलोड किया जा सकता है किन्तु इसमें शब्दों के अर्थ ढूँढने में किसी सरल विधि का अभाव है, जिससे यह अपनी प्रामाणिकता से कहीं दूर ही मालूम पड़ता है।

4. http://www.google.com/translatedict : गूगल (Google) वेबसाइट में उपलब्ध हिन्दी में ऑनलाइन अनुवाद की सुविधा के साथ अंग्रेजी-हिन्दी और हिन्दी-अंग्रेजी के शब्दकोश का उल्लेख यहाँ आवश्यक है जो गुणवत्ता की दृष्टि से ऊपर उल्लिखित कोशों की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित तो माना जा सकता है किन्तु इसमें भी शब्दों का अनुवाद मात्र दिया जाना इसे व्यावहारिकता के धरातल पर अधिक उपयोगी नहीं ठहराता।

तो यह स्थिति है हिन्दी में ऑनलाइन शब्दकोशों की, जो शब्दानुवाद की पद्धति पर विकसित कोश-रचना के कारण अधिक महत्त्वपूर्ण तो नहीं जान पड़ते किन्तु किसी भाषा की आधुनिक पद्धति के विकास की दृष्टि से कुछ हद तक इन्हें संतोषजनक प्रयास अवश्य कहा जा सकता है। अतः प्रयोग के स्तर पर ही क्यों न हों, ऐसे ऑनलाइन हिन्दी शब्दकोशों का उपलब्ध हो जाना प्रशंसनीय ही कहा जाएगा।

आज समाज में कम्प्यूटर तकनीक का प्रचलन बढ़ रहा है उस दृष्टि से कम्प्यूटरीकृत कोश की माँग को आज के आधुनिक युग में आवश्यक ही कहा जाएगा क्योंकि यह कार्य

केवल उपयोग की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि किसी भाषा के शब्दों को बचाए रखने के लिए भी उतना ही आवश्यक है। यह कोशों के आकार-प्रकार की दृष्टि से भी बोझिल नहीं लगता जिससे आप इसमें अधिक से अधिक शब्दों को रख सकते हैं। किसी कम्प्यूटरीकृत कोश में हम शब्द का उच्चारण, शब्द उच्चारण ध्वनि, शब्द का वाक्य में उपयोग, शब्द संबंधित चित्र आदि भी सहजता से प्रस्तुत कर सकते हैं।[164] बहरहाल, शब्दकोशों के बदलते आयामों में कुछ आधुनिक पद्धतियों जैसे कम्प्यूटरीकृत कोशकारिता आदि को भले अपनाया जा रहा हो किन्तु वर्तमान में कोशों के कुछ सैद्धांतिक पक्षों को पारम्परिक रूप से अपनाया जाना ही अधिक उचित कहा जाएगा। ऐसे यहाँ यह रेखांकित करना और अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि हिन्दी में कम्प्यूटरीकृत कोश-कार्यों की आधुनिक प्रगति की दृष्टि से अभी इस क्षेत्र में पर्याप्त संभावनाएँ बाक़ी हैं।

हिन्दी में कोश-रचना की अद्यतन परिस्थितियाँ और उसके कुछ पहलू

हिन्दी के शुरुआती कोश-ग्रन्थों पर संस्कृत के अतिरिक्त ब्रजभाषा समेत और भी अन्य कई बोलियों का प्रभाव है। जो अब अंग्रेजी का साथ लेते हुए; हिन्दी के नवनिर्मित आधुनिक कोशों पर आज भी अपना प्रभाव बनाए हुए है। वहीं हिन्दी कोशों का एक दूसरा पहलू बहुत हद तक उनका एक संस्करणीय होना है। जबकि अंग्रेजी जैसी भाषा के कई कोशों का तो साल दो-एक साल में उनके प्रकाशकों द्वारा तैयार कराया गया संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण आता रहता है। ऐसे प्रकाशकों द्वारा इन कोशों के बारे में हर नए संस्करण से पहले यह सूचना दी जाती है कि अमुक-अमुक भाषाओं के कितने नए शब्द अंग्रेजी भाषा में शामिल हुए तथा इन कोशों में उनमें से कितने नए शब्द आए या कितने पुराने शब्द प्रचलन के बाहर हो गए हैं।

बढ़ती भारतीय अर्थव्यवस्था के कारण वैश्विक धरातल पर हिन्दी का महत्त्व व प्रचार-प्रसार भी बाज़ार के दृष्टिकोण से बढ़ा है। विदेशी इसलिए भी आज हिन्दी में अधिक रुचि ले रहे हैं क्योंकि हिन्दी उनके लिए इस बाज़ार में प्रवेश के द्वार खोलती है। ऐसी परिस्थितियों में हिन्दी का अध्ययन करने वाले विदेशी अध्येताओं के लिए अच्छे

[164] कांबले प्रकाश अभिमन्यु, *आधुनिक कोशविज्ञान और नए सैद्धांतिक पहलू*, मीरा सरीन (सं०), *गवेषणा*, वही, पृष्ठ - 17-18

शब्दकोशों की बहुत अधिक आवश्यकता आन पड़ी है।[165] अतः इस क्षेत्र में सन् 2013 ई॰ में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा से राम प्रकाश सक्सेना के संपादन नेतृत्व में प्रकाशित 'वर्धा हिन्दी शब्दकोश' की बुनियादी अवधारणा के पीछे यही सोच काम कर रही थी, जिस कारण हमारे समय की समावेशी हिन्दी के अधिकतम प्रचलित शब्द इस कोश में स्थान पा सके हैं।[166] बहरहाल, कहना न होगा कि वस्तुतः हिन्दी में कोश-रचना की अद्यतन परिस्थितियाँ और उसके कुछ ऐसे ही उपरोक्त पहलू विचारणीय कहे जा सकते हैं।

वहीं आज "हिन्दी कोश निर्माण के सन्दर्भ में यह चिंता व्यापक और सटीक है कि हाल के अधिकांश शब्दकोशों में न तो भाषा प्रयुक्ति के नए क्षेत्रों का सम्पूर्ण समावेश है, न देशी-विदेशी नवागत शब्दों का समाहार और न ही साहित्य या जनजीवन से सीधा सम्पर्क बनाने का प्रयत्न है।"[167] बहरहाल, 20वीं शताब्दी के आख़िरी में आई सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति ने कोशविज्ञान के क्षेत्र में नई आशाएँ जगाई हैं। हमें स्वीकारना होगा कि ये कारक ही वस्तुतः कोशकारिता के क्षेत्र में हिन्दी जैसी भाषाओं को विश्व स्तर की भाषा बनने के लिए उत्कृष्ट अवसर प्रदान करते हैं। तो ज्ञात हो कि ऐसे में आज हिन्दी अथवा अन्य किसी भी भारतीय भाषा को संसार की सभी भाषाओं से अपना सीधा संबंध बनाना चाहिए ताकि उसे दूसरी भाषा के कोशों पर निर्भर न रहना पड़े। यही कारण है कि आज कोशकारिता के क्षेत्र में उत्पन्न अद्यतन परिस्थितियों के फलस्वरूप हिन्दी का दायित्व और अधिक बढ़ गया है।

बहरहाल, कहना न होगा कि जैसे किसी पुस्तक को पढ़ते हुए अकसर उसमें कोई न कोई नई बात आ ही जाती है वैसे ही कोश-ग्रन्थों का निरंतर किए जा रहे अध्ययन परायण से हर बार कोई न कोई नई दृष्टि या नई युक्ति से जुड़ा शब्द मिल ही जाता है। अतः इन अर्थों में यदि कोश को उपजीव्य ग्रन्थों की श्रेणी में रख दें तो यह नहीं कहा जा सकता कि कोश विषयक कोई भी अध्ययन अंतिम होगा।

****

[165] http://www.hindisamay.com/content/3159/1/वर्धा-हिंदी-शब्दकोश.cspx : Accessed on 18/07/2021

[166] http://www.hindisamay.com/content/3159/1/वर्धा-हिंदी-शब्दकोश.cspx : Accessed on 18/07/2021

[167] https://rapidiq.files.wordpress.com/2008/10/hindi-kosh-nirman.pdf : Accessed on 20/07/2021

तीसरा अध्याय

रामचन्द्र वर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

तीसरा अध्याय

रामचन्द्र वर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

तीसरे अध्याय की पीठिका

इस अध्याय के माध्यम से दरअसल रामचन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को संपूर्णता में जानने-समझने का विनम्र प्रयास किया जाएगा। रामचन्द्र वर्मा एक कोशकार के अतिरिक्त हिन्दी भाषा-व्याकरण के चिंतन, विविध विषयों के मौलिक लेखन, अनुवाद और सम्पादन, ऐतिहासिक एवं राजनीतिक अनुशीलन इत्यादि के विविध विषयक कार्य-पक्षों से भी जुड़े रहे हैं। अतः इन अर्थों में वे बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। ऐसे में यह और आवश्यक हो जाता है कि उनके व्यक्तित्व-पक्ष के साथ-साथ कृतित्व-पक्ष के विवेचन-विश्लेषण का भी यहाँ एक सार्थक प्रयास हो और इस अध्याय में वस्तुतः इसी प्रकार के अध्ययन की एक प्राथमिक कोशिश की गई है।

रामचन्द्र वर्मा का व्यक्तित्व

रामचन्द्र वर्मा का जन्म एक मध्यमवर्गीय परिवार में 8 जनवरी, 1889 ई० को काशी में हुआ था। नौ वर्ष की उम्र में इनके पिता का निधन हो गया। आर्थिक तंगी के कारण वर्माजी तब आठ दर्जे तक ही शिक्षा प्राप्त कर सके थे। उन दिनों शिक्षा का माध्यम उर्दू-फ़ारसी हुआ करती थी, दूसरी भाषा के रूप में हिन्दी छठे दर्जे से पढ़ाई जाती थी। इनकी स्कूली शिक्षा का आरंभ उस समय के हरिश्चंद्र मिडिल स्कूल में शुरू हुई थी। इनमें साहित्य और भाषा के प्रति विशेष अभिरुचि भारत जीवन प्रेस के सान्निध्य में जाग्रत तथा पल्लवित हुई। भारत जीवन प्रेस उन दिनों काशी की साहित्यिक गतिविधियों का मुख्य केन्द्र था।

अपने जीवन काल में रामचन्द्र वर्मा ने संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, फ़ारसी, बंगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी आदि कई भाषाएँ सीख ली थीं। अपने एक संस्मरण में बदरीनाथ कपूर अपने मामा रामचन्द्र वर्मा के आरम्भिक जीवन पर प्रकाश डालते हुए इस प्रकार

लिखते हैं कि – "शब्दब्रह्म के इस महान उपासक का जन्म काशी के लाहौरी टोले के समीप फुट्टा गणेश मुहल्ले में 8 जनवरी 1889 को हुआ था। उनके पिता श्री परमेश्वरीदास और दादा श्री गोविन्दराम 1857 के आस-पास पंजाब से आकर काशी में बस गए थे और रानीकुँआ पर एक दुकान किराए पर लेकर कपड़े का व्यवसाय करते थे। ये लोग खत्री चोपड़ा थे। वर्मा जी अभी नौ वर्ष के ही थे कि इनके पिता का और कुछ समय बाद दादा का भी निधन हो गया। कुछ दिनों बाद दुकान भी हाथ से निकल गई। असहाय माँ किसी तरह अपने बेटे और दो बेटियों का भरण-पोषण करती रही। गरीबी के कारण वर्माजी आठ दर्जे तक ही शिक्षा प्राप्त कर सके।"[168] अतः वर्मा जी की पाठशालीय शिक्षा साधारण ही थी, किन्तु अपने विद्याप्रेम के कारण उन्होंने विद्वानों के संसर्ग तथा स्वाध्याय के द्वारा कई भाषाओं और उनके साहित्य का अच्छा ख़ासा अध्ययन कर लिया था।

रामचन्द्र वर्मा की स्थायी देन हिन्दी भाषा और कोश के क्षेत्र में है। अपने जीवन का अधिकांश समय इन्होंने शब्दार्थनिर्णय और भाषापरिष्कार के कार्यों में बिताया था। इनका आरम्भिक जीवन पत्रकारिता का रहा। वे सन् 1907 ई॰ में नागपुर से निकलने वाले 'हिन्दी केसरी' के संपादक हुए। फिर बाकीपुर से निकलने वाले 'बिहार बन्धु' का योग्यतापूर्वक सम्पादन किया। बाद में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के संपादक-मंडल में रहे। जहाँ वे नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी से सम्पादित होनेवाले 'हिन्दी शब्दसागर' में सहायक संपादक नियुक्त हुए, जिसमें उन्होंने 1910 से 1929 ईस्वी तक कार्य किया। बाद में उन्हें यहीं 'संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर' के सम्पादन का भार भी सौंपा गया। इसके अनंतर वे स्वतंत्र रूप से भी भाषा और कोश के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य करते रहे।

वहीं, रामचन्द्र वर्मा के आरम्भिक दिनों के बारे में उनके भानजे ओमप्रकाश कपूर बतलाते हैं कि वर्माजी के पिता परमेश्वरीदास चोपड़ा उस समय के जिला गोजराँवाला के अकालगढ़ कस्बे से अपने बड़े भाई के साथ वाराणसी आए थे और यहीं रानीकुआँ पर बनारसी कपड़े का व्यापार करने लगे थे। दस वर्ष की अवस्था में ही वर्माजी का संबंध स्कूली शिक्षा से छूट गया। मैदागिन स्थित मौलवी साहब की पाठशाला में उर्दू और फ़ारसी

---

[168] बदरीनाथ कपूर, *शब्दब्रह्म के महान उपासक आचार्य रामचन्द्र वर्मा*, हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), *कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 1989 ई॰, पृष्ठ - 163

का अध्ययन समाप्त हो गया क्योंकि चार आना फीस जुटाना भी एक समस्या थी। वर्माजी उन दिनों लाहौरी टोला के मकान में रहते थे। उल्लेखनीय है कि वर्माजी का उर्दू और हिन्दी की पुस्तकें पढ़ने का आलम यह था कि प्रतिदिन चार-पाँच पुस्तकें आद्योपांत पढ़ लेते थे। तेरह वर्ष की अवस्था में पूज्य मामा जी को नीलकण्ठ स्थित भारत जीवन प्रेस में प्रूफरीडर का काम मिल गया। भारत जीवन प्रेस के मालिक भी खत्री थे परन्तु अपने नाम के साथ वर्मा उपनाम का प्रयोग करते थे। बस यहीं से रामचन्द्र वर्मा ने वर्मा उपनाम अपना लिया और अपनी पुस्तकों पर अपना नाम बाबू रामचन्द्र वर्मा मुद्रित कराने लगे।[169] ऐसे में यहाँ विचार कर सकते हैं कि क्या रामचन्द्र वर्मा पंजाबी थे ? इसका उत्तर जानने के लिए स्वयं वर्मा जी की ही प्रसिद्ध कृति 'कोश-कला' के 'अर्थ-विचार' प्रसंग का यह वाक्य देखिए – जो कबीर के एक पद में आए 'सुति मुकलाई अपनी माउ' के शब्द-विशेष पर विचार करते हुए रामचन्द्र वर्मा अपने आप आगे कह जाते हैं – "परन्तु एक पंजाबी होने के नाते मैं जानता हूँ कि 'मुकलावा' पंजाबी में द्विरागमन को कहते हैं।"[170] इससे यह ज्ञात होता है कि रामचन्द्र वर्मा न केवल पंजाबी जानते थे बल्कि वे पंजाबी मूल के होने के साथ उसकी संस्कृति से भी परिचित थे। वर्मा उपनाम उन्होंने एक लेखक 'भारत जीवन प्रेस' के मालिक रामकृष्ण वर्मा के नाम से अपनाया था; जिसका हम पहले भी ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। ज्ञात हो कि इनके नाम में आए 'वर्मा' शब्द की वर्तनी जहाँ-कहीं 'वर्म्मा' मिलती है उसका एक कारण यह है कि संस्कृत व्याकरण के नियम के अनुसार कुछ विशिष्ट वर्ण जब 'र्' वर्ण के रेफ के नीचे आते हैं, तब द्वित्व हो जाते हैं; जैसे – आर्य्य, कर्म्म, धर्म्म आदि[171] इसी तर्ज़ पर रामचन्द्र वर्मा के नाम में 'वर्मा' का 'वर्म्मा' मिलता है। किन्तु आज मानकीकरण के बाद हिन्दी में अब इस द्वित्व नियम का पालन नहीं होता। आधुनिक भाषाविज्ञान की मूल स्थापना है कि किसी भी भाषा को उसका अपना ही व्याकरण नियम अपनाना चाहिए। चूँकि हिन्दी को भी हिन्दी के व्याकरण और प्रयोग का मानकीकृत व्यवहार करना चाहिए इसलिए उक्त संदर्भ में यह तथ्य और अधिक प्रासंगिक हो जाता है।

---

[169] ओमप्रकाश कपूर, *पूज्य मामा जी*, हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), *कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग*, वही, पृष्ठ - 189

[170] रामचन्द्र वर्मा, *कोश-कला*, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण - 1952 ई०, अर्थ-विचार, पृष्ठ - 120

[171] वही, शब्द-क्रम, पृष्ठ - 62

आरम्भिक सनों में, जब रामचन्द्र वर्मा की अवस्था बारह-तेरह वर्ष की ही थी और वे उस समय हरिश्चन्द्र स्कूल के चौथे-पाँचवें दरजे में पढ़ते थे तो अपने सहपाठियों की भाषा संबंधी अशुद्धियों पर न केवल उन्हें टोकते थे बल्कि उन्हें सही प्रयोग भी बतलाते थे। यों इन बातों को वर्माजी ने अपने लड़कपन का खिलवाड़ भर माना है। किन्तु हम कह सकते है कि शुद्ध भाषा प्रयोगों को लेकर रामचन्द्र वर्मा आरम्भ से ही सचेत थे। यही कारण है कि 'भारत जीवन प्रेस' के स्वामी बाबू रामकृष्ण वर्मा तथा उनकी मित्र-मंडली के सान्निध्य में दी जाने वाली शुद्ध भाषा संबंधी युक्तियों को सुलझाते हुए रामचन्द्र वर्मा को धीरे-धीरे मानो भाषा शुद्ध करने की शिक्षा भी मिलने लगी थी। किन्तु यह भी वर्मा जी के लिए लड़कपन का खिलवाड़ ही था। इस बारे में रामचन्द्र वर्मा लिखते हैं कि "स्कूल में मेरी दूसरी भाषा उर्दू थी। हिन्दी मैं बिलकुल नहीं जानता था भारत-जीवन में ही मैंने पहले-पहल हिन्दी सीखी; और वहीं से मुझे हिन्दी का शौक शुरू हुआ। यह बात सन् 1903 की है।"[172] यानी वर्मा जी में जीवन के आरम्भिक वर्षों में ही भाषा ज्ञान का बीजारोपण हो चला था। ऐसे में रामचन्द्र वर्मा युवावस्था की दहलीज़ पर पहुँचते-पहुँचते आगे भाषा संबंधी जो योगदान देने वाले थे, उसका बहुत कुछ आभास उस समय के महानुभावों को होने लगा था।

यहाँ रामचन्द्र वर्मा के जीवन को आगे गति देने वाला एक विशेष प्रसंग उल्लेखनीय है। वर्माजी के एक सहपाठी श्रीकृष्ण वर्मा जो 'भारत जीवन प्रेस' के मालिक बाबू रामकृष्ण वर्मा के भतीजे थे, उन्हें अपने साथ 'भारत जीवन प्रेस' ले जाने लगे। बाबू रामकृष्ण वर्मा बाबू हरिश्चन्द्रजी के मित्रों में से थे और उच्चकोटि के लेखक तथा कवि भी थे। वे 'भारत जीवन' नामक साप्ताहिक का संपादन भी करते थे। उन दिनों काशी के साहित्यसेवियों का गढ़ यही भारत जीवन प्रेस था । अकसर यहाँ किशोरीदास गोस्वामी, राधाकृष्ण दास, जगन्नाथदास रत्नाकर, देवकीनन्दन खत्री, अम्बिकादत्त व्यास, कार्तिकप्रसाद खत्री आदि महानुभाव एकत्र हुआ करते थे।[173] जब वर्माजी का अपने सहपाठी के साथ यहाँ नियमित आना-जाना प्रारम्भ हुआ और उन्हें हिन्दी के इन महारथियों के दर्शन के साथ सान्निध्य

---

[172] रामचन्द्र वर्मा, *अच्छी हिन्दी*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पुनर्मुद्रण संस्करण - 2015 ई०, पहले संस्करण की भूमिका, पृष्ठ - 7

[173] बदरीनाथ कपूर, *शब्दब्रह्म के महान उपासक आचार्य रामचन्द्र वर्मा*, हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), *कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग*, वही, पृष्ठ - 163-164

मिलना शुरू हुआ तो यहीं वर्माजी ने अपने अध्ययन अभिरुचि में हुए परिष्कार के साथ धीरे-धीरे लिखने आदि का कार्य भी आरंभ किया। वे 'भारत जीवन' साप्ताहिक में लेख आदि भी लिखने लगे थे। इसी के साथ यहाँ से जुड़कर वे प्रूफ-रीडिंग करके कुछ धन भी कमा लेते थे। वर्मा जी प्रूफ आदि पढ़ते समय थोड़ा-बहुत संशोधन कर वाक्यों में कभी जान डाल देते थे और कभी उनमें कसावट ले आते थे। जिस कारण 'भारत जीवन प्रेस' के मालिक रामकृष्ण वर्मा उनके इन गुणों के बड़े ही प्रशंसक हो गए थे।

यहीं एक दिन एक ऐसा प्रसंग घटित हुआ जिसने विशेष रूप से रामचन्द्र वर्मा के प्रति 'भारत जीवन प्रेस' के महानुभावों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। रामचन्द्र वर्मा उस प्रसंग को कुछ यों याद करते हैं, हुआ यह कि "उन दिनों काशी से एक औपन्यासिक मासिक-पत्र निकला करता था। एक दिन उसके कार्यालय की ओर से नीले रंग का छपा एक ऐसा पोस्ट-कार्ड 'भारत-जीवन' में आया, जिसके चारों ओर शोकसूचक काला हाशिया लगा था। उस कार्ड पर कार्यालय के व्यवस्थापक की ओर से (कहने की आवश्यकता नहीं कि उस कार्यालय के व्यवस्थापक, संचालक और मासिक-पत्र के सम्पादक सब-कुछ एक ही सज्जन थे) लिखा था कि दुःख है कि इस कार्यालय के 'अध्यक्ष श्रीयुक्त..... के एकमात्र पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण इस मास का अंक ठीक समय पर न निकल सका।' आदि। 'भारत-जीवन' में कई आदमियों ने वह कार्ड पढ़ा, पर किसी का ध्यान उसमें के 'एकमात्र पिता' पर न गया। जब मैंने उसे देखा, तब मुझे उस मासिक-पत्र के सम्पादक के पिता की मृत्यु का तो दुःख हुआ ही – कारण यह कि सम्पादक जी स्कूल में मेरे सहपाठी रह चुके थे – पर उससे भी अधिक दुःख इस बात का हुआ कि उन्होंने 'एकमात्र' का अर्थ बिना समझे ही उसे अपने 'पिता' के आगे लगा दिया था। उन्होंने कहीं किसी समाचार-पत्र में पढ़ा होगा कि अमुक सज्जन के एकमात्र पुत्र का देहान्त हो गया। बस, उन्होंने वही 'एकमात्र' अपने 'पिता' के साथ लगा दिया था।"[174] 'एकमात्र' के इस अपप्रयोग पर जब वर्माजी ने बाबू रामकृष्ण वर्मा का ध्यान आकृष्ट किया तो वे बहुत प्रसन्न हुए। आगे वे अपनी साहित्यिक मंडली के बीच वर्माजी को बुलाते, उनके आगे उलटे-सीधे वाक्य बनाकर रखते और उन्हें शुद्ध करने के लिए कहते। जब कुछ ही क्षणों में वर्माजी शुद्ध रूप प्रस्तुत कर देते तो उन्हें वहाँ उपस्थित सभी महानुभावों का आशीर्वाद तो मिलता ही,

---

[174] रामचन्द्र वर्मा, *अच्छी हिन्दी*, वही, पहले संस्करण की भूमिका, पृष्ठ - 8

साथ ही वे लोग रामचन्द्र वर्मा की प्रशंसा भी करते और इस तरह उनकी आत्मीयता वर्माजी के प्रति बढ़ती जाती।

बदरीनाथ कपूर ने रामचन्द्र वर्मा पर लिखे अपने संस्मरण में वर्माजी के जीवन में 'भारत जीवन प्रेस' की इन विशेष भूमिकाओं का उल्लेख करते हुए, उनकी कार्य-क्षमता को रेखांकित कर, कहते हैं कि यहीं वर्माजी को पढ़ने का शौक लगा। भारत जीवन साप्ताहिक के अतिरिक्त और भी जितनी पत्र-पत्रिकाएँ वहाँ उपलब्ध होतीं वे उनके नियमित पाठक बन गए। बाबू रामकृष्ण वर्मा ने 1400 (चौदह सौ) के करीब छोटी-बड़ी पुस्तकों का प्रकाशन भी किया था। रामचन्द्र वर्मा एक-एक करके वे सभी पुस्तकें पढ़ गए। वर्माजी को बाबू रामकृष्ण वर्मा से तो प्रोत्साहन मिलता ही था अन्य उपर्युक्त चर्चित महानुभाव भी वर्माजी की पीठ ठोंका करते थे। इसका मुख्य कारण वर्माजी की भाषा के प्रति रुझान ही कदाचित अधिक था। उन दिनों हिन्दी के लेखक इने-गिने ही होते थे। वर्माजी 'भारत जीवन' साप्ताहिक में लेख आदि लिखने से प्रसिद्ध हो गए थे। फिर भाषा इनकी ज़ोरदार थी ही। जब माधवराव सप्रे ने नागपुर से मराठी 'केसरी' साप्ताहिक का हिन्दी संस्करण सन् 1907 ई॰ में निकाला तो वर्माजी को सहायक संपादक के रूप में नागपुर बुला लिया। वर्माजी बाद में इस पत्र के संपादक भी बने। यह साप्ताहिक बाल गंगाधर तिलक द्वारा संपादित मराठी केसरी के उग्र राष्ट्रीय विचारों को हिन्दी पाठकों के सामने रखता था। परन्तु वर्माजी अधिक समय नागपुर न ठहर सके। उन्हें नारू रोग हो गया था। वे काशी वापस चले आए। यह घटना सन् 1908 ई॰ के आरंभिक महीनों की है।[175] इस तरह रामचन्द्र वर्मा का कार्य-व्यापार एक बार फिर काशी की ओर चल निकला। ऐसे में वे आने वाले दिनों में अपनी कार्यकुशलता और प्रतिभा के बल पर हिन्दी के सेवाकार्य में अपना अनूठा योगदान देने के साथ उसकी श्रीवृद्धि की दिशा में फिर आगे बढ़ रहे थे। ज्ञात हो कि सन् 1909 ई॰ में काशी लौटने पर वर्माजी स्वतंत्र रूप से अनुवाद का काम करने लगे थे।

कुछ आगे चल कर सन् 1922 ई॰ में रामचन्द्र वर्मा ने अपनी प्रकाशन संस्था साहित्य रत्नमाला कार्यालय की स्थापना भी की थी; जिसका पता साहित्य-रत्नमाला

---

[175] बदरीनाथ कपूर, *शब्दब्रह्म के महान उपासक आचार्य रामचन्द्र वर्मा*, हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), *कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग*, वही, पृष्ठ - 164-165

कार्यालय, 20 धर्मकूप, बनारस में ही था। यह ऐयारी, तिलस्मी और जासूसी कृतियों का युग था। परन्तु इन्होंने अत्यंत सीमित साधनों से तथा अत्यंत साहस बटोरकर अपने प्रकाशन-गृह से साहित्यालोचन, भाषा-विज्ञान, हिन्दी भाषा का इतिहास, बौद्धकालीन भारत जैसी कुछ अत्यंत ही उच्चकोटि के ग्रन्थों का प्रकाशन किया। आगे चलकर यहीं से जयशंकर प्रसाद का जनमेजय का नागयज्ञ के अतिरिक्त रामचन्द्र वर्मा ने अपनी कई उल्लेखनीय पुस्तकों में से अच्छी हिन्दी, प्रामाणिक हिन्दी कोश, कोश-कला, शब्द-साधना, शब्दार्थ-दर्शन जैसे प्रशंसनीय ग्रन्थ भी कार्यालय से प्रकाशित किए थे। बदरीनाथ कपूर कहते हैं कि इस क्षेत्र में भी उन्होंने हिन्दी की श्रीवृद्धि की जबकि आर्थिक दृष्टि से वे सदा चिंताग्रस्त ही रहे।[176]

वहीं इस बीच में रामचन्द्र वर्मा की प्रतिभा, अभिरुचि, योग्यता तथा लगन को देखकर श्यामसुन्दर दास इन्हें वाराणसी अवस्थित नागरी-प्रचारिणी सभा के कोश-विभाग में भी ले गए। जहाँ 'हिन्दी शब्दसागर' के सम्पादन के लिए कोश-रचना संबंधी योग्यता रखने वाले व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ने पर अपनी बीस वर्ष की अवस्था में ही इन्हें कोश के सहायक संपादक का पद प्रदान कर दिया गया। उन दिनों नागरी-प्रचारिणी सभा में 'हिन्दी शब्दसागर' के कार्य हेतु आरंभ में शब्द-संग्रह के लिए जिन नवयुवकों को भर्ती किया गया उनमें से एक रामचन्द्र वर्मा भी थे। हिन्दी शब्दसागर के लिए शब्द-संग्रह के कार्य में "बाबू रामचन्द्र वर्मा को समस्त भारत के पशुओं, पक्षियों, मछलियों, फूलों और पेड़ों आदि के नाम एकत्र करने के लिए कलकत्ते भेजा था जिन्होंने प्रायः ढाई मास तक वहाँ रहकर इंपीरियल लाइब्रेरी से 'फ्लोरा और फॉना ऑफ ब्रिटिश इंडिया सीरीज' की समस्त पुस्तकों में से नाम और विवरण आदि एकत्र किए थे।"[177] संपादकगण इनके कार्य से इतने प्रभावित हुए कि आगे चलकर इनको भी कोश के सहायक संपादक का पद दे दिया गया। तब रामचन्द्र वर्मा अन्य संपादकों की अपेक्षा उम्र में बहुत छोटे थे।

सन् 1912 ई० में जब हिन्दी शब्दसागर का कोशकार्य बनारस से जम्मू जाना तय हुआ तो रामचन्द्र वर्मा कुछ कारणों से जम्मू न जा सके। इस दौरान पटना से निकलने वाले

---

[176] वही, पृष्ठ - 166-167

[177] श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), *हिन्दी शब्दसागर (प्रथम भाग)*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, परिवर्धित-संशोधित नवीन संस्करण (दूसरी बार) - 1986 ई०, प्रथम संस्करण की भूमिका, पृष्ठ - 3

साप्ताहिक 'बिहार-बंधु' के संपादकत्व का भार इनको मिला। और कोई एक वर्ष बाद जब कोश-विभाग फिर बनारस वापस चला आया तो वर्माजी भी साप्ताहिक बिहार-बंधु से त्याग-पत्र देकर कोश-विभाग में पुनः सम्मिलित हो गए।

हिन्दी शब्दसागर में रामचन्द्र शुक्ल के साथ संपादन कार्य में सहायता हेतु रामचन्द्र वर्मा को रखा गया था। शब्दों के संपादन का आरम्भिक कार्यभार रामचन्द्र शुक्ल का ही था। थोड़े दिनों बाद उनके सुयोग्य साथी रामचन्द्र वर्मा ने भी इस काम में उनका पूरा-पूरा हाथ बँटाया। इसलिए कोश को प्रस्तुत करनेवालों में दूसरा मुख्य स्थान रामचन्द्र वर्मा को प्राप्त है। शब्दसागर की भूमिका में कोश के प्रधान संपादक श्यामसुन्दर दास ने कोश के सम्पादन का मुख्य श्रेय रामचन्द्र शुक्ल को दिया है वहीं इस कार्य हेतु दूसरा मुख्य स्थान रामचन्द्र वर्मा को देते हुए श्यामसुन्दर दास बतलाते हैं कि कोश के साथ रामचन्द्र वर्मा का संबंध प्रायः आदि से अंत तक रहा है और वर्माजी के सहयोग तथा सहायता से कार्य को समाप्त करने में बहुत अधिक सुगमता हुई। आरंभ में वर्माजी ने कोश के लिए सामग्री आदि एकत्र करने में बहुत अधिक परिश्रम किया था; और तदुपरांत वे इसके निर्माण और संपादित की हुई स्लिपों को दोहराने के काम में पूर्ण अध्यवसाय और शक्ति से हमेशा सम्मिलित ही रहे। रामचन्द्र वर्मा में प्रत्येक बात को बहुत शीघ्र समझ लेने की अच्छी शक्ति है, भाषा पर उनका पूरा अधिकार है और वे ठीक तरह से काम करने का ढंग जानते हैं; और उनके इन गुणों से इस कोश को प्रस्तुत करने में बहुत अधिक सहायता मिली है। इसकी छपाई की व्यवस्था और प्रूफ आदि देखने का भार भी प्रायः उन्हीं पर था। इस प्रकार इस विशाल कार्य के संपादन का उन्हें भी पूरा-पूरा श्रेय प्राप्त है और इसके लिए वे उक्त दोनों सज्जनों का शुद्ध हृदय से धन्यवाद देते हैं।[178]

प्रसंगवश यहाँ यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सन् 1893 ई॰ में काशी स्थापित नागरी-प्रचारिणी सभा के तत्वाधान में हुए विविध कार्य-कलापों में से तीन ऐसे आयोजन विशिष्ट महत्त्व और दूरगामी प्रभाव के सिद्ध हुए जो हिन्दी अध्ययन के क्षेत्र में प्रतीमान बन गए। जिनमें से आगे चल कर "कोश, इतिहास और व्याकरण लेखन ने हिन्दी को उसके स्वरूप का अभिज्ञान दिया, जिस प्रक्रिया में तीन अपने ढंग के विशिष्ट व्यक्तित्वों

[178] वही, प्रथम संस्करण की भूमिका, पृष्ठ - 7

का उदय हुआ – कोशकार रामचन्द्र वर्मा, इतिहासकार रामचन्द्र शुक्ल और वैयाकरण कामताप्रसाद गुरु ।"[179] कहा जाता है कि उस दौर में मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचंद और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की रचनात्मकता के प्रेरक रूप में जैसे सरस्वती-संपादक महावीरप्रसाद द्विवेदी का ध्यान आता है कुछ वैसे ही रामचन्द्र वर्मा, रामचन्द्र शुक्ल और कामताप्रसाद गुरु के वैदुषिक कार्य-कलाप के पीछे नागरी-प्रचारिणी सभा के व्यवस्थापक व्यक्तित्व श्यामसुन्दर दास की योजना दिखलाई देती है ।[180] अतः यहाँ यह कहना उचित होगा कि रामचन्द्र वर्मा के कोशकार-व्यक्तित्व निर्माण के पीछे श्यामसुन्दर दास का भी अमूल्य योगदान रहा है । रामचन्द्र वर्मा ने हिन्दी कोश कार्य का आरंभ 'हिन्दी शब्दसागर' से ही किया था । वे इसमें आरंभ के सहयोगी से बाद में संपादक तक बने थे । आगे चल कर हिन्दी शब्दसागर के दूसरे संपादक और सहायक तो दूसरे-दूसरे क्षेत्रों में चले गए किन्तु रामचन्द्र वर्मा ने जीवनपर्यंत कोशकार्य को नहीं छोड़ा । अंततः कोशकार्य उन्हें प्रिय हो गया और वे कोशकार्य को प्रिय हो गए । कहा जाता है कि उन्होंने गोलोक, साकेत या ब्रह्मधाम की कल्पना न कर शब्दलोक को अपनाया था । वे आजीवन शब्द संपृक्त रहे । यही कारण है कि रामचन्द्र वर्मा हिन्दी के अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जो कोश मनीषी या शब्द मनीषी कहलाने के अधिकारी हैं ।[181]

रामचन्द्र वर्मा की विशिष्टताओं को यहाँ उन्हीं के शब्दों में समझने की थोड़ी-बहुत कोशिश करें तो वे इस संदर्भ में कहते हैं कि "मैं आरंभ से ही शुक्ल जी की आर्थी विवेचना और व्याख्याओं के रचना-कौशल का बहुत सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने लगा था, और कुछ ही दिनों में उनकी प्रणाली अपनाने में बहुत-कुछ सफल भी हो गया था ।"[182] ऐसे में जब रामचन्द्र शुक्ल नागरी-प्रचारिणी सभा का कोश-विभाग छोड़ कर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में चले गए, तब कोश-विभाग का सारा उत्तरदायित्व तथा भार रामचन्द्र वर्मा

---

[179] रामस्वरूप चतुर्वेदी, *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण - 2011 ई०, पृष्ठ - 106

[180] वही, पृष्ठ - 106

[181] हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), *कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 1989 ई०, आमुख, पृष्ठ - ख

[182] रामचन्द्र वर्मा (संपादक), *मानक हिन्दी कोश (पहला खण्ड)*, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, तृतीय संस्करण - 2006 ई०, आरम्भिक निवेदन, पृष्ठ - 6

के कन्धों पर आ पड़ा था। रामचन्द्र वर्मा लिखते हैं कि "यों भी और इस कार्य-भार का निर्वाह तथा वहन करने के लिए भी मैं प्रायः प्रति सप्ताह शुक्ल जी से मिलता रहता था; और हम लोग बराबर कोश-सम्बन्धी कार्यों का पर्यालोचन करते रहते थे – उसकी त्रुटियों और दोषों की चर्चा करते रहते थे, और उसमें सुधार के प्रकार तथा स्वरूप सोचा तथा स्थिर किया करते थे।"[183] यही नहीं रामचन्द्र वर्मा बतलाते हैं कि 'हिन्दी शब्दसागर' का सम्पादन कार्य समाप्त होने के समय रामचन्द्र शुक्ल के साथ उन्होंने उसके प्रधान संपादक तथा व्यवस्थापक श्यामसुन्दर दास से इस बात का बहुत अधिक आग्रह किया था कि सभा का कोश-विभाग बन्द न किया जाए और शब्दसागर के परिवर्धन, संशोधन आदि का काम बराबर चलता रहे। यदि उस समय इन लोगों का यह सुझाव मान लिया गया होता और कोश-कार्य के लिए एक स्थायी विभाग खुल गया होता तो अब तक कोश-रचना के क्षेत्र में बहुत अधिक उन्नति तथा प्रगति हो चुकी होती। किन्तु यह नहीं हुआ और रामचन्द्र वर्मा इन बातों पर खेद व्यक्त करते हुए कहते हैं कि वे अपनी योग्यता और सामर्थ्य शक्ति के अनुसार निजी रूप में इसका कुछ काम जैसे-तैसे चलाते रहे। किन्तु इसके लिए जिन साधनों तथा सुभीतों की आवश्यकता थी, उनका वर्मा जी के पास नितान्त अभाव था। तो भी इस काम के प्रति रामचन्द्र शुक्ल की कृपा से जो अनुराग, रुचि तथा लगन उत्पन्न हो चुकी थी, वह संभवतः मरते दम तक रामचन्द्र वर्मा का साथ देती रही।[184]

बाद में रामचन्द्र शुक्ल के निधन के उपरान्त तो मानों कोश-रचना का विषय वर्मा जी के लिए व्यसन-सा बन गया था; और अनेक दूसरे कामों में लगे रहने पर भी शब्दों और मुहावरों के अर्थों और प्रयोगों पर यथासाध्य सूक्ष्म दृष्टि से वे विचार करते रहते थे। इस तरह जब कभी कहीं इन्हें कोई नया शब्द, अर्थ या प्रयोग मिलता था, तब ये उसे (प्रायः उदाहरण

---

[183] वही, आरम्भिक निवेदन, पृष्ठ - 6

[184] वही, आरम्भिक निवेदन, पृष्ठ - 6 यहीं प्रसंगवश उल्लेख करते हुए रामचन्द्र वर्मा लिखते हैं कि "अँगरेजी के सर्वश्रेष्ठ और प्रामाणिक कोशकार वेब्स्टर (सन् 1758-1843) के कोश का पहला संस्करण सन् 1828 में प्रकाशित हुआ था। उसका जो बृहत् और विशाल सर्व-मान्य तथा प्रामाणिक रूप अब देखने में आता है, उसका कारण यही है कि उसके लिए एक स्थायी विभाग ही बन गया है, जिसमें सैंकड़ों विद्वान केवल कोश-रचना के सभी अंगों और उपांगों का गम्भीर अध्ययन करते रहते हैं और नित्य नये संशोधन तथा सुधार करते रहते हैं। इस विभाग ने कोश-रचना के सिवा पर्यायकी के क्षेत्र में जो बहुत बड़ा कार्य किया है वह सभी उन्नत भाषाओं के लिए आदर्श है।" – रामचन्द्र वर्मा (संपादक), *मानक हिन्दी कोश (पहला खण्ड)*, वही, आरम्भिक निवेदन, पृष्ठ - 6

सहित) टाँक लिया करते थे। इस प्रकार रामचन्द्र वर्मा के पास कोश सम्बन्धी प्रचुर सामग्री एकत्र हो गई थी, जिसके कुछ अंश का उपयोग इन्होंने 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' के पहले और दूसरे संस्करणों में किया था, और जिसके आधार पर सन् 1952 ई॰ में 'कोश-कला' नामक इनकी प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशित हुई; जिसमें हिन्दी कोश-रचना से संबंध रखने वाली सभी बातों का विस्तृत विवेचन किया गया था।[185]

फिर आगे चलकर जब बहुत दिनों तक हिन्दी कोश-कार्य का क्षेत्र उपेक्षित तथा सूना पड़ा रहा, तब प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कर्णधारों के मन में हिन्दी का एक नया बृहत् कोश प्रस्तुत करने का विचार आया और सम्मेलन ने इसके लिए एक विभाग भी खोल दिया; जिसके बाद सन् 1955 ई॰ में सम्मेलन ने इस कोश के सम्पादन का कार्यभार रामचन्द्र वर्मा को सौंपा। इस संदर्भ में रामचन्द्र वर्मा कहते हैं कि रामचन्द्र शुक्ल की मृत्यु के पश्चात तो कोश-रचना सम्बन्धी बहुत बड़ा ज्ञान उनके साथ ही चला गया। किन्तु उनके सुझावों के अनुसार कुछ करने का भार बना रहा। तब से रामचन्द्र वर्मा ने एक ऐसा नया कोश बनाने का विचार कर लिया था जो हिन्दी कोश-रचना के क्षेत्र में एक नया आदर्श तथा एक नयी परम्परा स्थापित कर सके।[186] उसी का परिणाम हिन्दी साहित्य सम्मेलन से रामचन्द्र वर्मा के सम्पादन नेतृत्व में सन् 1962 ई॰ में 'मानक हिन्दी कोश' के तौर पर सामने आया; जिसके बाद वर्मा जी ने कहा कि "मेरा मूल उद्देश्य बहुत कुछ सफल हुआ है। यह एक ऐसा भवन है जिसमें अनेक कुशल कारीगर बराबर लगे रहने चाहिए।"[187] जिससे उनका आशय यह था कि मानक हिन्दी कोश के बाद भी हिन्दी में कोश-रचना का कार्य भविष्य में इसी रूप में आगे चलता रहे। इसी के संदर्भ में रामचन्द्र वर्मा यह उल्लेखनीय बात लिखते हैं कि "रामचन्द्र शुक्ल की शवयात्रा के समय ही मैंने यह निश्चय कर लिया था कि जब तक मेरे शरीर में कुछ भी शक्ति रहेगी तब तक मैं भाषा और शब्दों के संबंध में अपना अल्प ज्ञान और विचार विवेचन लिपिबद्ध कराता रहूँगा – अपने साथ वही अंश ले जाऊँगा जो किसी प्रकार कागज पर उतरवा ही न सकूँगा।"[188] वहीं रामचन्द्र शुक्ल

---

[185] वही, आरम्भिक निवेदन, पृष्ठ - 6

[186] वही, आरम्भिक निवेदन, पृष्ठ - 6-7

[187] वही, आरम्भिक निवेदन, पृष्ठ - 7

[188] रामचन्द्र वर्मा, *शब्दार्थ-दर्शन*, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण - 1968 ई॰, प्रस्तावना, पृष्ठ - 20

की स्मृति के साथ शब्दों की व्याख्या और उनके पर्यायों के बीच के सूक्ष्म अंतर को जानने-समझने की महत्ता को रेखांकित करते हुए रामचन्द्र वर्मा लिखते हैं कि "मित्रवर शुक्ल जी तो इस विषय का अगाध ज्ञान अपने साथ लेकर चले गए, हाँ, अपना थोड़ा-बहुत प्रसाद मुझे अवश्य देते गए, जिसके बल पर मैंने 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' में हज़ारों शब्दों की व्याख्या बिलकुल नए सिरे से करने और पर्याय माने जाने वाले शब्दों के आर्थी अन्तर निश्चित करने का तुच्छ प्रयास किया था।"[189] कह सकते हैं कि कुल मिलाकर कोशकार्य विषयक उक्त आवश्यकताओं को रामचन्द्र वर्मा भली-भाँति समझते थे।

रामचन्द्र वर्मा आदि से अन्त तक (बीच में उस थोड़े-से समय को छोड़कर, जब कोश-विभाग जम्मू चला गया था) हिन्दी शब्दसागर की रचना में सम्मिलित और सहायक थे; जिससे मिले अनुभवों का उल्लेख करते हुए रामचन्द्र वर्मा अपने एक अन्य कोश-कार्य प्रामाणिक हिन्दी कोश की प्रस्तावना में सन् 1949 ई॰ में ही यह लिखते हैं कि "शब्द-सागर के दो सम्पादक (स्व॰ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और इन पंक्तियों का लेखक) प्रायः आपस की बात-चीत में शब्द-सागर की ख़ूब दिल्लगी उड़ाते थे और उसके तरह-तरह के दोषों की चर्चा करते हुए सोचा करते थे कि इसके ये सब दोष कब और कैसे दूर होंगे। स्व॰ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अन्यान्य विषयों और विद्याओं की भाँति कोश-कला के भी परम प्रवीण पंडित थे। यदि वे चाहते तो उसे बहुत-कुछ निर्दोष कर सकते थे। ...वे प्रायः मुझसे कहा करते थे – 'वर्मा जी, हमसे तो अब कुछ हो न सकेगा। हाँ, आप यदि कुछ हिम्मत करें तो शब्द-सागर का बहुत-कुछ सुधार हो सकता है।' मैं भी हँसकर कह देता – 'जी हाँ, मैं ही इसके लिए मरने को हूँ। हम लोगों को जो कुछ करना था, वह कर चुके। अब आनेवाली पीढ़ियाँ जो चाहेंगी, वह करेंगी।' परंतु जब शुक्ल जी का स्वर्गवास हो गया, तब मेरी आँखें खुलीं। जिस समय मैं शोक मग्न होकर उनके शव के साथ श्मशान की ओर जा रहा था, उस समय मुझे ध्यान आया कि शुक्ल जी कोश-कला के ज्ञान का कितना बड़ा भंडार अपने साथ लिए जा रहे हैं; और उस ज्ञान का कितना थोड़ा अंश अभी तक कागज पर आ पाया है। मैंने सोचा कि शुक्ल जी के सत्संग से इस विषय का जो थोड़ा-बहुत ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है, उसका तो मैं कुछ उपयोग कर जाऊँ। बस तभी से मैं शब्द-सागर में जहाँ-तहाँ सुधार,

[189] रामचन्द्र वर्मा, *शब्द-साधना*, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण - 1955 ई॰, निवेदन, पृष्ठ - 9

संशोधन, परिवर्तन और परिवर्द्धन करने लगा।"[190] यही कारण है कि 'हिन्दी शब्दसागर' के निर्माताओं में तो वर्माजी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा ही, इसके बाद भी इन्होंने संक्षिप्त शब्द सागर, उर्दू सागर, उर्दू-हिन्दी कोश, आनंद शब्दावली, राजकीय कोश, प्रामाणिक हिन्दी कोश तथा पाँच खण्डों में मानक हिन्दी कोश आदि का भी संपादन किया। कोश-रचना पर लिखी इनकी 'कोश-कला' नामक पुस्तक विश्व साहित्य में अपने ढंग की पहली पुस्तक रही है। ज्ञात हो कि दक्षिण भारत के विभिन्न भाषा-भाषी हिन्दी का अध्ययन करते हुए उसमें आए उर्दू के फ़ारसी व अरबी आदि शब्दों का अर्थबोध प्रायः सहजता से नहीं कर पाते थे, इसी दृष्टि से रामचन्द्र वर्मा ने सन् 1936 ई० में देवनागरी अक्षरों की सहायता से अर्थबोध कराने वाले देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश की रचना की थी। अच्छी हिन्दी, हिन्दी प्रयोग, शब्द-साधना, शब्दार्थ दर्शन आदि इनकी कुछ अन्य महान कृतियों में शामिल हैं।

बदरीनाथ कपूर स्मरण करते हुए लिखते हैं कि "संक्षिप्त शब्द-सागर के प्रणयन पर नागरी-प्रचारिणी सभा की प्रबंध-समिति ने वर्माजी को पुरस्कारस्वरूप पाँच हजार रुपये देने का प्रस्ताव पारित किया था परन्तु वर्माजी ने यह कहकर वह राशि नहीं ली कि ईश्वर की कृपा से मेरी दाल-रोटी चल रही है। जब नागरीप्रचारिणी सभा को भारत सरकार ने हिन्दी शब्द-सागर के द्वितीय संस्करण के संशोधन के लिए आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई तो सभा के तत्कालीन अधिकारियों को कोश के एकमात्र बचे संपादक बाबू रामचन्द्र वर्मा का स्मरण तक न हुआ। वर्माजी सभा के द्वारा की गई इस उपेक्षा और अवमान से बेहद दुखी थे। कुछ वर्षों बाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन के श्री जगदीश स्वरूप ने वर्माजी को मानक हिन्दी कोश के संपादन का उत्तरदायित्व सौंपा। वर्माजी को संतोष हुआ और दस वर्ष की कठोर साधना के उपरांत उन्होंने पाँच खण्डों में हिन्दी को एक श्रेष्ठ कोश प्रदान किया। इस कोश के प्रकाशन के उपरांत वर्माजी के सबसे बड़े आलोचक आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने उनका हरिद्वार में अभिनन्दन-समारोह रचाया और वर्माजी को इस शती का महान कोशकार बतलाया।"[191] इस संदर्भ में यहाँ प्रसंगवश यह उल्लेखनीय है कि 27 जून

---

[190] रामचन्द्र वर्मा (सम्पादक), जयकान्त झा (सहायक सम्पादक), *प्रामाणिक हिन्दी कोश*, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण के विक्रम संवत् २००६ में रामचन्द्र वर्मा लिखित 'अन्तिम निवेदन' अर्थात् सन् १९४९ ई०, प्रस्तावना, पृष्ठ - 1-2

[191] बदरीनाथ कपूर, *शब्दब्रह्म के महान उपासक आचार्य रामचन्द्र वर्मा*, हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), *कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग*, वही, पृष्ठ - 165-166

1967 ई० को हिन्दी के प्रसिद्ध वैयाकरण किशोरीदास वाजपेयी ने हरिद्वार में रामचन्द्र वर्मा जी का अभिनंदन कार्यक्रम किया था। ऐसे तो रामचन्द्र वर्मा प्रसिद्ध वैयाकरण और कोश निर्माता थे किन्तु किशोरीदास वाजपेयी इन्हें उच्च कोटि का कोश निर्माता तो मानते थे, वैयाकरण वैसा स्वीकार नहीं करते थे। यही कारण है कि हरिद्वार में आयोजित वर्माजी का अभिनंदन कार्यक्रम कोश-कार्य के क्षेत्र में किए गए उनके योगदान को ध्यान में रख कर किया गया था। फिर भी यहाँ यह उल्लेखनीय है कि "बीसवीं शताब्दी में हिन्दी-भाषा की उन्नति और समृद्धि के लिए जिन विद्वानों ने अथक योगदान किया उनमें वर्माजी का नाम सदा आदार से लिया जाएगा। सच तो यह है कि हिन्दी के उज्ज्वल और निर्मल स्वरूप को उद्घाटित करने का पूरा श्रेय उन्हीं को है। हिन्दी के ठेठ शब्दों का सूक्ष्म और व्यवस्थित आर्थी निरूपण कर हिन्दी की अस्मिता को बढ़ानेवाले भी वे अनन्य विद्वान थे।"[192] यही कारण है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशनों में जाना वे अपना कर्तव्य समझते थे।

कोशकार्य के साथ-साथ रामचन्द्र वर्मा का अनुवाद-कार्य भी चलता रहा; इन्होंने सन् 1910 से 1940 ई० तक अनेकों उच्चकोटि के उल्लेखनीय बंगला, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी आदि भाषाओं के ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किया। इनके अनुवाद की भाषा सरल और सरस तो होती ही थी, वह कई बार मूल कृति के समान अपना प्रभाव पैदा करती थी। अतः कहना न होगा कि वे इतने सिद्धहस्त अनुवादक थे कि उनकी कृति अनुवाद की अपेक्षा मौलिक प्रतीत होती थी और इस बात का पाठक को अनुमान ही नहीं हो पाता था कि वास्तव में जो कृति वह पढ़ रहा है वह किस भाषा से अनूदित हुई है।

रामचन्द्र वर्मा के अनुवाद कार्यशैली के बारे में ओमप्रकाश कपूर अपने संस्मरण 'पूज्य मामा जी' में लिखते हैं कि "वर्मा जी ने अनेक पुस्तकों का अनुवाद भी किया। वर्मा जी के अनुवाद करने का ढंग भी निराला था। स्वयं तो एक पुस्तक का अनुवाद टाइपराइटर पर करते, साथ दो लिपिकों को दो अलग-अलग भाषा की पुस्तकों का अनुवाद भी लिखाते जाते। सबेरे सात से बारह और दोपहर तीन से पाँच तक अनुवाद का काम चलता रहता। फिर रात आठ से ग्यारह बजे तक पुस्तकों के प्रूफ देखते।"[193] यों अगर ये बातें

---

[192] वही, पृष्ठ - 163

[193] ओमप्रकाश कपूर, *पूज्य मामा जी*, हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), *कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग*, वही, पृष्ठ - 189-190

अतिशयोक्ति नहीं तो अनुवादक की व्यक्तिगत प्रतिभा अवश्य है। इसी संस्मरण से यह ज्ञात होता है कि रामचन्द्र वर्मा स्वभाव से विनोदप्रिय भी थे और एक संगीत मर्मज्ञ भी। वे जिस सभा या मित्र-मण्डली में रहते वहाँ ठहाकों का आलम रहता। उनकी सादगी और स्वभाव की सरलता मिलनेवाले साहित्यिक पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहती थी। इस तरह उनका व्यक्तित्व हिन्दी में जिए और हिन्दी के लिए जिए लोगों की तरह पूर्ण समर्पित था।

शब्दार्थ-निर्णय के प्रति रुचि के कारण इन्होंने अपने भवन का नाम 'शब्दलोक' रख दिया था। 1952 ई॰ से वर्माजी के निवास स्थान पर सप्ताह में दो बार शब्दगोष्ठी हुआ करती थी; जिसमें अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी तदर्थी स्थिर किए जाते थे। फिर आगे चलकर उसमें अंग्रेजी और हिन्दी शब्दों की सूक्ष्म अर्थ-छटाओं पर विचार-मंथन के साथ भाषा-प्रयोगों को लेकर विस्तृत परिचर्चा होती थी। कई भाषाओं के ज्ञान के कारण वर्मा जी प्रत्येक शब्द की आत्मा में घुस जाते थे और उसके प्रयोग के साथ यह बतला देते थे कि अमुक शब्द का मूल कहाँ से है। उन दिनों शिवनाथ प्रसाद बेरी, दुर्गाप्रसाद खत्री, ब्रजमोहन, शिवनाथ राघव तथा बदरीनाथ कपूर इस गोष्ठी में नियमित रूप से सम्मिलित होते थे। अनेक अवसरों पर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हजारी प्रसाद द्विवेदी, महाराज नारायण मेहरोत्रा, श्रीप्रकाश आदि भी इसमें शामिल होकर अपना योगदान दिया करते थे। शब्द-साधना और कई अन्य पुस्तकें तो वर्मा जी के निवास पर होने वाली इन शब्दगोष्ठियों का ही परिणाम हैं।

भाषा की सेवा करते हुए रामचन्द्र वर्मा ने देश-सेवा का व्रत भी लिया था। स्थानीय कांग्रेस के कई पदों पर वे रहे। आन्दोलनों के दिनों में 'रणभेरी' के प्रकाशन का पूरा भार उन्हीं पर रहता था जिसमें उन्हें सर्वश्री बाबूराव विष्णु पराड़कर, लक्ष्मी नारायण गर्दे, दुग्वेकर जी, दुर्गाप्रसाद खत्री, छेदीलाल जी, ज्ञानचन्द मुरब्बे वाला, ठाकुर रघुनाथ सिंह, श्रीप्रकाश जी, श्री सम्पूर्णानन्द जी का सहयोग प्राप्त होता था। 'रणभेरी' का सम्पूर्ण ख़र्च राष्ट्ररत्न श्री शिवप्रसाद गुप्त जी वहन करते थे। आन्दोलन के दिनों जब 'आज' अख़बार सरकार बन्द करा देती तो 'रणभेरी' का प्रकाशन प्रारम्भ हो जाता था। ओमप्रकाश कपूर बतलाते हैं कि उस दौर में वर्मा जी के नाम से कई बार वारंट भी निकले परन्तु वे कभी पुलिस के हाथ नहीं लगे। कई बार तो गिरफ्तार करने आई पुलिस से उनका सामना भी हुआ पर सदा वे चकमा देकर बच निकले।[194]

---

[194] वही, पृष्ठ - 190

काशी की अनेक साहित्यिक और सामाजिक संस्थाओं से भी रामचन्द्र वर्मा का संबंध रहा है। वे नागरी-प्रचारिणी सभा के आजीवन सदस्य रहे; दो बार वे उसके प्रधानमंत्री और दो बार उसके उपसभापति भी चुने गए। तुलसी पुस्तकालय, अभिमन्यु पुस्तकालय, सारस्वत विद्यालय, भगवानदीन विद्यालय, खत्री हितकारिणी सभा आदि के वे वर्षों तक अध्यक्ष भी रहे। सन् 1961-62 ई॰ में युरेका प्रेस से निकलनेवाली 'मराल' पत्रिका का भी इन्होंने संपादन किया। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान काशी के स्वतंत्रता-सेनानियों की प्रथम पंक्ति में वर्माजी का भी नाम आता है। उस समय के कांग्रेस के सभी आंदोलनों में वे अग्रणी रहे। सन् 1942 ई॰ के आंदोलन के दिनों में वे बनारस कांग्रेस के प्रभारी भी रहे। काशी और उसके आस-पास लगनेवाले स्वतंत्रता-सेनानियों के शिविरों में सम्मिलित होनेवालों के भोजन-पानी की व्यवस्था का भार वर्माजी के कुशल नेतृत्व में खत्री युवा दल पर ही होता था। 'रणभेरी' के संपादन का काम तो अनेक लोगों ने समय-समय पर किया परन्तु प्रकाशन का सम्पूर्ण दायित्व वर्माजी पर ही रहा। वे सच्चे गांधीवादी थे।[195]

भारत सरकार ने सन् 1958 ई॰ में रामचन्द्र वर्मा को साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में योगदान के लिए पद्मश्री पुरस्कार प्रदान किया तो वहीं हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने इन्हें साहित्य क्षेत्र में विद्यावाचस्पति की उपाधि से विभूषित किया और साहित्य जगत में ठलुआ क्लब के द्वारा वर्मा जी को 'शब्दर्षि' का पद प्रदान किया गया।

रामचन्द्र वर्मा हिन्दी भाषा के मानक रूप के महत्त्व को समझते थे क्योंकि उनके अनुसार उन्होंने अपने सारे जीवन में किसी और भाषा को ऐसी बे-ढंगी तरह से रूप बदलते नहीं देखा, जैसी बे-ढंगी तरह से आज-कल हिन्दी का रूप बदल रहा है।[196] वर्मा जी को निराशा थी कि हिन्दी भी उसी ओर जाती हुई दिखाई देती है जिस ओर सारा देश आँखें बन्द करके चला जा रहा है।[197] ऐसे में वे शुद्ध भाषा प्रयोग के प्रति बेहद चिंतित रहते थे और उसके अशुद्ध व्यवहार को ठीक करने के उद्देश्य से कहते थे कि "हिन्दी विद्वानों तथा

---

[195] बदरीनाथ कपूर, *शब्दब्रह्म के महान उपासक आचार्य रामचन्द्र वर्मा*, हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), *कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग*, वही, पृष्ठ - 167

[196] रामचन्द्र वर्मा (लेखक), बदरीनाथ कपूर (संशोधन तथा परिवर्धन), शब्दार्थ-विचार कोश, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, संस्करण - 2015 ई॰, प्रथम संस्करण की प्रस्तावना, पृष्ठ - 6

[197] वही, प्रथम संस्करण की प्रस्तावना, पृष्ठ - 6

साहित्यिक संस्थानों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे लोग हिन्दी भाषा की ऐसी दुर्दशा करना छोड़कर उसका मानक और विशुद्ध रूप स्थिर करने का प्रयत्न करें।"[198] वास्तव में रामचन्द्र वर्मा यह बतलाना चाहते थे कि भाषा के क्षेत्र में लोग क्यों, कहाँ और कैसे भटक रहे हैं। ऐसी विकट परिस्थितियों को देखते हुए ही रामचन्द्र वर्मा अपनी स्थिति के बारे में लिखते हुए बतलाते हैं कि "एक तो मैं क्षीण स्वरवाला दुर्बल व्यक्ति ठहरा और दूसरे मैं चुपचाप एकांत में बैठकर अपनी अल्प शक्ति के अनुसार केवल सेवा-भाव से काम करनेवाला ठहरा। आन्दोलन खड़ा करना और हो-हल्ला मचाना मेरी प्रकृति के बिलकुल विरुद्ध है।"[199] फिर भी रामचन्द्र वर्मा ने किशोरीदास वाजपेयी के साथ मिलकर 'अच्छी हिन्दी' का आंदोलन चलाया; जिससे हिन्दी के मानकीकरण का प्रयास संभव हुआ। इस तरह यह सब कार्य वर्माजी के द्वारा किए गए सद् प्रयत्नों और अच्छे उद्देश्यों का प्रमाण है।

धर्मपाल मैनी रामचन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व पक्ष का उद्घाटन करते हुए बतलाते हैं कि रामचन्द्र वर्मा का धैर्य भी अद्भुत था। किसी शब्द के ठीक अभिप्राय का बोध नहीं होने पर वे अधीर कभी नहीं होते थे, लेकिन अपनी जिज्ञासा को भी अनायास ही शांत नहीं होने देते थे और धैर्याधारित इस जिज्ञासा ने ही उनकी शोध परायण-वृत्ति को इतना बढ़ाया कि देश-भर के सभी पुस्तकालयों में मिलाकर भी 'पर्याय' संबंधी जो कोश उपलब्ध न थे, वे उनके घर पर मिल सकते थे। अंग्रेजी में इस संबंध में जितना कार्य हुआ था और प्रकाश में आया था, उस सभी का उन्हें ज्ञान था।[200] यही कारण है कि "वर्मा जी ने अनथक श्रम, लगन, एकाग्रता और तल्लीनता से ऐसी सतत चिन्तन और मनन शक्ति विकसित कर ली थी, जिससे उनका अंतर्विवेक (उन्हीं के शब्दों में) उभर कर सामने आया और न केवल उन्होंने अपने सहयोगियों को ही शब्दों के विवेचन और विश्लेषण की अद्भुत क्षमता दी, अपितु परवर्ती पीढ़ी को भी शब्दों को समझने-समझाने की नई दिशा में प्रवृत्त किया। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व इसका सशक्त प्रमाण है।"[201]

---

[198] वही, प्रथम संस्करण की प्रस्तावना, पृष्ठ - 4

[199] वही, प्रथम संस्करण की प्रस्तावना, पृष्ठ - 4

[200] धर्मपाल मैनी, *पद्मश्री रामचन्द्र वर्मा की मौलिकता*, हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), *कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग*, वही, पृष्ठ - 186

[201] वही, पृष्ठ - 188

भारतीय परम्परा में तो स्वयं महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य में यह कहा ही है कि 'एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति' अर्थात् एक भी शब्द यदि सम्यक् रीति से ज्ञात हो तथा सुप्रयुक्त हो तो वह इस लोक में और उस लोक में प्रयोक्ता के लिए कामधेनु बन जाता है। यह सूक्ति कोश-रचना के क्षेत्र में किस प्रकार कोश-कार्य का मार्ग-प्रशस्त करती है इसे रामचन्द्र वर्मा के शब्दों में कहें तो ज्ञात होता है कि "कुछ तो भाषा के शुद्ध रूप तथा शब्दों के शुद्ध प्रयोग की ओर बचपन से ही मेरी थोड़ी बहुत रुचि थी, और कुछ हिन्दी शब्द-सागर के सम्पादन में लग जाने और स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का सान्निध्य प्राप्त होने के कारण यह विषय मेरे लिए व्यसन सा हो गया था। शब्द-सागर के सम्पादन-काल में ही हम लोगों की इस बात का यथेष्ट अनुभव हो गया था कि शब्दों की ठीक और पूरी व्याख्या करना बहुत ही कठिन काम है; और उसमें बहुत अधिक जानकारी, परिश्रम तथा विचारशीलता की आवश्यकता होती है।"[202] ऐसे वर्माजी ने तो असंख्य शब्दों का मर्म समझा था इसलिए वे निश्चय ही शब्द-साधना के योग्य पद के उत्तराधिकारी हैं।

बदरीनाथ कपूर बतलाते हैं कि 8 जनवरी, 1969 ईस्वी को रामचन्द्र वर्मा का 80वाँ जन्मदिन मनाया गया। वर्माजी की अंतिम कृति 'शब्दार्थ-दर्शन' प्रकाशित हुई; जिसके कुछ एक सप्ताह बाद 19 जनवरी, 1969 ई० को शब्दब्रह्म के इस महान उपासक ने इस संसार से सचमुच विदा ले लिया।[203] और इस शब्द-साधक का निधन हो गया। ऐसे में रामचन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व को समझने के लिए उनके जीवन के अन्तःसूत्रों से ही कोई मार्ग निकल सकता है, इसके साथ उनसे जुड़े संस्मरण भी यहाँ महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं।

रामचन्द्र वर्मा के छोटे भानजे बदरीनाथ कपूर का न केवल उनसे पारिवारिक जुड़ाव ही रहा बल्कि वे आगे चलकर कोश-सम्पादन के कई कार्यों में रामचन्द्र वर्मा के सहायक भी रहे। ऐसे में बदरीनाथ कपूर वर्माजी के साहित्यिक उत्तराधिकारी कहे जा सकते हैं। यही कारण है कि वे (बदरीनाथ कपूर) प्रामाणिक हिन्दी कोश के संक्षिप्त संस्करण की भूमिका में उल्लेख करते हैं कि "कोश का कार्य अब निरन्तर चलता चले इसके लिए 'आचार्य

---

[202] रामचन्द्र वर्मा, *शब्द-साधना*, वही, निवेदन, पृष्ठ - 9

[203] रामचन्द्र वर्मा (मूल संपादक), बदरीनाथ कपूर (संशोधन-परिवर्द्धन), बृहत् प्रामाणिक हिन्दी कोश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवाँ संस्करण - 2017 ई०, आचार्य रामचंद्र वर्मा : एक परिचय, पृष्ठ - xiv

रामचन्द्र वर्मा कोश-संस्थान' की स्थापना कर दी गई है। मुझे आशा है कि अब निरन्तर शब्द-संकलन, अर्थ-शोधन तथा अर्थों के क्रम का निर्धारण करने का कार्य योजनाबद्ध ढंग से चलेगा।"[204] किन्तु आज बदरीनाथ कपूर द्वारा उल्लिखित इस 'आचार्य रामचन्द्र वर्मा कोश-संस्थान' के विषय में कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती। हो सकता है आरंभ में इसका अस्तित्व रहा हो याकि स्वयं बदरीनाथ कपूर ने ऐसी कोई योजना बनाई हो जिसे साकार रूप न दिया जा सका हो।

रामचन्द्र वर्मा आजीवन साहित्य, समाज और राष्ट्र की सेवा में लगे रहे। वे हिन्दी के ऐसे विरले व्यक्तियों में शामिल हैं जिन्होंने अपने कार्यों से इतिहास में स्थायी प्रभाव पैदा किया है। हिन्दी भाषा की श्रीवृद्धि और समृद्धि के लिए वर्माजी ने जो सतत साधना की उसके लिए हिन्दी संसार उनका सदा ऋणी रहेगा। वस्तुतः वर्माजी का व्यक्तित्व कई पक्षों और पहलुओं से मिल कर निर्मित हुआ था। वे शब्द-ब्रह्म के महान उपासक थे। जीवन भर शब्दों की खोज में लगे रहे और अंत में उसी में विलीन हो गए। ऐसे में उन्हें शब्दों के संसार से ढूँढ निकालना आज की साहित्यिक पीढ़ी का काम है। कहना न होगा कि यह शोधकार्य भी साहित्यिक दृष्टि से उक्त कार्यों की दिशा में ही एक छोटा-सा प्रयास है।

शब्द-साधना की प्रस्तावना में मदरास के तत्कालीन राज्यपाल श्रीप्रकाश जी रामचन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व को उद्घाटित करते हुए जो महत्त्वपूर्ण बात लिखते हैं वस्तुतः उसका भी उल्लेख यहाँ अपेक्षित है वे कहते हैं कि "हिन्दी की वास्तविक सेवा यदि कोई कर रहा है, तो वर्मा जी कर रहे हैं। बिना किसी से झगड़ा मोल लिए, बिना हिन्दी के प्रचार में उग्रता दिखलाए, वे लोगों के ऐसे सच्चे सहायक के रूप में मुझे दिखाई पड़े, जो प्रेमपूर्वक शिक्षक की भाँति लोगों को शुद्ध और सरल भाषा का प्रयोग करना सिखलाते हैं; और बतलाते हैं कि किस प्रकार से बिना जाने हुए ही हम लिखने-पढ़ने में कितनी ही अशुद्धियाँ करते रहते हैं, पर थोड़ी सावधानी से बोलने-लिखने से हम जिनसे सहज में बच सकते हैं। उनकी पुस्तकों से मेरी आँख खुल गई है। मैं यह तो नहीं कह सकता कि अब अशुद्धियाँ कम करता हूँ; पर मैं यह अवश्य स्वीकार करूँगा कि उनसे मैंने बहुत-सी ऐसी बातें सीखीं,

---

[204] रामचन्द्र वर्मा (सम्पादक), बदरीनाथ कपूर (संशोधन-सम्पादन), *प्रामाणिक हिन्दी कोश (संक्षिप्त संशोधित संस्करण)*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पुनर्मुद्रण संस्करण - 2009 ई०, भूमिका, पृष्ठ - viii

जिनका मुझे पहले पता नहीं था और जिनसे मुझे बहुत सहायता मिली । इसके लिए मैं उनका परम अनुगृहीत हूँ।"[205]

अब आख़िर में तो शायद यहाँ रामचन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व के बारे में स्वयं उनके ही शब्दों को जान समझ लेना महत्त्वपूर्ण होगा कि "अन्त में मैं एक और निवेदन कर देना चाहता हूँ। ऊपर मैं कई जगह कह गया हूँ कि हिन्दी शब्द-सागर का कुछ काम मैंने किया है, 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' मैंने बनाया है, 'कोश-कला' मैंने लिखी है, आदि । पर सच पूछिए तो इस प्रकार की बातें कहना मेरी बहुत बड़ी भूल है। घनानन्द ने एक अवसर पर कहा है – लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहिं तो मेरे कवित्त बनावत। मैं अनुभव करता हूँ कि यह बात अक्षरशः मुझ पर भी ठीक घटती है । भला मुझ में शब्द-कोश बनाने की योग्यता कहाँ ! हाँ शब्द-कोशों के सम्पादन-कार्य ने अलबत्ता मुझे बनाया और काम करने का रास्ता दिखाया है। वही मुझ से प्रामाणिक कोश बनवा रहा है और उसी ने मुझसे यह कोश-कला लिखवाई है। यदि लोग इन चीज़ों को मेरी रचनाएँ न समझकर मुझे इन चीज़ों की रचना समझें, तो शायद कुछ ज्यादा ठीक हो। केवल थोड़ा-सा अनुभव, पुराना हिन्दी-प्रेम और बराबर कुछ न कुछ करते रहने की आदत इस अल्पज्ञ के शिथिल शरीर से भी यह सब करा रही है। ईश्वर करे, यह काम सुयोग्य हाथों में पहुँचकर मातृ-भाषा का मुख उज्ज्वल करे।"[206] तो यह है रामचन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व का आधार जो उनकी रचनाओं से मिल कर ही बन पाया है और जिसमें भविष्य की पीढ़ी के प्रति कृतज्ञतापूर्ण आशा भरी दृष्टि से वर्माजी आजीवन देखते रहे।

रामचन्द्र वर्मा का कृतित्व

रामचन्द्र वर्मा की ज्ञात-अज्ञात कृतियों की एक उपलब्ध सूची प्रकाशन वर्ष के अनुक्रम में सन् 1989 ई० में 'आचार्य रामचन्द्र वर्मा जन्मशती ग्रंथ' के अंतर्गत हरदेव बाहरी, भोलानाथ तिवारी, कैलाशचन्द्र भाटिया, रमेशचन्द्र महरोत्रा, युगेश्वर और बदरीनाथ कपूर के संपादकत्व में विश्वविद्यालय प्रकाशन (वाराणसी) से प्रकाशित 'कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग' पुस्तक में इस प्रकार से मिलती है – कैकयी की जीवनी (1909 ई०), सीता की

[205] रामचन्द्र वर्मा, *शब्द-साधना*, वही, प्रस्तावना, पृष्ठ - 13

[206] रामचन्द्र वर्मा, *कोश-कला*, वही, नम्र निवेदन, पृष्ठ - 7

जीवनी (1909 ई०), काली नागिन (1909 ई०), महादेव गोविंद रानडे (1914 ई०), सफलता और उसकी साधना के उपाय (1915 ई०), आत्मोद्धार (1915 ई०), मितव्यय (1916 ई०), उपवास-चिकित्सा (1916 ई०), छत्रसाल (1916 ई०), मानव-जीवन (1917 ई०), मेवाड़-पतन (1918 ई०), आयरलैंड का इतिहास (1918 ई०), महात्मा गांधी (1918 ई०), भूकंप (1918 ई०), हम स्वराज क्यों चाहते हैं (1918 ई०), बलिदान (1919 ई०), साम्यवाद (1919 ई०), राणा प्रताप (1921 ई०), असहयोग का इतिहास (1921 ई०), करुणा (1921 ई०), राजा और प्रजा (1922 ई०), चाँद बीबी (1922 ई०), वर्तमान एशिया (1922 ई०), कर्तव्य (1923 ई०), कामिनी कांचन (1923 ई०), स्वर्ण-प्रतिमा (1924 ई०), प्राचीन मुद्रा (1924 ई०), राजराजेश्वरी (1924 ई०), सिंहल-विजय (1925 ई०), रवींद्र कथा कुंज (1925 ई०), सामर्थ्य, समृद्धि और शांति (1927 ई०), हिंदू राज्यतंत्र - I (1927 ई०), निबंध रत्नावली (1928 ई०), विधाता का विधान (1928 ई०), अकबरी दरबार - I और II (1928 ई०), गोरों का प्रभुत्व (1928 ई०), सिर का दर्द (1928 ई०), बाल-शिक्षा (1928 ई०), सुभाषित और विनोद (1932 ई०), हिंदी दासबोध (1932 ई०), संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर (1933 ई०), पुरानी दुनिया (1934 ई०), नागरिक नीति (1934 ई०), रूपक रत्नावली - I (1934 ई०), भूकंप-पीड़ितों की करुण कहानियाँ (1934 ई०), जातक कथा माला (1934 ई०), बैकुंठ का दानपत्र (1934 ई०), मँगनी के मियाँ (1935 ई०), मानस सरोवर और कैलास (1935 ई०), उर्दू हिंदी कोश (1936 ई०), अकबरी दरबार - III (1936 ई०), हिंदी ज्ञानेश्वरी (1937 ई०), प्रबंध-पराग (1937 ई०), रूपक रत्नावली - II (1937 ई०), मँझली दीदी (1938 ई०), अंधकारयुगीन भारत का इतिहास (1938 ई०), धर्म की उत्पत्ति और विकास (1940 ई०), स्वामी दर्पचूर्ण (1940 ई०), बिलासपुर की कहानी (1941 ई०), आनंद शब्दावली (1941 ई०), ग्रामीण समाज (1941 ई०), शिक्षा और देशी भाषाएँ (1941 ई०), दुनिया की शासन-प्रणालियाँ (1941 ई०), हिंदू राज्यतंत्र - II (1942 ई०), अच्छी हिंदी (1942 ई०), नज़र (1943 ई०), चंद्रनाथ (1943 ई०), हिंदी प्रयोग (1946 ई०), शब्दार्थ-विवेचन (1948 ई०), आरक्षिक शब्दावली (1948 ई०), स्थानिक परिषद् शब्दावली (1948 ई०), प्रामाणिक हिंदी कोश (1949 ई०), संक्षिप्त रूपक रत्नावली (1949 ई०), कोशकला (1952 ई०), हिंदी कोश-रचना (1954 ई०), देवलोक (1954 ई०), शब्द-साधना (1955 ई०), राइफल (1958 ई०), मानक हिंदी व्याकरण (1961 ई०),

मानक हिंदी कोश (1962 ई०) जो कुछ वर्ष बाद सन् 1966 ई० तक पाँच खण्डों में प्रकाशित हुआ, शब्द और अर्थ (1965 ई०), शब्दार्थ-मीमांसा (1965 ई०), शब्दार्थक ज्ञानकोश (1967 ई०) और अंतिम कृति शब्दार्थ-दर्शन (1968 ई०) इसके अतिरिक्त भी वर्मा जी की कई अन्य कृतियाँ प्रकाशित हुई थीं किन्तु जिनका आज कोई उपलब्ध सूत्र ज्ञात नहीं होता। कहना न होगा कि ऐसे में वर्मा जी की वे कृतियाँ अब अनाम ही रह गई हैं। उन्हीं में से एक सन् 1930 ई० में प्रकाशित 'अरब और भारत के संबंध' पुस्तक भी है। बहरहाल, इसके अतिरिक्त ज्ञात होता है कि रामचन्द्र वर्मा ने शरतचंद्र चट्टोपाध्याय के बंगला साहित्य का भी हिन्दी में कुछ-एक अनुवाद किया था।

रामचन्द्र वर्मा के कृतित्व पक्ष से परिचित होते हुए वर्मा जी के लिखे दो-एक संस्मरण भी मुझे पढ़ने का अवसर मिला है जिसमें से एक 'सरस्वती' पत्रिका के अगस्त 1956 ई० वाले अंक में 'सुयोग्य पिता की परम सुयोग्य सन्तान' शीर्षक से इलाहाबाद में स्थापित इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लिमिटेड के संस्थापक चिंतामणि घोष के आत्मज हरिकेशव घोष (पटल बाबू) पर लिखा हुआ है, जो वर्मा जी ने पटल बाबू के निधन के बाद उन पर केन्द्रित 'सरस्वती' पत्रिका के श्रद्धांजलि अंक में लिखा था। वहीं महावीर प्रसाद द्विवेदी पर लिखा गया वर्मा जी का एक दूसरा संस्मरण 'आचार्य की विनम्रता और शालीनता' शीर्षक से भारत यायावर के संपादन में निकली पुस्तक 'महावीरप्रसाद द्विवेदी का महत्त्व' (2003 ई०) में संकलित है। इन दोनों संस्मरणों को पढ़ कर रामचन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व और कृतित्व में छिपी उनकी लेखनी के योगदान के कई बहुमूल्य पक्षों का परिचय तो मिलता ही है, साथ में वे अपने दौर के उल्लेखनीय व्यक्ति-चरित्रों की झलक भी अपने पाठकों के सामने प्रस्तुत करते जाते हैं; जिससे वर्मा जी की रचनात्मक ऊर्जा में अंतर्निहित मानवीय गरिमा का भावबोध और स्पष्ट होता जाता है।

यहाँ उपरोक्त उल्लिखित रामचन्द्र वर्मा की रचनाओं और उनके कृतित्व पक्ष को मुख्य रूप से निम्नलिखित चार भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं –

- रामचन्द्र वर्मा का अनुवाद कार्य
- रामचन्द्र वर्मा का मौलिक सृजन
- भाषा और व्याकरण क्षेत्र में रामचन्द्र वर्मा का योग
- रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं का कृतित्व

बहरहाल, आगे हम रामचन्द्र वर्मा के कृतित्व का विश्लेषण क्रमशः उपरोक्त वर्गीकृत भागों के आधार पर ही करने का थोड़ा-बहुत प्रयास करेंगे चूँकि इसी माध्यम से संभवतः वर्मा जी का बहुआयामी रचनात्मक व्यक्तित्व एवं उनके समग्र कृतित्व का बृहत्तर आयाम कुछ न कुछ निर्मित और परिभाषित हुआ है; जिससे जुड़ा अध्ययन रामचन्द्र वर्मा के कृतित्व पक्ष के मूल्यांकन की दृष्टि से अब यहाँ अपेक्षित है।

रामचन्द्र वर्मा का अनुवाद कार्य

आधुनिकता के कुछ आरम्भिक कारकों और नवजागरणकालीन वैश्विक ज्ञानोदय के विस्तार ने रामचन्द्र वर्मा के जीवन काल में ही अर्थात् 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक से 20वीं शताब्दी के आरंभिक कुछ दशकों तक संसार की लगभग सभी समृद्ध भाषाओं के साथ – जिनमें कई आधुनिक भारतीय भाषाएँ भी शामिल हैं – विश्वस्तर का साहित्यिक अपितु सामाजिक-सांस्कृतिक लेखन होने लगा था। हिन्दी में भी ज्ञानोदय के इस कालखण्ड में कई स्तरों पर महत्त्वपूर्ण मौलिक लेखन हो तो अवश्य रहा था किन्तु वह मानव-सभ्यता की सम्पूर्ण वैश्विक-सांस्कृतिक झाँकी प्रस्तुत करने के लिए उस दौर के शिक्षित नागरिक समाज में पर्याप्त नहीं जान पड़ता था। अतः इन्हीं दृष्टियों से उस दौर में भी अनूदित रचनाओं के सहारे अनुवाद-कार्य में बढ़-चढ़ कर हिस्सेदारी करना विद्वानों का एक प्रिय विद्या-व्यसन माना जाता था। ऐसे में रामचन्द्र वर्मा जो स्वयं अपने युवाकाल से ही कई भाषाओं के ज्ञाता और एक विद्वान व्यक्ति थे; उन्होंने अनुवाद-कार्यों के द्वारा हिन्दी के प्रति अपने दायित्व का जो निर्वाह किया और दूसरे स्तर पर अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें इससे जो सक्षमता मिली; वह आज के समय में एक नितांत बौद्धिक कार्यकुशलता ही कहलाएगी। बहरहाल, आगे रामचन्द्र वर्मा द्वारा अनूदित पुस्तकों का उल्लेख करने से पूर्व यहाँ यह कहना उचित होगा कि हो सकता है वर्मा जी ने और भी बहुत कुछ अनुवाद कार्य किया हो किन्तु आज वे सभी कार्य उपलब्ध नहीं होते; अतः शोध के दौरान उनकी जो भी अनूदित रचनाएँ प्राप्त हुई हैं वे इस प्रकार हैं –

- महादेव गोविन्द रानाडे : राजपूत ऐंग्लो-ओरियण्टल प्रेस, आगरा, प्रथमावृत्ति - १९१४ ई०
- आत्मोद्धार : द इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण - १९१५ ई०

- मितव्यय : काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - १९१६ ई०
- छत्रसाल : हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - १९१६ ई०
- मेवाड़-पतन : हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति- १९१६ ई०
- जीवन और श्रम : गाँधी हिन्दी-पुस्तक भण्डार, बम्बई, पहला संस्करण - १९१७ ई०
- आयर्लैण्ड का इतिहास : हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - १९१८ ई०
- राजा और प्रजा : हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - १९१९ ई०
- बलिदान : गाँधी हिन्दी-पुस्तक भण्डार, बम्बई, पहला संस्करण - १९२० ई०
- राणा प्रतापसिंह : हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमवृत्ति - १९२१ ई०
- वर्तमान एशिया : हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - १९२२ ई०
- कर्तव्य : काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - १९२३ ई०
- तरुण भारत : हिन्दी साहित्य मन्दिर, बनारस, पहला संस्करण - १९२३ ई०
- जातक कथा-माला (पहला भाग) : साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण - १९२४ ई०
- प्राचीन मुद्रा : काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - १९२४ ई०
- अकबरी दरबार (पहला भाग) : काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - १९२४ ई०
- लंका-विजय (सिंहल-विजय) : हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - १९२५ ई०
- भारत के स्त्री-रत्न (पहला भाग) : सस्ता साहित्य प्रकाशक मण्डल, अजमेर, पहला संस्करण - १९२५ ई०
- भारतीय स्त्रियाँ : गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, प्रथमावृत्ति - १९२६ ई०
- सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति : हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - १९२७ ई०
- हिन्दू राज्यतंत्र (पहला खण्ड) : काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - १९२७ ई०

- भारत के स्त्री-रत्न (दूसरा भाग) : सस्ता साहित्य प्रकाशक मण्डल, अजमेर, पहला संस्करण - १९२७ ई०
- अकबरी दरबार (दूसरा भाग) : काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - १९२८ ई०
- अरब और भारत के संबंध : हिन्दुस्तानी एकेडेमी (संयुक्त प्रान्त), प्रयाग, पहला संस्करण - १९३० ई०
- संजीवनी विद्या : हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - १९३१ ई०
- हिन्दी दासबोध : हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, प्रथमावृत्ति - १९३२ ई०
- मानस सरोवर और कैलास : काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - १९३५ ई०
- भारत के स्त्री-रत्न (तीसरा भाग) : सस्ता साहित्य प्रकाशक मण्डल, अजमेर, पहला संस्करण - १९३५ ई०
- अकबरी दरबार (तीसरा भाग) : काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - १९३६ ई०
- हिन्दी ज्ञानेश्वरी : हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी, पहला संस्करण - १९३७ ई०
- अंधकारयुगीन भारत का इतिहास : काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - १९३८ ई०
- धर्म की उत्पत्ति और विकास : श्री सयाजी साहित्यमाला (पुष्प-२७०), बडोदा, प्रथमावृत्ति - १९४० ई०
- हिन्दू राज्यतंत्र (दूसरा खण्ड) : काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - १९४२ ई०
- राइफल : प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण - १९५८ ई०

पहले पहल 1909 ई० में रामचन्द्र वर्मा की प्रथम तीन अनूदित पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं, जिनमें से 'काली नागिन' को अत्यंत प्रसिद्धि मिली । यह उपन्यास अंग्रेजी से अनूदित था और इसमें त्रिकोणात्मक प्रेम का बड़ा ही सजीव चित्रण हुआ था । इस पुस्तक

की एक प्रति स्व॰ मुरारीलालजी केडिया के निजी संग्रहालय में आज भी सुरक्षित है।[207] इसके अतिरिक्त सन् 1909 ई॰ में आई रामचन्द्र वर्मा की दो अन्य पुस्तकों में से एक 'कैकयी की जीवनी' और दूसरी 'सीता की जीवनी' थी।

जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे की पत्नी श्रीमती रमाबाई रानाडे द्वारा लिखी गई उनकी मराठी जीवनी 'आमच्या आयुष्यांतीळ कांही आठवणी' (जो श्रीमती रानाडे ने अपनी ज्येष्ठा कन्या सखूताई विद्वांस के आग्रह करने पर अपनी मातृभाषा मराठी में लिखी थी) का हिन्दी-मर्मानुवाद रामचन्द्र वर्मा ने 'महादेव गोविन्द रानाडे' के नाम से सन् 1914 ई॰ में प्रस्तुत किया था। मूल मराठी पुस्तक की प्रस्तावना गोपाल कृष्ण गोखले ने लिखी थी जो हिन्दी अनुवाद में भी शामिल है। अनूदित पुस्तक में रानाडे संबंधी बहुत सी कहानियाँ दी गई हैं। मूलतः इनसे उनके पारिवारिक और 'प्राइवेट' जीवन का पता चलता है। उनकी ईश्वर-भक्ति, विद्याभिरुचि, सादगी, निरभिमानता तथा परिश्रम के अनेक उदाहरण पुस्तक में बार-बार मिलते हैं। बड़े आदमियों की बहुत सी कहानियाँ झूठी भी बन जाया करती हैं। भक्त लोग अनजाने नोन-मिर्च लगा देते हैं। किन्तु इस पुस्तक में लेखक और अनुवादक ने ऐसी बहुत-सी कहानियाँ छाँट कर पुस्तक लिखी है, जिससे इसका मर्म और बढ़ गया जान पड़ता है।

सन् 1915 ई॰ में रामचन्द्र वर्मा अनूदित 'आत्मोद्धार' डॉ॰ बुकर टी॰ वाशिंगटन का आत्मचरित या जीवनी है। जो वस्तुतः स्वयं बुकर टी॰ वाशिंगटन के लिखे हुए 'Up from slavery' नामक उनकी आत्मचरित पुस्तक की सहायता से लिखी गई है अर्थात् 'आत्मोद्धार' भी नीग्रोजाति के नेता बुकर टी॰ वाशिंगटन का एक आत्मचरित ही है। इस पुस्तक के उपोद्धात में 'दासत्व-प्रथा का संक्षिप्त इतिहास' भी दिया गया है; जिसके आधार पर पुस्तक के अनुवादक लिखते हैं कि "शारीरिक परिश्रम करनेवाले लोग जितने अधिक परिश्रमी, सरल, परोपकारी, धार्मिक और जगत का वास्तविक कल्याण करनेवाले होते हैं, उतने केवल मानसिक परिश्रम करनेवाले नहीं।"[208] वहीं पुस्तक की भूमिका में रामचन्द्र

---

[207] बदरीनाथ कपूर, *शब्दब्रह्म के महान उपासक आचार्य रामचन्द्र वर्मा*, हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), *कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग*, वही, पृष्ठ - 165

[208] रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *आत्मोद्धार*, द इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण - 1915 ई॰, भूमिका, पृष्ठ - 2

वर्मा यह उल्लेख करते हैं कि "जिस प्रकार वाशिंगटन के कथनानुसार हबशियों और अमेरिकनों के परस्पर सुहृदयभाव/सद्भाव रखने में ही दोनों का कल्याण है, उसी प्रकार यहाँ (भारत) के हिन्दुओं और मुसलमानों के विषय में भी यही बात कही जा सकती है।"[209] अतः वास्तव में यह पुस्तक 'संसार में जीवित रहने के उद्योग का नाम ही उन्नति है' को प्रस्तुत करने वाली बल्कि 'उन्नति करो, अथवा नष्ट हो जाओ' जैसी धारणा का अभिप्राय प्रकट करने वाली प्रेरक कृति है।

डॉक्टर सेमुअल स्माइल्स साहब की अँगरेजी पुस्तक 'थ्रीफ्ट' का हिन्दी छायानुवाद रामचन्द्र वर्मा ने सन् 1916 ई० में 'मितव्यय' नाम से प्रस्तुत किया था। इस पुस्तक में धन के सदुपयोग और दुरुपयोग पर विचार किया गया है अर्थात् पुस्तक में कई स्थानों पर यह दिखलाने की चेष्टा की गई है कि धन का सदुपयोग मनुष्य को उदार, विचारवान और न्यायशील बना देता है; उसे इंद्रिय-निग्रह की शिक्षा देता है और सब प्रकार से उसे सम्मान और आदर के योग्य बनाता है।[210] बहरहाल, इस पूरी पुस्तक के पंद्रह प्रकरणों में विशद रूप से मितव्यय से होनेवाले लाभ तथा अमितव्यय से होनेवाले दोष समझाए गए हैं। रामचन्द्र वर्मा उल्लेख करते हैं कि इसके मूल लेखक ने तो अँगरेजी पुस्तक की अपनी भूमिका में कहा है कि "यह पुस्तक इस उद्देश्य से लिखी गई है कि इसे पढ़कर लोग अपने उपार्जित किए हुए धन को केवल अपने मजे के लिए नष्ट न कर दें वरन् उसका सदुपयोग करना तथा उसे भले कामों में लगाना सीखें, लेकिन इस शिक्षा ग्रहण करने और उसके अनुसार कार्य करने में आलस्य, अविचार, अहंकार, दुर्गुण आदि अनेक शत्रुओं का सामना करना पड़ता है।"[211] अतः इस पुस्तक के आरंभ में ही यह दिखलाया गया है कि जो मनुष्य मितव्यय करता है, वही सर्वसाधारण का बहुत कुछ उपकार भी कर सकता है।

रामचन्द्र वर्मा अनूदित 'छत्रसाल' बुन्देलखण्ड-केसरी छत्रसाल के ऐतिहासिक चरित्र के आधार पर लिखा हुआ देशभक्तिपूर्ण उपन्यास है। जो श्रीयुक्त बालचन्द नानचन्द शहा वकील के मूल मराठी उपन्यास 'छत्रसाल' का हिन्दी अनुवाद है। यह बुन्देलखण्ड को

---

[209] वही, भूमिका, पृष्ठ - 3

[210] रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *मितव्यय*, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 1916 ई०, भूमिका, पृष्ठ - 5

[211] वही, भूमिका, पृष्ठ - 8

स्वतंत्रता दिलाने वाले वीर-केसरी छत्रसाल के चरित्र के आधार पर लिखा हुआ अत्यन्त रोचक, उत्कण्ठावर्द्धक और घटनाओं का चित्र्यपूर्ण वर्णन करने वाला एक बहुत ही रोचक उपन्यास है; जिसके प्रत्येक पाठ से देशभक्ति, आत्माभिमान और वीरता जैसे भाव बार-बार प्रकट होते हैं। यही कारण है कि रामचन्द्र शुक्ल अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में इसके बारे में लिखते हैं कि "मराठी से अनूदित उपन्यासों में बाबू रामचंद्र वर्मा का 'छत्रसाल' बहुत उत्कृष्ट है।"[212] जिसका कथानक छब्बीस प्रकरणों में विभक्त है, और उक्त विषयवस्तु के कारण जिसकी गिनती सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों में की जाती है।

'मेवाड़-पतन' बंग-लेखक द्विजेन्द्रलाल राय के अपूर्व ऐतिहासिक नाटक का ही किया गया हिन्दी अनुवाद है। यह नाटक मेवाड़ के राणा अमरसिंह और बादशाह जहाँगीर के इतिहास के आधार पर लिखित है। इसके पात्र दाम्पत्य प्रेम, जातीय प्रेम और विश्वप्रेम के सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं। रामचन्द्र वर्मा ने इसका अनुवाद सन् 1916 ई॰ में हिन्दी के पाठकों के लिए प्रस्तुत किया था। बहरहाल, नाटक के मूल बंग-लेखक के कथनानुसार "यह नाटक एक महान सिद्धान्त – विश्वप्रेम – के उद्देश्य को लेकर लिखा गया है। इसमें कल्याणी, सत्यवती और मानसी इन तीन पात्रों के चरित्र क्रम से दाम्पत्य प्रेम, जातीय प्रेम और विश्वप्रेम की मूर्तियों के रूप में कल्पित किए गए हैं। इस नाटक का मुख्य उद्देश्य विश्वप्रेम की गरिमा और महत्ता प्रकट करना है।"[213] जो इस नाटक में पात्रों के साथ अभिव्यक्त ऐतिहासिक घटनाक्रमों के माध्यम से कथानक और संवाद को जीवंत बना देता है। अतः बंगला से अनूदित यह एक ऐसा प्रभावी नाटक है जो अपने पाँच अंकों की दृश्य प्रस्तुति में मूलतः हिन्दी रंगमंच संसार को एक उदात्त भावनात्मक उत्कृष्टता प्रदान करता है।

'जीवन और श्रम' अँगरेजी के प्रसिद्ध लेखक डॉ॰ सेमुअल स्माइल्स की पुस्तक 'लाइफ एण्ड लेबर' का हिन्दी अनुवाद है; जिसका अनुवाद वर्मा जी ने सन् 1917 ई॰ में प्रस्तुत किया था। पूरी पुस्तक दस प्रकरणों में विभक्त है, जो जीवन में परिश्रम के महत्त्व पर महापुरुषों की जीवनगाथाओं को अपने संक्षिप्त विवरणों के माध्यम से आदमी और भला

---

[212] रामचन्द्र शुक्ल, *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण - 2010 ई॰, पृष्ठ - 342

[213] रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *मेवाड़-पतन*, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - 1916 ई॰, भूमिका, पृष्ठ - 4

आदमी, बड़े आदमी बड़े कर्मण्य होते हैं, युवक महापुरुष, वृद्ध महापुरुष, गुण और प्रतिभा का वंशानुक्रमण, साहित्यिक रोग या बहुत अधिक मानसिक श्रम, स्वास्थ्य और मनोविनोद, शहर और देहात, विवाहित और अविवाहित – सहायक अर्द्धांग और जीवन-संध्या – महात्माओं के अन्तिम विचार जैसे विभिन्न वैचारिक सोपानों को भारतीय जीवन दृष्टि के अनुभवों के सम्मिश्रण के साथ अभिव्यक्त करता है। यहाँ यह कहना उल्लेखनीय होगा कि 'जीवन और श्रम' जैसी अनूदित पुस्तक की प्रस्तुति से वर्मा जी ने भारतीय मानस के उस भावनात्मक मर्म को पहचान लिया है, जो मानवीय आदर्शों को अपनाने में ऐसी उत्कृष्ट कृतियों के अनुगमन का रास्ता सहजता से स्वीकार कर लेता है। अतः आज के समय में भी ऐसी पुस्तकों की पाठकीय उपादेयता बनी हुई है।

रामचन्द्र वर्मा अनूदित 'आयर्लैण्ड का इतिहास' स्वराज्यवादियों के लिए अवश्य पठनीय पुस्तक है। ऐसे तो उक्त 'आयर्लैण्ड का इतिहास' सभी पराधीन जातियों के लिए शिक्षाप्रद है; परन्तु भारतवासियों के लिए तो यह बहुत ही उपकारक और सच्चा मार्गदर्शक जान पड़ता है। यह पुस्तक अँगरेजी 'मराठा' और मराठी 'केसरी' के सुप्रसिद्ध संपादक श्रीयुक्त नरसिंह चिन्तामणि केलकर के मराठी ग्रन्थ का सन् 1918 ई० में प्रस्तुत किया गया हिन्दी अनुवाद है। इस पुस्तक में आयर्लैण्ड का संक्षिप्त राजकीय इतिहास, आयरिश लोगों के स्वतंत्रता-संबंधी आन्दोलनों का वर्णन तथा उनके संबंध में तात्त्विक विवेचन किया गया है और राजनीतिक दृष्टि से आयर्लैण्ड और हिन्दुस्तान की तुलना की गई है। वर्मा जी इस पुस्तक के बारे में लिखते हैं कि "देशभक्त केलकर का यह ग्रन्थ किसी आयरिश या अँगरेज लेखक के विचारों का अनुवाद नहीं है, किन्तु अँगरेजी के विविध लेखकों के लिखे हुए लगभग ४० ग्रन्थों का गहरा अध्ययन तथा मनन करके और हिन्दुस्तान की परिस्थितियों को हृदयस्थ करके बिलकुल स्वतंत्र रीति से लिखा हुआ प्रकृत इतिहास है और इस लिए यह भारतवासियों के लिए बहुत ही महत्त्व की चीज़ है।"[214] ऐसे में स्वतंत्रता आंदोलन के समय घटित होने वाली इन दोनों देशों में जो कुछ नई उल्लेख योग्य बातें हैं, उन सबको भी अनुवादक ने इस पुस्तक के अनुवाद में समाविष्ट करने का प्रयत्न किया है। इस तरह कह

[214] रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *आयर्लैण्ड का इतिहास*, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथम आवृत्ति - 1918 ई०, निवेदन, पृष्ठ - 1

सकते हैं कि इस अनुवाद से लोगों को तत्कालीन स्वतंत्रता आंदोलन के अपने प्रयत्नों में भी थोड़ी बहुत सहायता मिले और उनके लिए यह उपयोगी हो, इसी विचार से उस समय इस पुस्तक का अनुवाद प्रकाशित किया गया था।

बंगला में 'राजा और प्रजा' रवीन्द्रनाथ ठाकुर के राजनीतिक निबंधों का एक संकलन है; जिसका हिन्दी अनुवाद रामचन्द्र वर्मा ने सन् 1919 ई॰ में प्रकाशित कराया था। यह निबंधावली राजा और प्रजा के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करने वाले 11 राजनीतिक निबंधों को प्रस्तुत करती है। हिन्दी के राजनीतिक साहित्य में यह पुस्तक अपूर्व चीज़ बन पड़ी थी। इस तरह यह बड़ी ही मार्मिक और गंभीर शैली की प्रवाहमयी रचना है। जो रवीन्द्रनाथ ठाकुर के राजनीति संबंधी विचारों का संकलन है। इसके हिन्दी अनुवाद के माध्यम से पाठकों को जगत प्रसिद्ध कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर की सर्वतोमुखी प्रतिभा का दर्शन होगा प्रकाशक का ऐसा ही विचार था; जिससे पाठक भी देखेंगे कि रवीन्द्र बाबू का राजनीतिक ज्ञान कितना गंभीर, कितना प्रौढ़ और कितना उन्नत है। इस तरह राजनीति के क्षेत्र में काम करने वालों और अपने प्यारे देश की उन्नति चाहने वालों के लिए ये निबंध पथ-प्रदर्शक का काम करने वाले हैं।

बंगला महाकवि गिरिशचंद घोष के एक बहुत ही कारुणिक सामाजिक नाटक 'बलिदान' का रामचन्द्र वर्मा द्वारा किया गया हिन्दी अनुवाद सन् 1920 ई॰ में प्रकाशित हुआ था। इस नाटक में जाति और समाज की दुर्दशा का हृदय विदारक कारुणिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। यह नाटक पाँच अंकों और उनमें प्रस्तुत कई दृश्यों में विभक्त किया गया है; जिसके पात्रों में भारत की सामाजिक-व्यवस्था की झलक मिलती है। साथ में इन्हीं पात्रों के माध्यम नाटककार ने भी सामाजिक प्रथाओं, उसको पोषित करने वाले कर्मकांडों और जातीय मर्यादाओं की दुर्दशा को रेखांकित किया है। बहरहाल, इस नाटक के अनुवाद में भी मौलिक रचनात्मक संवादों का रसास्वाद मिलता है।

सन् 1921 ई॰ में रामचन्द्र वर्मा ने बंग-नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय के बंगला नाटक 'राणा प्रतापसिंह' का अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत किया था। यह नाटक महाराणा प्रतापसिंह और अकबर के ऐतिहासिक जीवन-चरित्र पर आश्रित है; जिसके कथानक में प्रतापसिंह का नायकत्व अपने समय का एक दुर्लभ आदर्श-चरित्र है। इस नाटक में महाराणा प्रताप, उनके

भाई शक्ति सिंह, राजकवि पृथ्वीराज, उनकी स्त्री जोशीबाई, अकबर की कन्या मेहरुन्निसा और भानजी दौलतुन्निसा आदि पात्रों के चरित्र एक अपूर्व ढंग से चित्रित किए गए हैं। नाटक के हिन्दी संस्करण की भूमिका में कहा गया है कि "इस नाटक में यों तो प्रतापसिंह का जो चरित्र चित्रित किया गया है, उसमें इतिहास का बहुत ही कम उल्लंघन किया गया है – वह प्रायः इतिहास का ही अनुधावन करता है; किन्तु फिर भी उन्होंने उसे बहुत ही उज्ज्वल और महत् बना दिया है और इतिहास की लगाम को मानते हुए किसी चरित्र को इतना ऊँचा उठा देना साधारण कलम का काम नहीं है। हमारा साधारण सुपरिचित इतिहास अकबर के चरित्र के उस पहलू को – जिसके कारण खुशरोज वाली घटना घटित हुई थी – इस रूप में हमारे सामने नहीं रखता है जिस रूप में इस नाटक ने रक्खा है और इस कारण बहुत से दर्शक और पाठक इससे असंतुष्ट होते हैं; परन्तु इस विषय में यदि वे तटस्थ होकर विचार करें और उन सब घटनाओं की बारीकी से जाँच करें जिन्हें इतिहास स्वीकार करता है, तो उन्हें अकबर-चरित्र का यह पहलू अवास्तविक नहीं जान पड़ेगा।"[215] बहरहाल, ऐतिहासिक बातों के इस अंतर्विरोध के संबंध में नाट्याचार्य द्विजेन्द्रलाल राय ने भी प्रतापसिंह की भूमिका में थोड़ी-सी कैफ़ियत दे दी है; जिसका हिन्दी अनुवाद यह है – "जो लोग चिल्लाते हैं कि इसमें ऐतिहासिक सत्य की रक्षा नहीं हुई, वे मानों ऐतिहासिक सत्य के विषय में तत्त्ववेता रस्किन के विचारों का पाठ करते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि कभी-कभी ऐतिहासिक घटना के संबंध में, लड़ने वाले दोनों पक्षों की रिपोर्ट में से कौन-सी सच है, इसका निर्णय करना असंभव हो जाता है। 'पोर्ट आर्थर' संबंधी घटनाएँ इसका एक उदाहरण है। सुना है, एक फरांसीसी लेखक ने यहाँ तक लिखा है कि ट्राफलगर के युद्ध में फरांसीसों की विजय हुई थी।"[216] यहाँ द्विजेन्द्रलाल राय की यह कैफ़ियत उन ऐतिहासिक बातों के संबंध में जान पड़ती है जिन्हें उन्होंने जान बूझकर परिवर्तित किया है और जिनके विषय में उनकी धारणा हो गई थी कि वे वैसी ही हैं। जैसे कि खुशरोज के मेले में अकबर के द्वारा राजपूत स्त्रियों का सतीत्व नष्ट किया जाना। यही इस नाटक में शामिल भी किया गया है। बहरहाल, ज्ञात हो कि नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय ने रंगमंच या थियेटर के दर्शकों को

---

[215] रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *राणा प्रतापसिंह*, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथम आवृत्ति - 1921 ई०, भूमिका, पृष्ठ - 1

[216] वही, भूमिका, पृष्ठ - 5

हँसी मज़ाक और शृंगार रस की सामग्री जुटाने के लिए लेखनी नहीं पकड़ी थी। उनका उद्देश्य महान था और वह यह था कि देश को जातीयता की ओर अग्रसर किया जाए। अतः इतिहास में जातीय जीवन की 'ट्रेजेडी' (दुखांत घटनाओं) से भी उन्होंने मुँह नहीं मोड़ा है। इसके अतिरिक्त यहाँ यह बतलाना उल्लेखनीय जान पड़ता है कि इस नाटक में आए नाट्यगीतों का सरस अनुवाद रामचन्द्र वर्मा के आग्रह पर स्वयं कवि-नाटककार जयशंकर प्रसाद ने प्रस्तुत किया है।

रामचन्द्र वर्मा द्वारा सन् 1922 ई० में प्रस्तुत 'वर्तमान एशिया' पुस्तक हर्बर्ट एडम्स गिब्बन्स के 'The New Map of Asia' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद है। ज्ञात होता है कि पाश्चात्य जातियों ने एशिया के अनेक देशों, प्रान्तों और अगणित द्वीपों पर जिन धूर्तताओं, छलकपटों, अत्याचारों और झूठे प्रलोभनों से अपना अधिक विस्तार किया और बाद में उन्होंने एशिया के जिन अनेक बड़ी-बड़ी जातियों को अपना गुलाम बनाया उसका सारा कच्चा चिट्ठा इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक के प्राक्कथन में बाबूराव विष्णु पराड़कर लिखते हैं कि "खेद का विषय है कि हिन्दी में अब तक अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य का इतना अधिक अभाव है कि केवल हिन्दी जानने वालों के लिए इस महत्त्व के विषय पर विचार करना ही असम्भव सा हो गया है। अमेरिकन राजनीतिज्ञ एच० ए० गिबन्स की 'THE NEW MAP OF ASIA' नामक पुस्तक के आधार पर श्री बाबू रामचन्द्र वर्मा ने यह पुस्तक (वर्तमान एशिया) लिखकर वह अभाव अंशतः दूर कर दिया है।"[217] अतः इस पुस्तक के माध्यम से साधारण लिखे-पढ़े लोगों की समझ में आने योग्य सरल भाषा में जटिल विषय समझाने का वर्मा जी ने जो प्रयत्न किया है, वह वस्तुतः बहुत कुछ सफल कहा जा सकता है। यों तो इसमें वर्णित विषय बहुत बड़ा और पुस्तक की प्रस्तुति का दायरा बहुत छोटा है; चूँकि इस पुस्तक के एक-एक अध्याय पर बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। फिर भी अपनी अल्प सीमा के भीतर ही एक जटिल विषय को इसमें जहाँ तक समझाना सम्भव था, वहाँ तक अवश्य समझाया गया है। किन्तु ऐसे उत्कृष्ट विषय पर हुए इस लेखन में एक प्रकार का मतैक्य होना सम्भव नहीं रह जाता तथापि वर्मा जी ने

[217] रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *वर्तमान एशिया*, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - 1922 ई०, प्राक्कथन, पृष्ठ - 5-6

भारतीय हितों की दृष्टि से इन विषयों पर किस प्रकार विचार होना चाहिए, इसकी दिशा इस पुस्तक में अवश्य प्रस्तुत कर दी है; जिससे तब के स्वराज्य प्रयासियों में अन्तर्राष्ट्रीय फलक पर भारतीय स्वातंत्र्य विषयक राजनीति के योग्य संबंध के कारण इस पुस्तक का यथोचित आदर होना स्वाभाविक था। अतः आज भी ऐसी पुस्तकों से उस समय की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक हलचलों को जाना जा सकता है।

सन् 1923 ई॰ में प्रस्तुत रामचन्द्र वर्मा की 'कर्तव्य' शीर्षक पुस्तक वास्तव में वर्माजी की अनूदित रचना है अथवा मौलिक कृति यह उसे पढ़ कर ठीक-ठीक ज्ञात नहीं होता। न ही वर्माजी की अनूदित पुस्तकों में इसका कहीं पर उल्लेख ही मिलता है। ऐसे में जबकि काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की 'मनोरंजन पुस्तकमाला' के अंतर्गत प्रस्तुत यह ४१वाँ ग्रन्थ है – जिसके आवरण पृष्ठ पर इसे सेमुअल स्माइल्स की 'ड्यूटी' नामक पुस्तक के आधार पर लिखित बतलाया गया है। अतः इसे भी वर्मा जी के द्वारा किए गए अनुवाद की श्रेणी में ही रखना चाहिए। यह पूरी पुस्तक अपने नौ प्रकरणों और अंत में दिए गए उपसंहार में वर्णित है; जिसकी भाषा और विषय प्रस्तुति से मौलिक रचनात्मकता की अनुभूति होती है। इस पुस्तक को लेखक ने सांसारिक जीवन में कर्तव्य निर्वाह के दायित्वों को कुछ मानवीय पहलुओं के साथ घटित होने वाले उसके विभिन्न आयामों के अंतर्गत अभिव्यक्त किया है; जिससे पुस्तक की विषयवस्तु पठनीय हो गई है।

रामचन्द्र वर्मा अनूदित पुस्तक 'तरुण भारत' 1923 ई॰ में प्रकाशित हुई थी। यह पुस्तक अमेरिका में रह कर लिखी गई लाला लाजपतराय की 'Young India' नामक पुस्तक पर आधारित है; जिसकी भूमिका में वर्मा जी यह उल्लेख करते हैं कि "इस पुस्तक में इस देश (भारत) की राजनीतिक अवस्था का चित्र खींचा गया है और राजनीतिक आन्दोलन का सच्चा इतिहास तथा स्वरूप बतलाया गया है। इस पुस्तक को पढ़ते समय पाठकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यह पुस्तक अमेरिका में बैठकर वहाँ के लोगों को भारतवर्ष की वास्तविक अवस्था का परिचय कराने के उद्देश्य से लिखी गई है। दूसरे इस बात का भी ध्यान रहना चाहिए कि यह पुस्तक आज (सन् 1923 ई॰) से सात-आठ वर्ष पहले लिखी गई थी।"[218] लेकिन फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि अनेक

[218] रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *तरुण भारत*, हिन्दी साहित्य मन्दिर, बनारस, पहला संस्करण - 1923 ई॰, भूमिका, पृष्ठ - 3

दृष्टियों से यह पुस्तक आज भी उतनी ही अधिक उपयोगी और मनन करने योग्य है, जितनी यह लिखी जाने अथवा पहली बार प्रकाशित होने के समय में रही होगी; जिसका मुख्य कारण यह है कि इसमें हमारे देश भारत के राजनीतिक आन्दोलन का राष्ट्रीय दृष्टि से लिखा हुआ इतिहास है । वास्तव में लाला लाजपतराय अपने समय के एक अनुभवी और कार्यकुशल नेता थे। उनके द्वारा लिखा हुआ राष्ट्रीय आन्दोलन का यह इतिहास नए लोगों को मार्ग दिखलाने, उन्हें पुरानी भूलों से बचाने एवं उन्हें अधिक सतर्क बनाकर इस कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने में बहुत कुछ सहायक हो सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है। और वस्तुतः इसी उद्देश्य से वर्मा जी ने उस समय इस पुस्तक को हिन्दी में प्रकाशित किया जाना आवश्यक समझा था। किन्तु यह पुस्तक लाला लाजपतराय की मूल पुस्तक का अक्षरशः अनुवाद नहीं है, बल्कि इसमें उसकी केवल मुख्य-मुख्य बातें संक्षिप्त रूप से दे दी गई हैं। वर्माजी 'तरुण भारत' की भूमिका में बतलाते हैं कि अनूदित पुस्तक में विशेषतः वे अंश तो छोड़ दिए गए हैं जो किसी कारण से उस समय आपत्तिजनक समझे गए थे। फिर भी, काम की जितनी बातें थीं, वे सब बातें प्रस्तुत पुस्तक में ले ली गई हैं; कोई आवश्यक बात छोड़ी नहीं गई; जिससे इस पुस्तक की उपादेयता आज भी वैसी ही बनी हुई है।

रामचन्द्र वर्मा अनूदित जातक कथा-माला (पहला भाग) गौतम बुद्ध के पूर्व जन्मों की मनोहर और शिक्षाप्रद कहानियों का संग्रह है। जो विशेषतः बच्चों और नवयुवकों के लिए बहुत उपयोगी है। यह अनुवाद वर्मा जी ने सन् 1924 ई॰ में अपने प्रकाशन साहित्य रत्नमाला कार्यालय से प्रकाशित किया था। बौद्धों के अधिकांश धम्म-ग्रन्थों की तरह मूल जातक भी पालि भाषा में हैं। रामचन्द्र वर्मा अनूदित जातक कथा-माला (पहला भाग) की भूमिका से जान पड़ता है कि प्राचीन काल में इन गाथाओं का उपयोग बहुत कुछ कहावतों आदि के समान हुआ करता था; और जो लोग पूरे जातक अथवा कथाएँ नहीं याद रख सकते थे, वे समय-समय पर यही गाथाएँ कह कहकर काम चलाते थे। यद्यपि बौद्धों का यही विश्वास है कि जितने भी जातक हैं वे सब स्वयं गौतम बुद्ध के कहे हुए हैं, तथापि प्राचीन साहित्यों के कई अन्य आधुनिक विद्वान यह बात नहीं मानते। और उनके ऐसा न मानने के पीछे अनेक प्रश्न भी हैं। उनमें से एक सबसे बड़ा प्रश्न यहाँ यह है कि सब जातकों की भाषा एक सी क्यों नहीं मिलती है ? जिसका कारण विद्वानों ने यह माना है कि ये सब जातक अलग-अलग समय में रचे गए हैं । अतः जातक कथाओं में क्षेपक कथाएँ भी

अवश्य ही मिलती गई हैं। फिर भी रामचन्द्र वर्मा ने इन जातक कथाओं का अनुवाद करते हुए बौद्धों के पारिभाषिक शब्दों को बचाए रखने का पूरा प्रयास किया है; पर जो शब्द इस अनुवाद में नहीं बचाए जा सके हैं, उनकी व्याख्या भी साथ ही साथ दे दी गई है। अन्त में यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यह जातक कथा-माला ग्रन्थ किन्हीं फोस्बेल द्वारा सम्पादित 'जातकार्थवर्णना' के आधार पर लिखे हुए श्रीयुक्त ईशानचन्द्र घोष वाले बँगला जातक तथा फ्रान्सिस और थामस कृत अँगरेजी 'Jataka Tales' की सहायता से तैयार किया गया है, जिसमें से रामचन्द्र वर्मा ने कुल ४५ जातक कथाओं का संग्रह हिन्दी अनुवाद में नवयुवकों और विद्यार्थियों के लिए प्रस्तुत किया है।

श्रीयुक्त राखालदास वंद्योपाध्याय की बँगला पुस्तक का हिन्दी अनुवाद रामचन्द्र वर्मा ने 'प्राचीन मुद्रा' नाम से सन् 1924 ई० में प्रस्तुत किया था। जो काशी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला के ६वें ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया गया था। इस पुस्तकमाला के संपादक गौरीशंकर हीराचंद ओझा थे। पुस्तक लेखक राखालदास वंद्योपाध्याय ने इसकी भूमिका में बतलाया है कि "लिपिबद्ध ऐतिहासिक घटनाओं की तरह प्राचीन सिक्के भी लुप्त इतिहास का उद्धार करने का एक साधन हैं। ...जिन देशों में प्राचीन काल का लिखा हुआ इतिहास नहीं मिलता, उन देशों में जनप्रवाद, विदेशी यात्रियों के भ्रमण-वृत्तान्तों, प्राचीन शिलालेखों और ताम्रलेखों तथा साहित्य के आधार पर ही लुप्त इतिहास का उद्धार करना पड़ता है। ऐसे देशों के प्राचीन सिक्के इतिहास तैयार करने का एक प्रधान उपकरण होते हैं।"[219] इसलिए लेखक की मान्यता है कि जो लोग भारत की ऐतिहासिक बातों का अनुसंधान करना चाहते हैं, उनके लिए यहाँ के प्राचीन सिक्के भी बहुत ही आवश्यक और काम के हैं। इसी दृष्टि से विचारणीय मुद्रातत्त्व (Nuimismatics) के संबंध में प्रस्तुत पुस्तक के ढंग के ग्रन्थ भारतीय भाषाओं में बहुत ही कम हैं। इस ग्रन्थ में ऐतिहासिक युग के आरंभ से लेकर उत्तरापथ और दक्षिणापथ में मुसलमानों के विजय-काल तक के पुराने सिक्कों का वैज्ञानिक और क्रमबद्ध विस्तृत विवरण दिया गया है। लेखक ने पुस्तक के दूसरे भाग में भारतवर्ष के मुसलमानों के राजस्व काल के सिक्कों का विवरण देने की इच्छा व्यक्त की है। किन्तु मुसलमानों के सिक्कों का

[219] रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *प्राचीन मुद्रा*, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 1924 ई०, भूमिका, पृष्ठ - 1

इस 'प्राचीन मुद्रा' पुस्तक के प्रथम भाग से संबंध न होने की स्थिति में उनके विषय में यहाँ कुछ भी कथन करना अनावश्यक ही होगा। यह पूरी पुस्तक बारह परिच्छेदों में विभक्त है; जिसके अंतिम भाग में दी गई सिक्कों की ऐतिहासिक चित्र-सूची में क्रमबद्ध रूप से सिक्कों के चित्र देकर उनका चित्रवत साक्ष्य और विवरण प्रस्तुत किया गया है। बहरहाल, राखालदास वंद्योपाध्याय पुस्तक की भूमिका में इस बात का उल्लेख भी करते हैं कि "रैप्सन के ग्रन्थ (कैम्ब्रिज के अध्यापक रैप्सन ने अँगरेजी में 'भारतीय मुद्रा' नामक एक छोटा-सा ग्रन्थ तैयार किया था) के अतिरिक्त संसार की और किसी भाषा में भारतीय मुद्रातत्त्व का ठीक-ठीक विवरण नहीं लिखा गया। इसलिए इस ग्रन्थ में मैंने (पुस्तक लेखक राखलदास वंद्योपाध्याय) यथासाध्य वैज्ञानिक रीति से और वर्तमान काल तक भारतीय मुद्रातत्त्व की आलोचना करने की चेष्टा की है।"[220] जिसकी रचना लेखक ने अध्यापक बुहलर (G. Buhler) के 'भारतीय प्राचीन लिपितत्त्व' नामक ग्रन्थ के ढंग पर पूर्ण किया है। ऐसे में मुद्रातत्त्व विषयक लेखन का हिन्दी में सर्वथा अभाव होने के कारण रामचन्द्र वर्मा ने इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर आने वाली पीढ़ी के पाठकों की नज़र से देखें तो हिन्दी की अनुपम सेवा की है। और ऐसे में वर्माजी का समस्त अनुवाद कार्य ही हिन्दी पाठकों के प्रति अनुपम सेवा भाव का परिणाम प्रतीत होती है।

उर्दू, फ़ारसी आदि के सुप्रसिद्ध विद्वान शम्सुल उल्मा मौलाना मुहम्मद हुसेन साहब आज़ाद कृत 'दरबारे अकबरी' का रामचन्द्र वर्मा ने तीन भागों में 'अकबरी दरबार' नाम से अनुवाद किया है; जिसका पहला भाग सन् 1924 ई०, दूसरा भाग सन् 1928 ई० और तीसरा भाग सन् 1936 ई० में सूर्यकुमारी पुस्तकमाला के अंतर्गत काशी नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुआ है। बहरहाल, इनमें बादशाह अकबर की जीवनी विस्तार के साथ देकर यह बतलाया गया है कि उसने कैसे-कैसे युद्ध किए, अपने शासन में किस प्रकार राज्य-व्यवस्था चलाई और उसके धार्मिक विश्वास आदि कैसे थे; जिससे बादशाह अकबर के दरबार और उसके वैभव का विस्तृत परिचय मिल जाता है। ऐसे में यह प्रत्येक साहित्येतिहास-प्रेमी के काम की पुस्तक है। इसमें मुग़ल बादशाह अकबर के प्रसिद्ध दरबारियों की जीवनियाँ और कुछ-एक ख़ास-ख़ास घटनाओं का वर्णन भी दे दिया गया

[220] वही, लेखक की भूमिका, पृष्ठ - 3

है। किन्तु इसके अनुवादक रामचन्द्र वर्मा लिखते हैं कि "इस ग्रन्थ का महत्त्व ऐतिहासिक की अपेक्षा साहित्यिक ही अधिक है और इसके कुछ विशेष कारण हैं। इस ग्रन्थ में अनेक बातें ऐसी हैं जिनसे सब लोग सहसा सहमत नहीं हो सकते और जिनके संबंध में बहुत कुछ आपत्ति की जा सकती है।"[221] अतः 'अकबरी दरबार' जैसे ग्रन्थ की तात्कालिक पाठकीय उपादेयता आज के समय में पहले जैसी नहीं कही जा सकती।

लंका-विजय (सिंहल-विजय) बंग-नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय का ऐतिहासिक नाटक है; जिसका हिन्दी अनुवाद रामचन्द्र वर्मा ने सन् 1925 ई० में प्रस्तुत किया था। यह पूरा नाटक पाँच अंकों में समाहित कई दृश्यों में विभक्त है। वैसे यह नाटक द्विजेन्द्रलाल राय की अन्तिम रचना है; जिस कारण नाटककार की मृत्यु के लगभग डेढ़ वर्ष बाद यह नाटक प्रकाशित हुआ और रंगमंच पर खेला गया। चूँकि इस नाटक के केवल (तृतीय अंक के पहले दृश्य और चतुर्थ अंक के द्वितीय दृश्य के) दो ही गीत नाटककार ने अपने हाथ से लिखे थे, शेष गीत उनके एक मित्र ने उन्हीं की लिखी कुछ अन्य रचनाओं में से चुनकर रख दिए हैं। इस नाटक के पाँचवें अंक के विषय में तब यह चर्चा उठी थी कि उसे स्वयं नाटककार ने नहीं, बल्कि किसी और ने रचा है, परन्तु द्विजेन्द्रलाल राय के सुपुत्र दिलीप कुमार राय इस चर्चा को निर्मूल बतलाते हुए कहते हैं कि पंचम अंक की हस्तलिपि उनके पास मौजूद है जिसमें अवश्य ही पितृदेव (द्विजेन्द्रलाल राय) अपनी मृत्यु से पहले नाटक के इस अंक की पुनरालोचना करने का समय नहीं पा सके, जिस कारण यह अन्यान्य अंकों के समान सुन्दर नहीं हो सका है।[222] वहीं ज्ञात होता है कि यह नाटक पहले तुकान्तहीन पद्यों में लिखा गया था, किन्तु एक सहृदय मित्र के द्वारा सम्मति पाकर कि 'आपके गद्य में जितना बल है, उतना पद्य में नहीं' द्विजेन्द्रलाल राय ने इस नाटक को गद्य में ही लिखकर प्रस्तुत कर दिया। परन्तु इसमें संशोधन और परिवर्तन करने का कार्य समाप्त नहीं हो पाया और उन्हें मृत्यु ने घेर लिया। अगर अन्य नाटकों की तरह इस नाटक में भी सुधार करने का उन्हें कुछ अन्तिम समय मिल जाता तो यह और भी अपूर्व हो जाता। फिर भी यह कहा जा सकता है

---

[221] रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *अकबरी दरबार (पहला भाग)*, नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 1924 ई०, निवेदन

[222] रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *लंका-विजय*, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - 1925 ई०, वक्तव्य

कि 'सिंहल-विजय' (पहले यह नाटक इसी नाम से छपा) में भी स्वाभाविक रचना-कौशल विद्यमान है; जिसमें जगह-जगह नाटकोचित चौंका देने वाली घटनाओं का समावेश है, कवित्त्व का उच्छवास है और इसमें भी अनेक पात्र एक-एक भावुक कवि ठहरते हैं। इस नाटक के गीतों का हिन्दी अनुवाद सुकवि श्रीयुक्त रामचरित उपाध्याय ने किया है, जिसके साथ में चतुर्थ अंक के अष्टम दृश्य में जो गीत और पंचम अंक के अन्त में जो छप्पय प्रकाशित हुआ है, वह अनुवादक रामचन्द्र वर्मा का ही बनाया हुआ है।

रामचन्द्र वर्मा द्वारा अनूदित 'भारत के स्त्री-रत्न' ग्रन्थ वास्तव में वैदिक काल से शुरू होकर आधुनिक काल तक की प्रायः सब धर्मों की आदर्श, पातिव्रत्य परायण, विद्वान और भक्त कोई 500 स्त्रियों का जीवन-वृत्तान्त संकलित किए जाने की योजना का एक भाग है। हिन्दी में उस समय तक कोई इतना बड़ा ग्रन्थ नहीं निकला था। इसमें पाँच भागों की योजना थी किन्तु इसके केवल तीन भाग ही पाठकों को उपलब्ध हुए थे। 'भारत के स्त्री-रत्न' नामक यह ग्रन्थ वास्तव में लेखक श्री शिवप्रसाद दलपतराम पंडित के गुजराती ग्रन्थ 'भारतना स्त्री रत्नो' पर आधारित हिन्दी अनुवाद है, जिसका अनुवाद रामचन्द्र वर्मा और शंकरलाल वर्मा ने हिन्दी पाठकों के लिए प्रस्तुत किया था। इस ग्रन्थ का पहला भाग सन् 1925 ई०, दूसरा भाग सन् 1927 ई० और तीसरा भाग सन् 1935 ई० में प्रकाशित हुआ था; जिसके पहले ही भाग में वैदिक काल के कुछ-एक स्त्री रत्नों का परिचय है और दूसरे में रामायण-महाभारत तथा पौराणिक काल के स्त्री चरित्र दिए गए हैं। जैन और बौद्ध काल के स्त्री रत्नों का उल्लेख तीसरे भाग में किया गया है। वैसे इसके अनुवादकों ने मूल ग्रन्थ से बहुत कुछ अलग स्वतंत्रता के साथ भी इसका अनुवाद किया है। यही नहीं इसमें कई चरित्रों को तो बिलकुल नए सिरे से लिखा गया है; जिसके लिए इसके अनुवादकों द्वारा कुछ अन्य पुस्तकों की मदद भी ली गई है। जैसे सती अंजना में श्रीयुक्त सुदर्शन की कृति अंजना सुन्दरी; यशोधरा में कविवर मैथिलीशरण गुप्त के यशोधरा काव्य; सुजाता व किसागोतमी में प्रो० कौशांबी के बुद्ध लीलासार संग्रह तथा डॉ० कुमारस्वामी के 'गास्पेल आव बुद्धिज्म' से खास तौर पर सहयोग लिया गया है; जिससे आज भी इस तरह के ग्रन्थ की उपादेयता प्राचीन भारत के गौरवशाली अतीत में मिलने वाले स्त्री-रत्नों के परिचय की दृष्टि से और अधिक बढ़ गई है। अतः कहना न होगा कि यह ग्रन्थ इस दृष्टि से अपनी विषयवस्तु में आज भी प्रासंगिक कहे जाने योग्य ही है।

बड़ौदा की श्रीमती महारानी साहिबा और श्रीयुक्त एस॰ एम॰ मित्र लिखित 'The Position of Women in Indian Life' नामक पुस्तक के आधार पर रामचन्द्र वर्मा ने 'भारतीय स्त्रियाँ' शीर्षक हिन्दी छायानुवाद सन् 1926 ईस्वी में ही प्रकाशित करा लिया था। बहरहाल, इस पुस्तक में स्त्री-पुरुष दोनों को बहुत-से ऐसे नए कार्य-क्षेत्र मिलेंगे, जिनमें प्रवेश करके वे बहुत कुछ लाभ उठा सकेंगे; जिससे वे अपने परिवार, समाज और देश का भी कुछ-न-कुछ कल्याण अवश्य कर सकेंगे। इसी आधार पर वर्मा जी लिखते हैं कि "इस पुस्तक के पढ़ने से पाठकों को एक और बात का भी पता चल जाएगा। वह यह कि पाश्चात्य देशों की स्त्रियाँ भी उन्नति के क्षेत्र में इतना अधिक आगे बढ़ी हुई हैं कि हमारे देश के पुरुष भी अभी तक उतना आगे नहीं बढ़ सके हैं। अतः मेरा तो यह विश्वास है कि इस पुस्तक से हमारे देश की केवल स्त्रियाँ ही नहीं, बल्कि पुरुष भी बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं।"[223] वस्तुतः यह पुस्तक अँगरेजी मूल पुस्तक का निरा और पूरा अनुवाद भर ही नहीं है; इसमें आवश्यकतानुसार बहुत-सी बातें घटाई और जहाँ-तहाँ कुछ बढ़ाई भी गई हैं। बल्कि इस अनूदित पुस्तक में दी गई मूल पुस्तक की भूमिका में यह भी कहा गया है कि "इस पुस्तक की सब बातों से यह अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया गया है कि स्त्रियों और पुरुषों में किसी प्रकार का विरोध होने की नहीं, बल्कि सहयोग की आवश्यकता है; और यह बात भी स्पष्ट कर दी गई है कि स्त्रियाँ जितने अच्छे-अच्छे काम कर सकती हैं, उन सबके लिए उन्हें पुरुषों के पथ-प्रदर्शन की उसी प्रकार आवश्यकता होती है, जिस प्रकार पुरुषों को अपनी जीवन-यात्रा में स्त्रियों की सहायता और सहानुभूति की।"[224] बहरहाल, यह पूरी पुस्तक स्त्रियों की प्रगति के केन्द्रीय आधारों पर पंद्रह प्रकरणों में विभक्त है; जिससे इसकी आवश्यकता आज के समय में स्त्री-उद्धार के प्रयोजनों में भी उपादेय सिद्ध होगी।

दो खण्डों में प्रकाशित 'हिन्दू राज्यतंत्र' मूल ग्रन्थ 'Hindu Polity' का हिन्दी अनुवाद है, मूल ग्रन्थ के लेखक श्रीयुक्त काशीप्रसाद जायसवाल हैं। इस ग्रन्थ में लेखक ने वेद, वेदांग और पुराण आदि के प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि भारतीय आर्यों में वैदिक समितियों की, गणों की और एकराज तथा साम्राज्य-शासन-प्रणालियाँ मौजूद थी। ऐसे में

---

[223] रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *भारतीय स्त्रियाँ*, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, प्रथमावृत्ति - 1926 ई॰, निवेदन, पृष्ठ - 4

[224] वही, मूल पुस्तक की भूमिका, पृष्ठ - 15

इस पुस्तक ने उन सब विदेशी आक्षेपों का खंडन कर दिया है जो भारतीय शासन-प्रणालियों का अस्तित्व स्वीकृत नहीं होने देते थे। इस तरह कहना न होगा कि यह अपने ढंग की विचित्र पुस्तक है। इसलिए देश-विदेश में सर्वत्र इस ग्रन्थ को प्रशंसा मिली थी। दो खण्डों में प्रकाशित इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद रामचन्द्र वर्मा ने किया है; जिसका पहला खण्ड सन् 1927 ई० और दूसरा खण्ड सन् 1942 ई० में हिन्दी पाठकों के लिए प्रस्तुत किया गया था। काशीप्रसाद जायसवाल मूल ग्रन्थ की भूमिका में बतलाते हैं कि यह ग्रन्थ – जो दो खण्डों में विभक्त है और जिसके पहले खण्ड में वैदिक समितियों तथा गणों का और दूसरे खण्ड में एकराज तथा साम्राज्य शासन-प्रणालियों का वर्णन है – हिन्दुओं के वैध-शासन संबंधी जीवन का खाका है। इस प्रकार सन् 1911-13 ई० में दंडनीति के क्षेत्र में प्राचीनों का राजमार्ग ढूँढ़ने के लिए जो एक संभावित रेखा खींची गई थी; इस ग्रन्थ में वही रेखा अधिक प्रशस्त और गंभीर की गई है और अब पूर्व-पुरुषों का पथ दृष्टिगोचर हो गया है।[225] अतः सन् 1913 ई० की प्रस्तावना (यहाँ प्रस्तावना से अभिप्राय ग्रन्थ के पहले प्रकरण से है) में जो रेखाएँ अंकित की गई थीं, उन्हीं का प्रस्तुत ग्रन्थ में ठीक-ठीक अनुसरण किया गया है। एक पौर-जानपद वाले प्रकरण (सत्ताइसवाँ और अट्ठाइसवाँ प्रकरण) को छोड़कर उन रेखाओं में और किसी प्रकार की वृद्धि नहीं की गई है। बल्कि एक तरह से इस समस्त ग्रन्थ को उसी प्रस्तावना का भाष्य कहना चाहिए। ऐसे में अप्रैल 1918 ई० में जिस रूप में यह ग्रन्थ प्रस्तुत हुआ था, उसी रूप में यह उपस्थित किया गया है। केवल पौर-जानपद वाला प्रकरण, जो लेखक ने अप्रैल 1920 ई० में 'मॉडर्न रिव्यू' में प्रकाशित कराया था, उसमें अभिधान राजेन्द्र (1919) के आधार पर पृष्ठ 45 पर उल्लिखित की गई पादटिप्पणी की अंतिम पंक्ति और परिशिष्ट 'ग' तथा 'घ' अवश्य बढ़ाए गए हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र का समय वही रखा गया है, जो पहले दिया गया था, यद्यपि डॉ० जोली ने अर्थशास्त्र के अपने संस्करण के कारण होने वाले वाद-विवाद के आधार पर उस समय उसमें कुछ परिवर्तन भी कर दिया था। यह विषय महत्त्वपूर्ण था, इसलिए काशीप्रसाद जायसवाल ने ग्रन्थ में दिए गए पहले खण्ड के अतिरिक्त नोट के अंतर्गत परिशिष्ट 'ग' में उस पर फिर से विचार किया है। किन्तु डॉ० जोली ने जो परिणाम निकाले हैं, उनसे सहमत होने में लेखक ने कुछ-कुछ

---

[225] रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *हिन्दू राज्यतंत्र*, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 1927 ई०, भूमिका, पृष्ठ - 1

असमर्थता दिखलाई है। दो खण्डों का यह पूरा ग्रन्थ उन्तालीस प्रकरणों और कुछ परिशिष्ट आदि के दिए गए अतिरिक्त भागों में विभक्त है। बहरहाल, आज भी वैचारिक उपादेयता के दृष्टिकोण से इस ग्रन्थ का हिन्दी पाठकों के बीच उतना ही ऐतिहासिक महत्त्व बना हुआ है।

अमेरिका में श्रीयुक्त डॉ॰ ओरिसन स्वेट मार्डेन वहाँ की आध्यात्मिक शाखा के एक बहुत बड़े प्रवर्तक और लेखक हुए हैं। रामचन्द्र वर्मा अनूदित 'सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति' नामक पुस्तक उन्हीं डॉ॰ मार्डेन के सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक ग्रन्थ 'Peace, Power and Plenty' का हिन्दी भावानुवाद है; जिसका प्रकाशन सन् 1927 ई॰ में हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई से हुआ था। अनुवादक के अनुसार इस पुस्तक से हिन्दी के पाठक भी उन नवीन विचारों से यथेष्ट लाभ उठाएँगे और अपनी आत्मिक, नैतिक, ऐहिक और शारीरिक उन्नति करके सब प्रकार से सुख के भागी होंगे।

अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक लैम्ब ने शेक्सपियर के नाटकों की कहानियों पर एक पुस्तक 'टेल्स-फ्राम शेक्सपियर' नाम से लिखी है। इसमें शेक्सपियर के नाटक कहानी के रूप में लिखे गए हैं और यह प्रयत्न किया गया है कि नाटकों के सभी साहित्यिक गुण इन कहानियों में सुरक्षित बने रहें। इसी ढंग पर रामचन्द्र वर्मा ने संस्कृत के सुप्रसिद्ध नाटकों को कहानी रूप में 'रूपक रत्नावली' नामक ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। इन कहानियों में भी संस्कृत नाटकों के सभी काव्यगुण अक्षुण्ण रखने का प्रयास किया गया है।[226] इस 'रूपक रत्नावली' में संस्कृत के निम्नांकित सात कवियों के बारह प्रसिद्ध नाटकों की कथाएँ हैं, यथा आगे देखें – भास की स्वप्न वासवदत्ता; कालिदास की मालविकाग्नि मित्र, विक्रमोर्वशी और शकुन्तला; हर्षवर्धन की प्रियदर्शिका, नागानन्द और रत्नावली; भवभूति की मालती माधव और उत्तररामचरित; विशाखदत्त की मुद्राराक्षस; राजशेखर की कर्पूरमंजरी तथा क्षेमीश्वर की चन्डकौशिक। पहले यह पुस्तक दो भागों में छपी थी, पहला भाग सन् 1928 ई॰ में और दूसरा भाग सन् 1939 ई॰ में छपा था। बाद में सन् 1946 ई॰ में दोनों भाग एक में मिला दिए गए। इससे पूर्व रूपक रत्नावली के पहले भाग में महाराज भास्करदत्त के पुत्र विशाखदत्त (विशाखदेव) कृत मुद्राराक्षस, महाराज श्री हर्षदेव कृत

---

[226] किशोरीलाल गुप्त, *वर्मा जी का एक पत्र*, हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), *कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग*, वही, पृष्ठ - 182

रत्नावली नाटिका, महाकवि भवभूति के दो नाटक मालती माधव और उत्तररामचरित तथा कालिदास की सर्वोत्कृष्ट रचना शकुन्तला अर्थात् कुल पाँच नाटकों का कथा-भाग सुंदर और सरल कहानियों के रूप में दिया गया था। जो विद्यार्थियों के लिए बहुत अधिक उपयोगी थे। वहीं रूपक रत्नावली के दूसरे भाग में कालिदास कृत विक्रमोर्वशी तथा मालविकाग्निमित्र, भास कृत स्वप्नवासवदत्ता, क्षेमीश्वर कृत चंडकौशिक, राजशेखर कृत कर्पूरमंजरी और श्री हर्षदेव कृत प्रियदर्शिका तथा नागानन्द अर्थात् कुल सात नाटकों का कथा-भाग दिया गया था। बहरहाल, इन दोनों भागों में शामिल नाटकों की सभी उत्तम, उपयोगी और जानने योग्य बातें 'रूपक रत्नावली' में दी गई हैं; जो बहुत ही मधुर व ओजस्विनी भाषा में सुंदर कहानियों के रूप में पुस्तक में व्यक्त हुई हैं। बल्कि संस्कृत के इन परम उत्कृष्ट और जगत-प्रसिद्ध नाटकों में कैसे-कैसे सुन्दर कथानक, कैसी-कैसी सुन्दर उक्तियाँ और कैसे-कैसे सुन्दर भाव भरे पड़े हैं ? ये जानने के लिए वास्तव में यह पुस्तक पठनीय बन पड़ी है। इस एक पुस्तक से आप इन बारह नाटकों की सभी अच्छी बातों, गुणों और विशेषताओं से परिचित हो जाएँगे। इसमें शामिल नाटकों की सभी अच्छी और जानने योग्य बातें बहुत ही सुन्दर और मनोहर कहानियों के रूप में मिलती हैं; जो आज भी अपनी विषयवस्तु और कलापरक कौशल से उतनी ही युक्तियुक्त या प्रासंगिक बनी हुई है।

रामचन्द्र वर्मा अनूदित 'अरब और भारत के संबंध' नामक पुस्तक संयुक्त प्रांत की हिन्दुस्तानी एकेडेमी की अवधानता में प्रयाग में तारीख़ २२ और २३ मार्च सन् १९२९ को मौलाना सय्यद सुलैमान नदवी द्वारा दिए गए व्याख्यानों का सन् 1930 ई॰ में प्रकाशित हिन्दी अनुवाद है। इस पुस्तक की समस्त घटनाएँ और सामग्री अरबी की विश्वसनीय और प्रामाणिक पुस्तकों से प्राप्त की गई हैं। कहीं-कहीं किसी अँगरेजी या फ़ारसी ग्रन्थ का भी उल्लेख आ गया है। अतः दिए गए व्याख्यान और उक्त पुस्तक में भारत और अरब के संबंधों की सामाजिक तथा वैचारिक एकता के सूत्रों की तलाश की गई है। व्याख्यान देने के रूप में ग्रन्थकार ने पुस्तक की भूमिका में उल्लेख किया है कि "हमारा विश्वास है कि इस समय देश में जो आपस में द्वेष तथा विरोध की परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, उसका सबसे बड़ा उत्तरदायित्व हमारे यहाँ के स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाया जाने वाला इतिहास है। इसलिए आज हमारे राष्ट्रीय इतिहास-लेखकों का कर्तव्य सब से बड़ा और महत्त्वपूर्ण

है।"[227] बहरहाल, व्याख्यानों के रूप में प्रस्तुत इस पुस्तक का सबसे बड़ा उद्देश्य यह है कि "इससे एक तो ज्ञानसंबंधी बहुत सी बातों का संग्रह होता ही, दूसरे इसमें मेरा (मौलाना सय्यद सुलैमान नदवी) यह उद्देश्य था कि देश के हिन्दू और मुसलमान दोनों संयोजक अंगों को मैं उस स्वर्ण-युग का स्मरण कराऊँ जब कि वे दोनों एकता के भिन्न-भिन्न संबंधों और शृंखलाओं से जकड़े हुए थे।"[228] ऐसे में आज के साम्प्रदायिक दौर में 'अरब और भारत के संबंध' जैसी पुस्तकों की उपादेयता और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

सन् 1931 ई॰ में प्रस्तुत रामचन्द्र वर्मा अनूदित 'संजीवनी विद्या' वास्तव में विवाहित युवक और युवतियों को वीर्य-संरक्षण, वीर्य-विनिमय और ब्रह्मचर्य की अपूर्व संजीवनी शक्तियों का परिचय देने वाली विद्या संबंधी पुस्तक है। जो श्री सीताकान्त नामक सज्जन की मूल मराठी पुस्तक 'संजीवनी विद्या' पर आधारित है। हिन्दी में ब्रह्मचर्य-विषयक अनेक पुस्तकें हैं और उनमें से कई अच्छी भी हैं; परन्तु यह पुस्तक अपने ढंग की निराली है। यह विशेषतः विवाहित स्त्री-पुरुषों के उपयोग के लिए लिखी गई है। इसमें यह बतलाया गया है कि गृहस्थाश्रम को सुख-शान्ति-स्वास्थ्य सम्पन्न और दाम्पत्य-प्रेम को चिरस्थायी बनाने के लिए इन्द्रिय-संयम तथा वासनाओं को क़ाबू में रखने की, वीर्य-संरक्षण और वीर्य-पावित्र्य आदि की कितनी आवश्यकता है तथा किन उपायों से इस संजीवन व्रत का पालन हो सकता है। इस पुस्तक में शरीर-शास्त्र, वैद्यशास्त्र, योगशास्त्र और धर्मशास्त्रों के अनुसार बड़े अच्छे ढंग से समझाया गया है कि यदि वीर्य का सदुपयोग किया जाय, तो सहवास का पहले जैसा आनन्द चिरकाल तक भी स्थायी रहता है तथा पारस्परिक संबंध जैसे-जैसे समय बीतता है वैसे-वैसे और भी अधिक आकर्षक और प्रेमवर्द्धक होता जाता है। इससे नीरोगता, सहनशक्ति और कार्यक्षमता बढ़ती है, गृहस्थाश्रम प्रेममय होता है तथा सशक्त सन्तान उत्पन्न होती है। अतः इसके पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि इस पुस्तक का विषय कितना महत्त्वपूर्ण है और देश की वर्तमान परिस्थिति में इसकी कितनी आवश्यकता है। वहीं पुस्तक के अन्त में महात्मा गांधी आदि महापुरुषों के वे बहुमूल्य उद्धरण भी दे दिए गए हैं, जो इस विषय से संबंध रखते हैं।

---

[227] रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *अरब और भारत के संबंध*, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, पहला संस्करण - 1930 ई॰, ग्रन्थकार की भूमिका, पृष्ठ - 5

[228] वही, ग्रन्थकार की भूमिका, पृष्ठ - 5

रामचन्द्र वर्मा अनूदित 'हिन्दी दासबोध' मराठी संत समर्थ स्वामी रामदास के 'दासबोध' नामक मूल मराठी ग्रन्थ का गद्यानुवाद है। जो समर्थ स्वामी रामदास के अमूल्य उपदेशों का संग्रह है। इस ग्रन्थरत्न में धार्मिक, सामाजिक, पौराणिक, आध्यात्मिक तथा राजनीतिक आदि जिस किसी भी विषय को आप देखना चाहेंगे वही आपको पूर्ण रूप से मिलेगा। इसमें वे सब विषय हैं जिनका समर्थ स्वामी रामदास छत्रपति शिवाजी महाराज को उपदेश दिया करते थे। मराठी संत समर्थ स्वामी रामदास को छत्रपति शिवाजी महराज का गुरु बतलाया जाता है। इन उपदेशों का अपना एक विलक्षण ढंग है; जो हृदय में तीर की तरह चुभकर वास्तविक काम करते हैं। वस्तुतः यह ग्रन्थ संसार के नीति तथा धार्मिक विषयक ग्रन्थों का सार है। जिस कारण लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने इसे संसार के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थों में एक माना है, जिसका हिन्दी गद्यानुवाद रामचन्द्र वर्मा ने सन् 1932 ई० में प्रस्तुत किया था। रामचन्द्र वर्मा के अनुसार उस समय समर्थ स्वामी रामदास ने सारे महाराष्ट्र प्रांत में और उसके द्वारा सारे भारत में बहुत बड़ी राष्ट्रीय जाग्रति उत्पन्न की थी; और जो भारत बहुत दिनों से विदेशियों के अधीन चला आ रहा था, उसमें उन्होंने स्वराज्य की केवल भावना ही नहीं उत्पन्न की थी, बल्कि वस्तुतः स्वराज्य की और वह भी ऐसे स्वराज्य की स्थापना कराई थी जो बहुत से अंशों में 'रामराज्य' के समान ही माना जाता है। यह मत जस्टिस रानाडे और श्री राजवाडे सरीखे उद्भट विद्वानों का है; और इसलिए इसकी सत्यता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। अब यदि ऐसे महापुरुषों को लोग हिन्दू संस्कृति तथा सभ्यता के त्राता के अतिरिक्त श्री हनुमान जी का अवतार भी मानें तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।[229] इन बातों के अतिरिक्त वर्मा जी ने 'हिन्दी दासबोध' की प्रस्तावना में मराठी संत समर्थ स्वामी रामदास की एक संक्षिप्त जीवनी भी प्रस्तुत की है। बहरहाल, यह उल्लेखनीय है कि 'हिन्दी दासबोध' कुल बीस दशकों (जिसमें से प्रत्येक दस-दस की संख्या में वर्णित अंशों में प्रस्तुत है और जिसे इस ग्रन्थ में समास कहा गया है) में विभक्त है। इस तरह ज्ञात हो कि मराठी 'दासबोध' से अनूदित यह 'हिन्दी दासबोध' वस्तुतः आज भी भारतीय संत-परम्परा की एक रचनात्मक झलक प्रस्तुत करने वाला अपने आप को एक आध्यात्मिक ग्रन्थ सिद्ध करता है।

---

[229] रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *हिन्दी दासबोध*, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, प्रथमावृत्ति - 1932 ई०, प्रस्तावना, पृष्ठ - 1-2

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के मनोरंजन पुस्तकमाला के अंतर्गत सन् 1935 ई० में प्रस्तुत 'मानस सरोवर और कैलास' पुस्तक सुशीलचंद्र भट्टाचार्य कृत 'मानस सरोवर ओ कैलास' नामक यात्रा-संबंधी बँगला पुस्तक का रामचन्द्र वर्मा द्वारा किया गया हिन्दी अनुवाद है। यह मनोरंजन पुस्तकमाला का ५२वाँ ग्रन्थ है, जिसमें रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपनी सम्मति प्रकट की है। वे लिखते हुए कह देते हैं कि "पाठक देखेंगे कि भाव-पक्ष और व्यवहार-पक्ष दोनों का उचित ध्यान रखकर इस पुस्तक का प्रणयन हुआ है। जिस प्रकार इसमें उन सब दृश्यों का सजीव और स्पष्ट चित्रण हुआ है जो सुषमा, भव्यता, विशालता, विचित्रता, पवित्रता इत्यादि की रहस्यमयी भावनाएँ जगाकर हमारे हृदय को अनुभूति की अत्यन्त रमणीय भूमि में पहुँचा देते हैं, उसी प्रकार उस विकट और दीर्घ यात्रा को निर्विघ्न और सुव्यवस्थापूर्वक समाप्त करने के लिए जितनी बातों का जानना आवश्यक है, उतनी सब – और कहीं-कहीं उससे बहुत अधिक भी – इसमें दी हुई मिलेगी।"[230] यहाँ यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि यह पुस्तक केवल प्राकृतिक दृश्य वैचित्र्य के अन्वेषक व्यक्तियों के निमित्त ही नहीं, धर्मपरायण तीर्थयात्रियों के उपयोग के लिए भी लिखी गई है। अतः इसमें कैलास मानस सरोवर आदि की ठीक-ठीक स्थिति का निर्देश करने वाले प्रमाण भी रामायण, महाभारत, पुराण इत्यादि से दिए गए हैं तथा प्रत्येक दर्शनीय स्थान का पूरा विवरण भी सन्निविष्ट किया गया है। इसके अतिरिक्त उन प्रदेशों में निवासियों के शील और उनके आचार-व्यवहार का भी परिचय इसमें दिया गया है; जिससे नए यात्री बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। किसी यात्री को क्या-क्या वस्तुएँ अपने पास रखनी चाहिए, इस यात्रा-मार्ग में कितने ठहराव पड़ते हैं और कहाँ किस प्रकार की सवारी आदि की सुविधा हो सकती है, ये सब बातें भी इसमें मौजूद हैं। और साथ में यात्रा में होने वाले ख़र्च का भी ठीक-ठीक ब्योरा दे दिया गया है। इस तरह यह पुस्तक धार्मिक तीर्थ-यात्रियों के साथ-साथ घुमक्कड़ों के लिए भी उपादेय बन पड़ता है। ऐसे में इसमें दिया गया कैलास मानस सरोवर आदि का भ्रमण-वृत्तांत इस यात्रा-पुस्तक को रोचक बनाता है। संभवतः इसी कारण इसके भूमिका लेखक श्री प्रमथनाथ तर्कभूषण ने यह भी लिखा है कि "हम निस्संदेह रूप से भारत के सबसे अधिक दुर्गम और सबसे अधिक सुंदर महातीर्थ कैलास और मानस सरोवर के

---

[230] रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *मानस सरोवर और कैलास*, नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 1935 ई०, रामचन्द्र शुक्ल की सम्मति, पृष्ठ - 4-5

ऐसे सुंदर वर्णन से युक्त और प्रयोजनीय ग्रन्थ प्रकाशित करके कल्याण-भाजन ग्रंथकार बंगाली आस्तिक हिन्दू मात्र के विशेष रूप से कृतज्ञता भाजन हुए हैं और ग्रंथकार ने उन लोगों (नव-शिक्षित हिन्दुओं) का यथेष्ट उपकार किया है।"[231] अंत में यह और की ये पूरी पुस्तक आठ पर्वों में है, जिसके अंतिम भाग में उस समय अलमोड़े से कैलास तक जाने और आने के ख़र्च का ब्योरेवार हिसाब भी दे दिया गया।

संत ज्ञानेश्वर महाराज रचित श्रीमद्भगवद्गीता की मराठी टीका 'ज्ञानेश्वरी' का वस्तुतः 'हिन्दी ज्ञानेश्वरी' नामक किया गया भावार्थ अनुवाद रामचन्द्र वर्मा ने सन् 1937 ई॰ में प्रस्तुत किया था। मराठी 'ज्ञानेश्वरी' – जो श्रीमद्भगवद्गीता की एक सर्वश्रेष्ठ टीका मानी जाती है – का यह हिन्दी अनुवाद श्रीयुक्त बालकृष्ण अनंत भिडे कृत 'सार्थ ज्ञानेश्वरी' के आधार पर किया गया है। रामचन्द्र वर्मा बतलाते हैं कि 'हिन्दी ज्ञानेश्वरी' की प्रस्तावना लिखने में उन्होंने उक्त सार्थ ज्ञानेश्वरी की प्रस्तावना के अतिरिक्त लक्ष्मण नारायण गर्दे द्वारा अनूदित श्री ज्ञानेश्वर-चरित्र से भी विशेष सहायता ली है। इस प्रस्तावना में रामचन्द्र वर्मा ने संत ज्ञानेश्वर महाराज और मराठी संत परम्परा से जुड़े कई पहलुओं का उल्लेख किया है; जिसके साथ में अनूदित 'हिन्दी ज्ञानेश्वरी' भावार्थ टीका अर्जुन-विषादयोग, सांख्ययोग, कर्मयोग, ब्रह्मार्पणयोग, संन्यासयोग, अभ्यासयोग, ज्ञानविज्ञानयोग, अक्षरब्रह्मयोग, राजविद्याराजगुह्ययोग, विभूतिविस्तारयोग, विश्वरूपदर्शनयोग, भक्तियोग, क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोग, गुणत्रयविभागयोग, पुरुषोत्तमयोग, दैवासुरसम्पद्विभागयोग, श्रद्धात्रयविभागयोग तथा मोक्षसंन्यासयोग नामक अठारह अध्यायों में विभक्त है। इसकी उपादेयता मराठी संत परम्परा में संत ज्ञानेश्वर महाराज के विचारों को जानने-समझने की दृष्टि से आज भी महत्त्वपूर्ण बनी हुई है।

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला के अंतर्गत शामिल १२वें ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित 'अंधकारयुगीन भारत का इतिहास' नामक पुस्तक का अनुवाद रामचन्द्र वर्मा ने सन् 1938 ई॰ में प्रस्तुत किया था। यह ग्रन्थ पाँच भागों में विभक्त है – १. नाग वंश के अधीन भारत (सन् १५०-२८४ ई॰); २. वाकाटक साम्राज्य (सन् २८४-३४८ ई॰) जिसके साथ परवर्ती वाकाटक राज्य (सन् ३४८-५२० ई॰) संबंधी

[231] वही, भूमिका, पृष्ठ - 6

एक परिशिष्ट भी दिया गया है; ३. मगध का इतिहास (ई० पू० ३१-३४० ई०) और समुद्रगुप्त का भारत; ४. दक्षिणी भारत (सन् २४०-३५० ई०) और ५. गुप्त-साम्राज्य के प्रभाव। इस पुस्तक में एक ही समय के अलग-अलग राज्यों और प्रदेशों के संबंध की बहुत-सी बातें आई हैं; और इसीलिए कुछ बातों की इसमें पुनरुक्ति भी हो गई है। काशीप्रसाद जायसवाल पुस्तक के प्राक्कथन में उल्लेख करते हैं कि सन् १८० ई० से ३२० ई० तक का समय अंधकार युग कहा जाता है। इसी कालखण्ड (सन् १५० ई० से ३५० ई० तक) का इतिहास यह पुस्तक प्रस्तुत करती है।

रामचन्द्र वर्मा अनूदित 'धर्म की उत्पत्ति और विकास' पुस्तक सन् 1940 ई० प्रकाशित हुई थी। जो डॉ० एच० मूर कृत 'Birth & Growth of Religion' का अनूवाद मात्र है। इस पुस्तक में वे आठ व्याख्यान संकलित हैं जो सन् 1922 ई० में यूनियन थियालोजिकल सेमिनरी (Union Theological Seminary) में दिए गए थे। अतः यह पुस्तक उन्हीं व्याख्यानों के अनूदित आठ प्रकरणों में विभक्त है। उन व्याख्यानों को इस प्रकार पुस्तकाकार प्रस्तुत करने में उनका मूल रूप बहुत कुछ ज्यों का त्यों रख दिया गया है। केवल कुछ प्रकरणों में विषय का विस्तार कर दिया गया है और कुल अंश एक बार दोहरा दिया गया है। किन्तु इस पुस्तक के लेखक ने धर्मों के साधारण सिद्धांतों अथवा उनके व्याख्यात्मक अप्रामाणिक अनुमानों का विवेचन करना तो दूर रहा, इस ग्रन्थ में विस्तारपूर्वक यह भी बतलाने का प्रयत्न नहीं किया है कि धर्म के कितने और कैसे रूप होते हैं। बहरहाल, पुस्तक की भूमिका में लेखक ने ऐसी बातें बतलाने वाले कुछ ग्रन्थों और उनके लेखकों का नामोल्लेख भर कर दिया है।

मुहम्मद सादिक सफवी लिखित 'राइफल' नामक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद रामचन्द्र वर्मा ने सन् 1958 ई० में प्रस्तुत किया था। इस पुस्तक का विषय 'राइफल' के आविष्कार, विकास और उसके तकनीकी पक्षों से जुड़ा हुआ है; जो आठ प्रकरणों में विभक्त है। पुस्तक के अंत में दो शब्दावलियाँ भी सम्मिलित हैं। पहली शब्दावली में हिन्दी के पारिभाषिक शब्द अक्षर-क्रम से रखकर उनके आगे अँगरेजी पारिभाषिक शब्द दिए गए हैं। दूसरी शब्दावली में अँगरेजी पारिभाषिक शब्द अक्षर-क्रम से देकर उनके सामने हिन्दी के शब्द रखे गए हैं। यह पुस्तक विशेषतः शिकारी राइफलों के संबंध में है

और इसकी रचना का उद्देश्य यह है कि इसे पढ़ जाने पर शिकारी को अपनी आवश्यक, उपयुक्त राइफल चुनना सहज जो जाएगा। अतः पुस्तक का अनुवाद प्रस्तुत कर के वर्मा जी ने ऐसे अछूते विषयों पर हिन्दी पुस्तकों के अभाव को कुछ हद तक दूर करने का प्रयास किया है।

इस तरह उक्त सभी पुस्तकों का अनुवाद प्रस्तुत करके रामचन्द्र वर्मा ने हिन्दी के विषय संसार को और अधिक वैविध्यपूर्ण बनाया है। ऐसे में कह सकते हैं कि वर्मा जी भविष्य में राजभाषा हिन्दी की विशिष्ट भूमिका को ध्यान में रख कर जो सेवा-कार्य कर रहे थे, आज उसका महत्त्व बहुत दूरगामी सिद्ध हुआ है। ऐसे में यह कहना न होगा कि केवल साहित्य-सेवा करने, उसमें भी मात्र कविता, कहानी, उपन्यास आदि के लिखने भर से किसी भी भाषा का वास्तविक कल्याण नहीं हो सकता। सच्चाई तो यह है कि आज विश्व स्तर पर किसी भी भाषा की क्षमता को बढ़ाने तथा उसे सशक्त बनाने के लिए उस भाषा को वैश्विक ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन और लोक व्यवहार की भाषा बनाना बहुत आवश्यक है। अतः रामचन्द्र वर्मा का हिन्दी अनुवाद कार्य इस दिशा में एक उल्लेखनीय योगदान है।

रामचन्द्र वर्मा का मौलिक सृजन

ऐसे तो रामचन्द्र वर्मा का समस्त लेखन उनका मौलिक सृजन ही है किन्तु यहाँ विशेष तौर पर विविध विषय आधारित उनके उपलब्ध रचनात्मक लेखन को मौलिक सृजन के मूल्यांकन का केन्द्रीय बिन्दु बनाया गया है जो वर्माजी की रचनात्मक प्रतिभा को रेखांकित करने का एक विश्वसनीय आधार हो सकता है। रामचन्द्र वर्मा के आरंभिक लेखन का बहुत बड़ा भाग हिन्दी में किए जाने वाले कई नए-नए विषयों के वैचारिक लेखन की प्रस्तुति से जुड़ा रहा है। ऐसे में वर्मा जी का कार्य केवल हिन्दी में कुछ भी लिख देना नहीं था; बल्कि वे अपने कार्यों से हिंदी पाठकों के लिए पठन सामग्री का निर्माण भी कर रहे थे। अतः आगे शोध के दौरान उपलब्ध ऐसी ही रचनाओं की सूची और क्रमशः उनका संक्षिप्त विश्लेषण दिया जा रहा है –

- सफलता और उसकी साधना के उपाय : हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - १९१५ ई०

- उपवास-चिकित्सा, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - १९१६ ई०
- मानव-जीवन : हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - १९१७ ई०
- महात्मा गांधी : हिन्दी पुस्तक भण्डार, बम्बई, प्रथमावृत्ति - १९१८ ई०
- साम्यवाद : हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - १९१९ ई०
- मधु-चिकित्सा : प्रकाशक अज्ञात, संस्करण - १९२७ ई०
- निबंध-रत्नावली : प्रकाशक अज्ञात, संस्करण - १९२८ ई०
- गोरों का प्रभुत्व : सस्ता साहित्य मण्डल, अजमेर, प्रथम संस्करण - १९२८ ई०
- भूकम्प पीड़ितों की करुण कहानियाँ : प्रकाशक राजमन्दिर, काशी, पहला संस्करण - १९३४ ई०
- पुरानी दुनिया : गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, प्रथमावृत्ति - १९३४ ई०
- मँगनी के मियाँ : हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - १९३५ ई०
- संसार की राजनीतिक प्रणालियाँ (II) : सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - १९४१ ई०

सन् 1915 ई० में बम्बई से प्रकाशित 'सफलता और उसकी साधना के उपाय' पुस्तक रामचन्द्र वर्मा के आरंभिक कार्यों में से एक है। यह पुस्तक कई अँगरेजी पुस्तकों की सहायता से लिखी गई है जिसमें सफलता और उसके सिद्धांतों पर बहुत सरल भाषा में विचार किया गया है; जिससे वस्तुतः इसका एक-एक वाक्य बहुमूल्य हो गया जान पड़ता है। लेखक रामचन्द्र वर्मा 'सफलता और उसकी साधना के उपाय' की भूमिका में लिखते हैं कि "संसार कर्म-क्षेत्र है। यहाँ आने पर सभी लोगों को कुछ न कुछ करना पड़ता है। ऐसी अवस्था में सब लोगों का अपने हाथ में लिए हुए कामों को ठीक तरह से पूरा उतारने और उसमें यथा साध्य यश प्राप्त करने की इच्छा रखना बहुत ही स्वाभाविक और योग्य है। इस पुस्तक में उसी इच्छा की पूर्ति के कुछ उपाय बतलाए गए हैं।"[232] बहरहाल, ऐसे तो ये बतलाए हुए उपाय कुछ नए नहीं, पुराने ही हैं। किन्तु पुस्तक में लेखक ने उनका संग्रह और दिग्दर्शन मात्र कर दिया है। दिग्दर्शन इसलिए कि जिन अनेक आवश्यक उपायों, गुणों

[232] रामचन्द्र वर्मा, *सफलता और उसकी साधना के उपाय*, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - 1915 ई०, भूमिका, पृष्ठ - 1

और दूसरे विषयों का इसमें समावेश या उल्लेख किया गया है, वे इतने महत्त्वपूर्ण और प्रशंसा योग्य हैं कि उनमें से प्रत्येक पर वस्तुतः एक स्वतंत्र बड़ी पुस्तक ही लिखी जा सकती है। लेखक का मानना है कि संसार में ऐसे बहुत कम लोग मिलेंगे जिनका जीवन वास्तव में 'मानव जीवन' कहा जा सके। यह पुस्तक बहुत से अंशों में इसी उद्देश्य से लिखी गई है कि जिसमें इससे लोगों को वास्तविक मानव जीवन के एक साधारण आदर्श का अनुमान करने में सहायता मिल सके। बहरहाल, साधारण रूप में 'सफलता' शब्द का जो अर्थ प्रचलित है उसका ध्यान रखते हुए और कई अन्य विशिष्ट कारणों से इस पुस्तक का विषयाधिकार लेखक ने कुछ संकुचित रखा है। अतः उक्त उद्देश्य की पुस्तक में ठीक-ठाक पूर्ति भी नहीं हो पाई है। वैसे रामचन्द्र वर्मा ने इस पुस्तक में सफलता-विषयक बातें कहने से पहले यह भी स्वीकार किया है कि उन्होंने स्वयं इसके लिए अँगरेजी के Success Secrets, The Secret of Success, The Art of Success आदि कई अच्छे ग्रन्थों का अध्ययन कर लेना आवश्यक समझा है। साथ ही, वर्माजी ने अपने अनुभवों और ज्ञान की सहायता से इन ग्रन्थों में प्रकट किए हुए बहुमूल्य विचारों के सारांश को भी इस पुस्तक में यथास्थान प्रस्तुत कर देने का प्रयास किया है। वहीं पूरी पुस्तक उपोद्घात और उपसंहार के साथ-साथ पाँच अध्याओं में विभक्त है; जो पाठकों के लिए पठनीयता का स्वस्थ और सुंदर विकल्प प्रदान करती है।

रामचन्द्र वर्मा लिखित 'उपवास चिकित्सा' पुस्तक 1916 ई॰ में प्रकाशित हुआ है; जिसमें उपवास से तमाम रोगों को ठीक करने के विषय में विचार किया गया है। यह बड़े काम की पुस्तक है। कहा जाता है कि उपवास या लंघन निरोग होने के लिए सबसे अच्छी दवा है। भयंकर से भयंकर और दुःसाध्य से दुःसाध्य बीमारियों में उपवास चिकित्सा से आराम हो सकता है। इसी बात को वर्मा जी की इस पुस्तक में विस्तार के साथ उदाहरण देकर समझाया गया है। अतः इस पुस्तक में औषधियों के संबंध में बहुत बड़े-बड़े डॉक्टरों की जो भी निंदात्मक सम्मतियाँ दी गई हैं, वे सब वस्तुतः एलोपैथिक औषधियों पर ही है। औषधि-चिकित्सा की और भी जितनी प्रणालियाँ हैं वे भी थोड़ी बहुत दूषित और हानिकारक अवश्य हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि औषधि की सहायता से होने वाली अस्थायी आरोग्यता की अपेक्षा शरीर की स्वसम्पादित आरोग्यता कहीं अधिक अच्छी होती है। ऐसे में शरीर को आरोग्यता प्राप्त करने का सबसे अच्छा अवसर उसी समय

मिलता है जब कि उसकी सारी शक्तियों को सब तरह के भारों से छुट्टी मिल जाए। और यह छुट्टी लंघन या उपवास की सहायता से ही मिल सकती है।[233] इसी लिए आयुर्वेद में 'लंघनम् परमौषधम्' की बात कही गई है, जिससे शरीर को अपनी स्वाभाविक और आरोग्य स्थिति तक पहुँचने में बहुत अधिक सहायता मिलती है। और इस पुस्तक में इसी लंघन या उपवास के गुण, प्रकार तथा विधान आदि बतलाए गए हैं। जो इसलिए बहुत अधिक हृदयग्राही हैं क्योंकि वे प्राकृतिक, सहज एवं सदा युक्ति-युक्त हैं। रामचन्द्र वर्मा ने पुस्तक के वक्तव्य में इसकी पृष्ठभूमि बतलाते हुए उल्लेख किया है कि उस दौरान यूरोप, अमेरिका आदि कई देशों में बहुत से उपवास-चिकित्सालय खुल गए थे। जिनमें से हजारों असाध्यरोगी भी आरोग्यता प्राप्त कर चुके हैं। उन्हीं में से एक चिकित्सालय के अध्यक्ष और संस्थापक डॉक्टर बरनर मैकफेडन महाशय थे। जो केवल चिकित्सालय ही नहीं बल्कि उपवास-चिकित्सा-शास्त्र सिखलाने के लिए एक कॉलेज भी चलाते थे। उसी कॉलेज के पहले भारतीय ग्रेजुएट श्रीयुक्त डॉक्टर शावक बी॰ मादन हैं। जिन्होंने उस समय सान्ताकूज़ बम्बई में एक उपवास-चिकित्सालय खोला था। उन्होंने भी सैकड़ों पारसियों और मराठों आदि को केवल उपवास कराकर ही बड़े-बड़े भयंकर रोगों से मुक्त किया था। बहरहाल, प्रस्तुत पुस्तक इन्हीं डॉ॰ मैकफेडन की 'Fasting, Hydropathy and Exercise' नामक अँगरेजी पुस्तक तथा डॉ॰ मादन की 'उपवास' नामक गुजराती पुस्तक की सहायता लेकर लिखी गई है। जो हिन्दी के पाठकों के लिए वर्मा जी का एक अनुपम उपहार है। इससे अवश्य ही आरोग्यता की चाह रखने वाले लोगों में उपवास-चिकित्सा विधि को जानने की उत्कंठा पूर्ण होगी। इसलिए इस पुस्तक की उपादेयता आरोग्य उपचार पाने वालों हेतु आज के समय में भी बनी हुई है।

सन् 1917 ईस्वी में लिखी गई पुस्तक 'मानव-जीवन' सदाचार संबंधी उत्कृष्ट ग्रन्थ है; जिसके लिखे जाने का उल्लेख रामचन्द्र वर्मा ने सन् 1915 ई॰ में प्रकाशित अपनी एक अन्य पुस्तक 'सफलता और उसकी साधना के उपाय' की भूमिका में पहले ही प्रस्तुत कर दिया था। रामचन्द्र वर्मा के अनुसार यह पुस्तक संसार में मानव-जीवन के अभिप्राय को बतलाने के उदेश्य से लिखी गई है; जिससे लोगों को जीवन का वास्तविक महत्त्व मालूम हो

[233] रामचन्द्र वर्मा, *उपवास-चिकित्सा*, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - 1916 ई॰, वक्तव्य, पृष्ठ - 2

और उसके आवश्यक गुणों को प्राप्त करके वे यथासाध्य अपनी शक्तियों को परिमार्जित व उन्नत करके ऐसे श्रेष्ठ कार्य करें जिसमें उनकी कीर्ति, शक्ति, सम्पन्नता तथा योग्यता आदि बढ़े और संसार में सुख की वृद्धि हो। ताकि यथासाध्य सफलतापूर्वक परम उत्कृष्ट रीति से लोग अपना जीवन-निर्वाह कर सकें।[234] किन्तु नीति-संबंधी ऐसी पुस्तकों में दिए हुए उपदेशों का अक्षरशः और सर्वांग पालन नहीं हो सकता; ऐसे में इसके बतलाए अनुसार बहुत कुछ आचरण अवश्य किया जा सकता है और इससे लोगों के ज्ञान की भी बहुत कुछ वृद्धि हो सकती है। अतः ऐसी पुस्तकों की सार्थकता स्वतः सिद्ध है क्योंकि इनसे विचार परिमार्जित होते हैं और कार्यक्षेत्र में आचरण करने में बहुत कुछ सुविधा तथा सहायता भी होती है। रामचन्द्र वर्मा ने यह पुस्तक बहुत से ग्रन्थों को पढ़कर लिखी है; जिनमें से कुछ मुख्य पुस्तकों के नाम उन्होंने पुस्तक की भूमिका में दे दिए हैं। वैसे यह पूरी पुस्तक सदाचार, गार्हस्थ्य जीवन, सांसारिक जीवन, परिश्रम और कार्य, उपयोगी परामर्श, सुजनता और सुस्वभाव, ग्रन्थावलोकन और विद्याप्रेम, धन, सुख और शान्ति आदि उपशीर्षक के दस अध्यायों में विभक्त है।

आधुनिक भारतीय महापुरुषों में महात्मा गांधी का जीवन-वृत्त कई रूपों में लिखा गया है। इन्हीं आरंभिक जीवन-वृत्तों में रामचन्द्र वर्मा द्वारा सन् 1918 ई० में लिखित ग्रन्थ 'महात्मा गांधी' भी है; जिसमें गांधी की विस्तृत जीवनी के अतिरिक्त लेखक ने उनके कई महत्त्वपूर्ण आलेखों और व्याख्यानों को भी संकलित किया था।[235] अतः यह पुस्तक इसलिए भी उल्लेखनीय है क्योंकि रामचन्द्र वर्मा स्वयं गांधीवादी आदर्शों को मानने वाले व्यक्तियों में से थे। और ऐसे में ऐसे मार्गदर्शक कार्यों की उपादेयता आज के समय में बहुत अधिक बढ़-सी गई है।

---

[234] रामचन्द्र वर्मा, *मानव-जीवन*, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - 1917 ई०, भूमिका, पृष्ठ - 5

[235] रामस्वरूप चतुर्वेदी, *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*, वही, पृष्ठ - 160 (टिप्पणी : रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार 'महात्मा गांधी' पुस्तक रामचन्द्र वर्मा ने सन् १९२१ ई० में लिखी थी किन्तु रामचन्द्र वर्मा जन्मशती ग्रन्थ 'कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग' में दी गई सूची 'आचार्य रामचन्द्र वर्मा की कृतियाँ' के अंतर्गत इस पुस्तक का प्रकाशन वर्ष १९१८ ई० दिया गया है और चूँकि जन्मशती ग्रन्थ वाली पुस्तक रामस्वरूप चतुर्वेदी की पुस्तक 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' (प्रथम संस्करण : १९८६ ई०) के बाद सन् १९८९ ई० में प्रकाशित हुई है इसलिए इसी को प्रमाण मानते हुए यहाँ 'महात्मा गांधी' पुस्तक का प्रकाशन वर्ष १९१८ ई० माना गया है।)

रामचन्द्र वर्मा ने सन् 1919 ई॰ में हिन्दी पाठकों को विविध प्रकार के साम्यवादों की उत्पत्ति, विकास और प्रचार का सिलसिलेवार इतिहास बतलाने के लिए 'साम्यवाद' नामक पुस्तक लिखी थी; जिसकी प्रस्तावना लिखते हुए प्रोफ़ेसर जीवनशंकर याज्ञिक ने यह उल्लेख किया था कि साम्यवाद सामाजिक अनीतियों का उपाय बतलाता है और आशा दिलाता है कि समाज की सुव्यवस्था यदि उसके अनुसार कर दी जाए तो मनुष्य के कई बड़े-बड़े संकटों का अन्त हो जाए। वहीं रामचन्द्र वर्मा के अनुसार जो लोग साम्यवाद के सिद्धान्तों से अपरिचित हैं अथवा जो उनके सिद्धान्तों की बिना समझे-बूझे निंदा किया करते हैं उनके लिए यह (साम्यवाद) पुस्तक लिखी गई है। पुस्तक में साम्यवाद का आरम्भ से अब तक का इतिहास भी दिया गया है और उसके उद्देश्य तथा सिद्धान्त भी समझाए गए हैं। इस पुस्तक का मुख्य आधार थामस कर्कप का A history of Socialism नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ है जो साम्यवाद के इतिहासों में सर्वोत्तम समझा जाता है। इसके अतिरिक्त जेन॰ टी॰ स्टार्डट लिखित The new Socialism, वैरन पी॰ ग्रेवेनिज लिखित From autocracy to Bolshevism, आर्थर रैन्सम लिखित Six weeks in Russia in 1919 और बंकिमबाबू के लिखे हुए 'साम्य' नामक निबंध से भी इसमें विशेष सहायता ली गई है। वैसे रामचन्द्र वर्मा का यह मानना है कि इस पुस्तक में जिस सिद्धान्त का वर्णन किया गया है उसका नाम यद्यपि 'साम्यवाद' की अपेक्षा 'समष्टिवाद' ही अधिक उपयुक्त तथा युक्ति-युक्त है परन्तु आरंभ में कुछ कारणों से इसका नाम साम्यवाद ही रखा गया था जिसका निर्वाह विवश होकर अंत तक करना पड़ा है। ऐसे में सोलह शीर्षकों में विभक्त वर्मा जी की इस पुस्तक की सर्वप्रियता गहन विषयों के प्रति हिन्दी पाठकों के विशुद्ध अभिरुचि की साक्षी है।

सन् 1927 ई॰ में रामचन्द्र वर्मा लिखित 'मधु-चिकित्सा' नामक पुस्तक मधु या शहद के सेवन से अनेक रोगों को दूर करने और आरोग्य रहने के सुगम उपाय बतलाती है। यह पुस्तक प्रातःकाल सम्पादक पं॰ जगन्नाथ प्रभाकर की गुजराती पुस्तिका के आधार पर हिन्दी पाठकों के लिए लिखी गई है।

सन् 1928 ईस्वी में रामचन्द्र वर्मा ने 'निबंध रत्नावली' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी; इसमें ललित कलाएँ और काव्य, स्वास्थ्य विधान, कंबोडिया में प्राचीन हिन्दू राज्य,

विद्या और बुद्धि, धर्म, बुंदेलखण्ड पर्यटन, नकल का निकम्मापन, साहित्य में वीरत्व, कबीर की प्रेम-साधना, आचरण की सभ्यता, एक दुराशा, काव्य और करुणा, संस्कृत साहित्य का महत्त्व, श्मशान, साहित्यिक चन्द्रमा, कवि और कविता, प्रचलित और अप्रचलित झूठी बातें, जाति समस्या एवं उद्देश्य और लक्ष्य जैसे विविध विषयी उन्नीस निबंध शामिल भी थे। बहरहाल, साहित्य में निबंध का स्थान बहुत ऊँचा माना जाता है। रामचन्द्र वर्मा के अनुसार निबंध लिखना सहज अथवा हर किसी का काम नहीं है। और न उसके पढ़ने और समझने वालों की संख्या ही अधिक होती है। यही कारण है कि नवयुवकों के शिक्षा-क्रम में निबंधों को एक विशिष्ट स्थान दिया जाता है; जिसका मुख्य कारण यह है कि निबंधों के अध्ययन से नवयुवक विद्यार्थियों को अनेक प्रकार के लाभ होते हैं। उन्हें अनेक विषयों पर अनेक विद्वानों के उच्च और गूढ़ विचार निबंधों में एकत्र मिलते हैं। साथ ही, भिन्न-भिन्न लेख-शैलियों तथा विचार-प्रदर्शन की प्रणालियों का सहज में ही ज्ञान प्राप्त होता है और वस्तुतः किसी भी स्तर के विद्यार्थियों के लिए ये सब लाभ कुछ कम तो नहीं कहे जा सकते हैं।[236] ऐसे में वर्माजी हिन्दी साहित्य की निबंध-विधा में उच्चकोटि का रचनात्मक साहित्य रचने और निबंधों के संसार को हिन्दी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए उत्कृष्ट निबंधों का लेखन बहुत आवश्यक मानते थे। उन्होंने 'निबंध-रत्नावली' जैसे विविध विषयी निबंध संग्रह का संपादन हिन्दी साहित्य में निबंध-विधा के अभाव को दूर करने के लिए की थी।

रामचन्द्र वर्मा लिखित 'गोरों का प्रभुत्व' नामक पुस्तक सन् 1928 ई० में अँगरेजी की पुस्तक 'The Rising Tide of Colour' के आधार पर लिखी गई है; जिसमें महायुद्ध के समय के बाद युरोपीय देशों के प्रभुत्व से मुक्ति की चाह रखने वाले देशों की स्थितियों का उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार अब संसार में गोरों के प्रभुत्व का अंतिम घंटा बज चुका है। अतः एशियाई जातियाँ किस तरह आगे बढ़ कर अपना राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त कर रही हैं यही इस पुस्तक का मुख्य विषय है।

सन् 1934 ई० में 'भूकम्प पीड़ितों की करुण कहानियाँ' नामक पुस्तक का सम्पादन रामचन्द्र वर्मा ने किया था। जो वस्तुतः १५ जनवरी १९३४ ई० की दोपहर को २ बजकर १० मिनट पर आए भूकम्प आधारित बिहार के भूकम्प-पीड़ितों की परम आश्चर्य-जनक

[236] रामचन्द्र वर्मा, *निबंध-रत्नावली*, प्रकाशक अज्ञात, संस्करण - 1928 ई०, निवेदन, पृष्ठ - 1

और करुणापूर्ण सच्ची आत्म-कथाओं का एक संकलन है जिसके संलकलनकर्ता राधानाथ मिश्र तथा इन कहानियों के संग्रह-सहायक रामेश्वर शुक्ल और रामप्रसाद शर्मा थे। इसमें बिहार के कुछ भूकम्प प्रभावित क्षेत्रों जैसे मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर, सीतामढ़ी, मुँगेर और मोतीहारी आदि से जुड़ी कहानियों का संकलन किया गया है।

रामचन्द्र वर्मा ने सन् 1934 ईस्वी में 'पुरानी दुनिया' नामक पुस्तक लिखी थी; जिसमें संसार के प्राचीन कालों और निवासियों के संबंध की मुख्य-मुख्य बातें बहुत ही सरल ढंग से बतलाने का प्रयत्न किया गया है। यह पुस्तक विशेष रूप से ऐसे लोगों के लिए लिखी गई है, जो प्राचीन इतिहास का अध्ययन आरंभ करना चाहते हैं और यह जानना चाहते हैं कि संसार की सभ्यता के निर्माण में प्राचीन जातियों ने क्या सहायता की थी। पुस्तक को लेखक ने प्राचीन पूर्व, यूनान और रोम नामक तीन भागों में बाँटा है; जिनमें विशेष तौर पर उससे संबद्ध युगों और साम्राज्यों का विस्तार से उल्लेख किया गया है।

रामचन्द्र वर्मा संकलित 'मँगनी के मियाँ' सन् 1935 ई॰ में प्रकाशित चार दृश्यों का एक एकांकी प्रहसन है; जो लैरी ई॰ जान्सन कृत Her Step-husband नामक अँगरेजी प्रहसन का छायानुवाद है। रामचन्द्र वर्मा लिखते हैं कि "मूल पुस्तक में पाश्चात्य समाज का जो दृश्य था, उसे भारतीय रूप देने के लिए इस छायानुवाद में अनेक परिवर्तन और परिवर्धन करने पड़े हैं और बहुत सी ऐसी बातें, जिनके लिए हिन्दू समाज तथा संस्कृति में कोई स्थान नहीं है, बिलकुल छोड़ देनी पड़ी हैं।"[237] किन्तु इसमें संदेह नहीं कि मूल लेखक की कल्पना शक्ति और सूझ-बूझ बहुत ही अद्भुत है और इसीलिए इस प्रहसन में परिहास की सामग्री के अतिरिक्त विलक्षणता कुछ कम नहीं है। इन्हीं सब बातों के विचार से इस प्रहसन को वर्मा जी ने भारतीय रूप दे दिया है।

सन् 1941 ई॰ में रामचन्द्र वर्मा ने 'संसार की राजनीतिक प्रणालियाँ' नामक एक पुस्तक लिखी थी, जिसका दूसरा भाग ही प्राप्त होता है। इसमें सोवियत रूस, टर्की, जापान और ब्रिटिश भारत की राजनीतिक प्रणालियों पर विचार किया गया है।

उपरोक्त उल्लिखित विविध विषयी रचनात्मक पुस्तकों से ही रामचन्द्र वर्मा के मौलिक सृजन का वास्तविक बोध होता है। बहरहाल, यह हो सकता है कि इस श्रेणी में

[237] रामचन्द्र वर्मा, *मँगनी के मियाँ*, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति - 1935 ई॰, निवेदन

और भी कुछ पुस्तकें रही हों किन्तु इस शोध के दौरान यही सामग्री उपलब्ध हुई है; जिसके आधार पर रामचन्द्र वर्मा के लेखन की विविध विषय आधारित रचनात्मकता से परिचित होने का एक प्रयास किया गया है।

भाषा और व्याकरण क्षेत्र में रामचन्द्र वर्मा का योग

हिन्दी की आरम्भिक भाषायी संरचना को स्थायित्व देने एवं उसके व्यावहारिक प्रयोगों को आकार देने में भाषा और व्याकरण से जुड़ी रामचन्द्र वर्मा की मुख्य रूप से तीन महत्त्वपूर्ण पुस्तकें मिलती हैं, जो इस प्रकार हैं –

- अच्छी हिन्दी : साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, २० धर्मकूप, बनारस, प्रथम संस्करण - १९४४ ई०
- हिन्दी प्रयोग : साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, २० धर्मकूप, बनारस, प्रथम संस्करण - १९४६ ई०
- मानक हिन्दी व्याकरण : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण - १९६१ ई०

रामचन्द्र वर्मा की अच्छी हिन्दी (1944 ई०) और हिन्दी प्रयोग (1946 ई०) जैसे भाषा परिष्कार के निमित्त लिखे गए ग्रन्थ वास्तव में, व्याकरण की परम्परागत व्यवस्थित प्रणाली पर न लिखे गए होने पर भी; हिन्दी भाषा के स्वरूप, उसकी प्रकृति एवं प्रवृत्ति के विवेचन की दृष्टि से अध्येताओं और विद्वानों के बीच मार्गदर्शन का कार्य करने में अधिक प्रामाणिक सिद्ध हुए। इस बारे में बदरीनाथ कपूर लिखते हैं कि सन् "1943 में वर्माजी की अत्यंत प्रसिद्ध कृति 'अच्छी हिन्दी' प्रकाशित हुई। इसमें विभिन्न लेखकों की सैकड़ों प्रकार की भाषा-संबंधी भूलों की ओर हिन्दीवालों का ध्यान आकृष्ट किया गया था।"[238] चूँकि जो कुछ किसी अच्छी भाषा के लिए आवश्यक समझा जाता है उनमें से शुद्ध, कलात्मक, मधुर और प्रभावशाली गुणों को सँजोते हुए रामचन्द्र वर्मा ने 'अच्छी हिन्दी' पुस्तक लिखी थी। अतः कहना न होगा कि वास्तव में हिन्दी-संबंधी बहुत-सी शंकाओं का 'अच्छी हिन्दी' समाधान प्रस्तुत करती है। इस तरह यह पुस्तक भाषा-व्याकरण के सभी तत्त्वों पर विचार करके हिन्दी की सामान्य अशुद्धियों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए अच्छी हिन्दी के उदाहरण भी प्रस्तुत करती है। बहरहाल, ज्ञात हो कि इसके कुछ-एक वर्ष

[238] बदरीनाथ कपूर, *शब्दब्रह्म के महान उपासक आचार्य रामचन्द्र वर्मा*, हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), *कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग*, वही, पृष्ठ - 167

बाद ही सन् "1945 में आरंभिक विद्यार्थियों में शुद्ध भाषा लिखने का संस्कार जगाने के लिए वर्माजी ने हिन्दी प्रयोग की रचना की। अच्छी हिन्दी और हिन्दी प्रयोग में जो त्रुटियाँ और भूलें रह गई थीं उनकी ओर भी अनेक महानुभावों ने ध्यान आकृष्ट किया। उनमें से प्रमुख थे पं० किशोरीदास वाजपेयी, डॉ० अंबाप्रसाद सुमन, डॉ० ब्रजमोहन आदि। वर्माजी ने इन लोगों के सुझावों का आदर किया और अपनी पुस्तकों में संशोधन-परिवर्तन भी किया और साथ ही उन्हें धन्यवाद भी दिया।"[239] इस प्रकार हिन्दी भाषा को मानकीकृत रूप और उसके प्रयोग को एक मानक आदर्श प्रदान करने में जिन पुस्तकों का आरंभिक योगदान रहा है उनमें 'अच्छी हिन्दी' और 'हिन्दी प्रयोग' का स्थान आज भी विशिष्ट बना हुआ है।

हिन्दी भाषा में होनेवाली कई प्रकार की भूलों और उनके सुधार का व्यवस्थित विवेचन करने वाली वर्मा जी की पुस्तक 'अच्छी हिन्दी' (1944 ई०) वस्तुतः हिन्दी भाषा का स्वरूप विशुद्ध, स्थिर और कमनीय करने के उद्देश्य से लिखी गई है। उस शुरुआती दौर में जो हिन्दी चल रही थी, उसमें बहुत कुछ परिमार्जन की आवश्यकता भी दिखलाई दे रही थी। रामचन्द्र वर्मा 'अच्छी हिन्दी' के माध्यम से वास्तव में भाषा के क्षेत्र में होने वाले उस भटकाव को दूर करने का प्रयत्न कर रहे थे, जो मानकीकृत भाषा के रूप में हिन्दी के क्षेत्र में सामने आने वाली थी। उनकी यह सतर्कता आज भी 'अच्छी हिन्दी' के रूप में उपादेय है। ज्ञात हो कि सन् 1944 ई० में प्रकाशित इस पुस्तक की प्रस्तावना बाबूराव विष्णु पराड़कर ने लिखी थी। जहाँ उन्होंने अपनी उस प्रस्तावना में ही यह उल्लेख कर दिया था कि "'अच्छी हिन्दी' न व्याकरण है, न रचना-पद्धति। वह साहित्य की शिक्षा नहीं देती, लेखन-कला भी नहीं सिखाती। कैसे लिखना चाहिए, यह वह नहीं बताती। वह केवल उन गड्ढों को दिखा देती है जो नवीन लेखकों के मार्ग में प्रायः पड़ते हैं, और जिनसे उन्हें बचना चाहिए। अर्थात् वर्मा जी ने वह भूलें दिखा दी हैं जो नये और पुराने, पर असावधान लेखक प्रायः करते दिखाई देते हैं।"[240] इन्हीं भूलों का विश्लेषण करते हुए वर्मा जी ने उन्हें पूरी पुस्तक में भाषा की परिभाषा, भाषा की प्रकृति, उत्तम रचना, अर्थ, भाव और ध्वनि, शैली, वाक्य-विन्यास, संज्ञाएँ और सर्वनाम, विशेषण और क्रिया-विशेषण, क्रियाएँ और

---

[239] वही, पृष्ठ - 167

[240] रामचन्द्र वर्मा, *अच्छी हिन्दी*, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण - 1944 ई०, प्रस्तावना, पृष्ठ - 5

मुहावरे, विभक्तियाँ और अव्यय, लिंग और वचन, छाया-कलुषित भाषा, समाचार-पत्रों की हिन्दी, अनुवाद की भूलें, फुटकर बातें, हमारी आवश्यकताएँ और भाषा के नमूने (परिशिष्ट) जैसे कई भिन्न-भिन्न वर्गों में बाँट दिया है।

'अच्छी हिन्दी' के संबंध में तब कई महानुभावों ने वर्मा जी को अपनी सम्मतियाँ व्यक्त की थीं, उनमें से कुछ दो-एक का यहाँ उल्लेख करना उचित जान पड़ता है, जो इस प्रकार हैं – अयोध्यासिंह उपाध्याय की सम्मति है कि आपकी रचना उच्च कोटि की है, इसमें सन्देह नहीं। आपने ग्रन्थ का नाम 'अच्छी हिन्दी' लिखा है। मैं तो उसका नाम 'आदर्श हिन्दी' रखता हूँ। वहीं बाबूराम सक्सेना लिखते हैं कि इस पुस्तक में लेखक के दीर्घ-कालीन अनुभव और कठिन परिश्रम का फल इकट्ठा मिलता है। 'अच्छी हिन्दी' पढ़कर बहुतेरे हिन्दी विद्वान भी अपनी हिन्दी अच्छी कर सकते हैं। नवयुवक हिन्दी लेखकों को तो इसे बार-बार पढ़ना चाहिए। पुस्तक बड़े काम की है। और पुस्तक के प्रति अपनी सम्मति में लक्ष्मणनारायण गर्दे लिखते हैं कि इसे हाथ में लेने पर अन्त तक पढ़े बिना रख देने को बिलकुल जी नहीं चाहता। इसका उद्देश्य बहुत अधिक गम्भीर है – विषय साधारण से बहुत अधिक महत्त्व का बन पड़ा है और यह पुस्तक राष्ट्र-भाषा का मंगल-गान है।

इन्हीं उक्त कारणों से तब यह पुस्तक हिन्दी भाषा शिक्षण में विद्यार्थियों के स्वाध्याय के लिए अनिवार्य रूप से स्वीकृत मानी जाती थी। 'अच्छी हिन्दी' को उस दौर के शिक्षा-क्रम से निम्न-लिखित संस्थानों ने विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में शामिल किया हुआ था – इण्टरमीडिएट के स्तर पर यह पुस्तक मद्रास विश्वविद्यालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, नागपुर विश्वविद्यालय, पूर्वी पंजाब विश्वविद्यालय, राजपूताना हाई स्कूल-इण्टर-बोर्ड और संयुक्त प्रान्त हाई स्कूल-इण्टर-बोर्ड के पाठ्यक्रम में शामिल की गई थी। बी०ए० के स्तर पर यह पुस्तक लखनऊ विश्वविद्यालय, आगरा विश्वविद्यालय, पटना विश्वविद्यालय, प्रयाग विश्वविद्यालय, ट्रावनकोर विश्वविद्यालय और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल थी। उत्तमा और मध्यमा के स्तर पर यह पुस्तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के पाठ्यक्रम में शामिल थी। वहीं राष्ट्र-भाषा-रत्न के स्तर पर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के पाठ्यक्रम में; अधिकारी के स्तर पर गुरुकुल विश्वविद्यालय, काँगड़ी के पाठ्यक्रम में; विशारद के स्तर पर दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार

सभा, मद्रास के पाठ्यक्रम में; उपाधि के स्तर पर हिन्दी विद्यापीठ, बम्बई के पाठ्यक्रम में तथा बी०टी० के स्तर पर टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, बनारस और टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, प्रयाग के पाठ्यक्रम में शामिल थी। इसलिए उस दौर में 'अच्छी हिन्दी' पुस्तक अपने विषयवस्तु की उपादेयता की दृष्टि से बेहद प्रसिद्धि और लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी थी।

रामचन्द्र वर्मा की 'हिन्दी प्रयोग' (1946 ई०) पुस्तक "ऐसे विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है जिन्हें व्याकरण का साधारण ज्ञान हो चुका हो; अर्थात् आजकल के स्कूलों के नवें-दसवें दरजों के विद्यार्थियों या उनके समान योग्यता रखने वाले अन्य विद्यार्थियों के हित के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि और लोग इससे लाभ नहीं उठा सकते। इसमें भाषा की शुद्धता से संबंध रखने वाली बहुत-सी ऐसी ऐसी बातें बतलाई गई हैं, जो अच्छे-अच्छे लेखकों के लिए भी बहुत अधिक उपयोगी हो सकती हैं।"[241] वर्माजी के अनुसार जब इस प्रकार की पुस्तकों से भाषा परिष्कार संबंधी अधिकांश बातें विद्यार्थी लोग स्कूल छोड़ने से पहले सीख लेंगे, तब उनका एक ऐसा बहुत बड़ा दल अवश्य तैयार हो जाएगा, जो हिन्दी भाषा के सब दोषों का समूल नाश करके उसका मुख उज्ज्वल कर दिखलाएगा। यही कारण है कि उस दौर में 'हिन्दी प्रयोग' पुस्तक को संयुक्त प्रान्त, बिहार और राजपूताने तथा मध्य भारत की हाई स्कूल परीक्षाओं एवं प्रयाग महिला विद्यापीठ की विद्या-विनोदिनी परीक्षा तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की प्रथमा परीक्षा के पाठ्यक्रम में स्थान मिल चुका था। बहरहाल, रामचन्द्र वर्मा ने 'हिन्दी प्रयोग' पुस्तक में भाषा प्रयोग के जो आदर्श बतलाए हैं उससे संबद्ध हिन्दी प्रयोगों में मुख्य रूप से यह पुस्तक शब्दों के प्रकार, शब्दों के रूप, शब्दों के अर्थ, शब्दों का चुनाव, शब्दों का स्थान, हिन्दी ढंग, वाक्यों की बनावट, संज्ञाएँ, सर्वनाम, विशेषण, क्रियाएँ, वचन, लिंग, परसर्ग, विभक्तियाँ और निबंध जैसी सभी शब्दानुशासनिक प्रवृतियों एवं उनके प्रयोगों पर व्यावहारिक उदाहरणों के साथ विचार-विश्लेषण प्रस्तुत करती है।

उस दौर में साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, २० धर्मकूप, बनारस से प्रकाशित 'हिन्दी प्रयोग' पुस्तक के संबंध में कुछ चुनी हुई सम्मतियाँ भी प्रकाशित हुई थीं; जिससे यह

---

[241] रामचन्द्र वर्मा (मूल लेखक), बदरीनाथ कपूर (संशोधन एवं परिवर्धन), *हिन्दी प्रयोग*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीन संशोधित संस्करण - 2009 ई०, भूमिका, पृष्ठ - viii-ix

अनुमान लगाया जा सकता है कि उस दौरान इस पुस्तक पर शैक्षिक और आकादमिक जगत से जुड़े कई महानुभावों ने अपनी संस्तुति प्रदान की थी। ऐसे में तब निश्चित तौर पर यह कहा जाने लगा था कि हिन्दी का भविष्य ऐसी ही पुस्तकों पर अभिमान करेगा। ऐसे में रामचन्द्र वर्मा का लेखन ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन से हिन्दी पाठकों के लिए और अधिक उपयोगी बन पड़ा है।

यहाँ उपरोक्त तथ्यों की आवश्यकता और उसकी नितांत महत्ता को रेखांकित करने की दृष्टि से देखें तो हमें यह ज्ञात होता है कि "अपने देश में बहुत से ऐसे विद्वान हैं जिनमें विषय की योग्यता है किन्तु निष्पादन-क्षमता नहीं है। उन्हें विषय को सजाना-सँवारना नहीं आता। वर्माजी इस कला में भी सिद्धहस्त थे। किसी लेख में कौन-सा प्रकरण पहले आए, कौन-सा बाद में – यह वे अच्छी तरह जानते थे।"[242] इस संदर्भ में इनका लेख 'अर्थ-विवेचन की कला' जो 'शब्द और अर्थ' पुस्तक में छपा है, एक प्रतिमान है। जो उक्त विषय के अनेकानेक पहलुओं को समाविष्ट करते हुए उन्हें स्पष्ट करता है।

मानक हिन्दी व्याकरण (1961 ई०) एक अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। इस पुस्तक के बारे में वर्मा जी लिखते हैं कि "इस व्याकरण का उद्देश्य विद्यार्थियों को बहुत सहज में और नये मनोरंजक ढंग से व्याकरण की जटिल तथा शुष्क बातों से परिचित कराना है। इसमें अनेक शब्द-भेदों की बिलकुल नई प्रकार की व्याख्या दी गई है; और विषय-विभाजन भी बहुत कुछ नये ढंग से किया गया है।"[243] अतः यह 'मानक हिन्दी व्याकरण' की ऐसी विशेषता है जो स्वयं लेखक में भी इस पुस्तक की उपयोगिता तथा उपादेयता के सिद्ध होने की आशा जगाता है। रामचन्द्र वर्मा व्याकरण के महत्त्व को समझते थे। इसलिए आधुनिक युग में व्याकरण के विस्तृत क्षेत्र से भाषा विज्ञान, अर्थ विज्ञान और अलंकार शास्त्र जैसे अंगों को अलग कर दिए जाने तथा उनके स्वतंत्र-शास्त्रों के रूप में माने जाने को रेखांकित करते हुए वर्मा जी आगे लिखते हैं कि "अब व्याकरण में बोल-चाल तथा साहित्य में प्रयुक्त होनेवाली भाषा के स्वरूप, उसके अवयवों, उनके प्रकारों और पारस्परिक संबंधों तथा

---

[242] ब्रजमोहन, *शब्दर्षि श्री रामचन्द्र वर्मा*, हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग, वही, पृष्ठ - 173

[243] रामचन्द्र वर्मा, *मानक हिन्दी व्याकरण*, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 1961 ई०, निवेदन

उनके रचना-विधान और रूप-परिवर्तन का विचार होता है ।"[244] इस तरह व्याकरण को भाषा संबंधी नियमों का संकलन कहना चाहिए। रामचन्द्र वर्मा ने 'मानक हिन्दी व्याकरण' पुस्तक में हिन्दी भाषा और उसके व्याकरण संबंधी इन्हीं नियमों पर विचार किया है; जिसमें व्याकरण का महत्त्व, वर्ण-भेद, लिपि, शब्द-भेद, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और क्रिया-विशेषण, अव्यय, शब्द-विकार, कारक और विभक्तियाँ, लिंग, वचन, क्रिया-पद, क्रिया-पदों की रचना, वाक्य-विचार, संधि और समास, पद-परिचय और विराम-चिह्न जैसे उन्नीस प्रकरणों पर विचार किया गया है।

रामचन्द्र वर्मा की उक्त व्याकरण पुस्तक हिन्दी व्याकरण लेखन के आरंभिक कार्यों में से एक है; ऐसे में उसका मूल्यांकन व्याकरण के आधुनिक मानकों पर भी आधारित होना चाहिए। उल्लेखनीय है कि 'हिन्दी व्याकरण का इतिहास' के लेखक अनन्त चौधरी के अनुसार 'मानक हिन्दी व्याकरण' किसी भी दृष्टि से हिन्दी-व्याकरण के मानक रूप को प्रस्तुत नहीं करता। अतः उसमें प्रयुक्त 'मानक' शब्द हिन्दी-व्याकरण का एक अर्थहीन विशेषण ही माना जाना चाहिए। इस ग्रन्थ का अधिकांश कामताप्रसाद गुरु और किशोरीदास वाजपेयी के व्याकरण ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है। जहाँ-कहीं इसमें थोड़ा-बहुत मौलिकता-प्रदर्शन का नवीन प्रयास किया भी गया है, वहाँ सूक्ष्म चिन्तन के अभाव के कारण केवल असफलता ही लेखक के हाथ आई है। एकमात्र क्रियाविशेषण और अव्यय के प्रसंग में कुछ ऐसी बातें अवश्य कही गई है, जिनको विचारणीय कहा जा सकता है, अन्यथा पूरे ग्रन्थ में वर्माजी के उस विवेचक रूप का दर्शन कहीं नहीं होता, जिसने 'अच्छी हिन्दी' जैसे अच्छे ग्रन्थ की रचना की थी।[245]

बहरहाल, उक्त तीनों पुस्तकों के आधार पर ही हिन्दी भाषा और व्याकरण क्षेत्र में रामचन्द्र वर्मा के किए गए योगदान को रेखांकित किया जा सकता है। ऐसे तो वर्मा जी आजीवन हिन्दी के परिमार्जन एवं परिष्कार के कार्यों में लगे रहे किन्तु जो सेवाभाव उन्होंने अच्छी हिन्दी, हिन्दी प्रयोग और मानक हिन्दी व्याकरण जैसी श्रमसाध्य पुस्तकों के माध्यम से प्रस्तुत किया, वह उनके योगदान के महत्त्व को और अधिक बढ़ा देता है।

---

[244] वही, पहला प्रकरण, पृष्ठ - 1

[245] अनन्त चौधरी, *हिन्दी व्याकरण का इतिहास*, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, द्वितीय संस्करण - 2013 ई०, पृष्ठ - 552

रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं का कृतित्व

भारतीय कोश-विज्ञान के आधुनिक यास्क माने जाने वाले रामचन्द्र वर्मा ने कोशकारिता के क्षेत्र में ऐसे कई अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं जो समय के साथ आज इस क्षेत्र में उनकी पहली पहचान बन गए हैं । उन्होंने अपने गहन अध्यवसाय, अध्ययन, ग्रन्थानुशीलन, विवेक, सूक्ष्मता और विज्ञान-वृत्ति के साथ कोश-निर्माण के इन कार्यों को पूरा किया है । जिन कुछ-एक शब्दों के विषय में उन्हें कोई समस्या हुई उनके संबंध में वर्मा जी ने उस विषय के विद्वानों से उसका समाधान पाने का प्रयास किया और उनसे किए गए विचार-विमर्श के आधार पर अपने कार्य को आगे बढ़ाया। किसी भी कोशकार के लिए इस क्षेत्र में यह मधुकर-वृत्ति नितांत आवश्यक और अपरिहार्य मालूम होती है । बहरहाल, रामचन्द्र वर्मा को कोश-कार्य के क्षेत्र में ६० वर्षों से भी अधिक का अनुभव था। वे आजीवन इस कार्य से जुड़े रहे। ऐसे में उनकी उपलब्ध कोश-रचनाओं के कृतित्व का सम्यक मूल्यांकन किया जाना भी एक आवश्यक कार्य जान पड़ता है। इससे हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा के योगदान को समझने में आसानी होगी । अतः यहाँ अब आगे शोध के दौरान उपलब्ध हुए वर्मा जी के कोशों की सूची[246] के साथ-साथ उनकी कोश-रचनाओं के कृतित्व की लघु समीक्षा का भी प्रयास किया गया है –

- हिंदी शब्दसागर (प्रथम भाग) : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण - १९८६ ई०
- हिंदी शब्दसागर (द्वितीय भाग) : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण - १९८७ ई०
- हिंदी शब्दसागर (तृतीय भाग) : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण - १९९२ ई०
- हिंदी शब्दसागर (चतुर्थ भाग) : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण - १९९५ ई०
- हिंदी शब्दसागर (पंचम भाग) : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण - १९९५ ई०
- हिंदी शब्दसागर (छठा भाग) : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण - १९६९ ई०

[246] यहाँ दी गई सूची में रामचन्द्र वर्मा के कोशों के प्रकाशन क्रम से केवल उपलब्ध हुए संस्करणों के वर्ष का ही उल्लेख किया गया है तथा जिन कोशों के आधार पर बदरीनाथ कपूर ने वर्मा जी के कोशों के कुछ नए संशोधित संस्करण तैयार किए हैं उन्हें आधार कोशों के उसी क्रम के साथ नीचे क्रमशः दे दिया गया है। वहीं यह उल्लेखनीय है कि कोश-कला, हिन्दी कोश-रचना तथा शब्द और अर्थ जैसी कुछ-एक भिन्न शैली की पुस्तकों, जो कोश-रचनाओं के मूल्यांकन पर ही लिखी गई हैं, इस सूची में भी शामिल किया गया है ताकि रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के कृतित्व का अध्ययन संपूर्णता में किया जा सके।

- हिंदी शब्दसागर (सातवाँ भाग) : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण - १९७० ई०
- हिंदी शब्दसागर (आठवाँ भाग) : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण - १९७१ ई०
- हिंदी शब्दसागर (नवाँ भाग) : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण - १९७२ ई०
- हिंदी शब्दसागर (दसवाँ भाग) : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण - १९७३ ई०
- हिंदी शब्दसागर (ग्यारहवाँ भाग) : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण - १९७५ ई०
- संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण - २०१४ ई०
- देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश : हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, संस्करण - १९४० ई०
  १. उर्दू-हिन्दी कोश : लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण - २०१९ ई०
  २. उर्दू-हिन्दी-अंग्रेजी त्रिभाषी कोश : लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण - २०१९ ई०
- आरक्षिक शब्दावली : काशी-नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्रथमावृत्ति - १९४८ ई०
- स्थानिक परिषद् शब्दावली : काशी-नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्रथमावृत्ति - १९४८ ई०
- प्रामाणिक हिन्दी कोश : साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण - १९५० ई०
  १. बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण - २०१७ ई०
  २. प्रामाणिक हिन्दी कोश (संक्षिप्त संस्करण) : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण - २००९ ई०
  ३. प्रामाणिक हिन्दी बाल कोश : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण - २०१३ ई०
- कोश-कला : साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण - १९५२ ई०
- हिन्दी कोश-रचना (प्रकार और रूप): साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण - १९५४ ई०
- शब्द-साधना : साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण - १९५५ ई०
- मानक हिन्दी कोश (पहला खण्ड) : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण - २००६ ई०
- मानक हिन्दी कोश (दूसरा खण्ड) : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण - २००७ ई०
- मानक हिन्दी कोश (तीसरा खण्ड) : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण - २००६ ई०
- मानक हिन्दी कोश (चौथा खण्ड) : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण - २००७ ई०
- मानक हिन्दी कोश (पाँचवाँ खण्ड) : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण - २००७ ई०
- शब्द और अर्थ : शब्द-लोक प्रकाशन, बनारस, पहला संस्करण - १९६५ ई०
- शब्दार्थ-दर्शन : रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण - १९६८ ई०
  १. शब्दार्थ-विचार कोश : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, संस्करण - २०१५ ई०

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा से 'हिन्दी शब्दसागर' का प्रथम संस्करण आठ भागों में पहली बार सन् 1912-1929 ई॰ तक प्रकाशित हुआ था। बाद में 1965-1976 ई॰ के बीच इसका परिवर्द्धित संस्करण ग्यारह भागों में सभा से ही प्रकाशित हुआ। इसके मूल संपादक श्यामसुन्दरदास थे और रामचन्द्र वर्मा इसके मूल सहायक संपादकों में से ही एक थे। शब्दसागर के अन्य सहायक संपादकों में बालकृष्ण भट्ट, रामचन्द्र शुक्ल, अमीर सिंह, जगन्मोहन वर्मा और भगवानदीन थे। किन्तु बाद में इसके सम्पादक-मण्डल में सम्पूर्णानंद, कमलापति त्रिपाठी, मंगलदेव शास्त्री, धीरेंद्र वर्मा, कृष्णदेवप्रसाद गौड़, नगेंद्र, रामधन शर्मा, हरवंशलाल शर्मा, शिवनंदनलाल दर, शिवप्रसाद मिश्र, सुधाकर पांडेय, गोपाल शर्मा, भोलाशंकर व्यास, करुणापति त्रिपाठी आदि का नाम भी जुड़ता रहा है। साथ ही इसके सहायक संपादकों में त्रिलोचन शास्त्री और विश्वनाथ त्रिपाठी का नाम भी बाद में शामिल किया गया था। इस तरह 'हिन्दी शब्दसागर' कोश-रचना के क्षेत्र में एक अभिनव प्रयोग था, जिसका संपादन-प्रकाशन 20वीं शताब्दी के कालखंड में हिन्दी संसार के लिए एक अप्रतिम घटना थी। यह कोश-ग्रन्थ अपने प्रकाशित होने के बाद से ही, और संभवतः आज तक, हिन्दी कोशकारिता के क्षेत्र में एक उपजीव्य ग्रन्थ के रूप में स्थापित हुआ है। रामचन्द्र वर्मा ने 'हिन्दी शब्दसागर' के आरंभ से ही कोश-रचना कार्यों में भागीदारी की शुरुआत की थी, जिससे आजीवन उनका जुड़ाव हो गया था। ऐसे में कोश-कार्य के क्षेत्र में वर्माजी की पहचान स्थापित करने में शब्दसागर की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

हिन्दी शब्दसागर के प्रकाशन के दो-एक वर्षों बाद रामचन्द्र वर्मा ने उसके लघु रूप वाले संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर का संपादन किया, जो नागरीप्रचारिणी सभा से 1933 ई॰ में प्रकाशित हुआ। यह शब्दसागर का एक संक्षिप्त संस्करण था। शब्दसागर में व्युत्पत्ति, अर्थ विचार आदि की अनेक भूलों और त्रुटियों के सुधार की आवश्यकता का अनुभव कर उसके आद्योपांत संशोधन का भार रामचन्द्र वर्मा को दिया गया था; जिसका उन्होंने अपने संपादन में यथा सामर्थ्य प्रति संस्कार और परिवर्द्धन किया। शब्दसागर का संक्षिप्त अंश होने के नाते यह श्रेष्ठता, प्रामाणिकता तथा आदर्श की उसी परम्परा का उत्तराधिकारी है।

1936 ई॰ में रामचन्द्र वर्मा के संपादन में देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश का प्रकाशन हुआ। इसकी भूमिका वंशीधर विद्यालंकार ने लिखी थी। वे भूमिका में लिखते हैं कि "बहुत-से हिन्दी से अनभिज्ञ उर्दू जानने वाले लोग इस तरह के हिन्दी-शब्दकोश की तलाश

में हैं जो हो तो उर्दू लिपि में परन्तु जिसके द्वारा हिन्दी शब्दों का ज्ञान हो सके और इसी प्रकार उर्दू से अनभिज्ञ हिन्दी जानने वाले इस तरह के उर्दू-कोश की खोज में हैं जो हो तो नागरी लिपि में परन्तु जिसके द्वारा उन्हें उर्दू के शब्दों का यथार्थ परिचय प्राप्त हो सके।"[247] अतः इस बात में तो कोई संदेह नहीं कि इस प्रकार से दोनों भाषाओं का पारस्परिक ज्ञान उर्दू-हिन्दी भाषाओं को निकट ला सकेगा, जिससे शायद धीर-धीरे इन दोनों भाषाओं की दूरी और पृथक्ता मिट सकेगी। रामचन्द्र वर्मा का यह देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश भी एक इसी तरह का साहसपूर्ण प्रयत्न है। चूँकि इस कोश के द्वारा उर्दू-शब्दों के जानने का एक ऐसा आधार प्रस्तुत कर दिया गया है जिसे इसे एक प्रामाणिक उर्दू-हिन्दी कोश के रूप में परिणत किया जा सकता है। बहरहाल, रामचन्द्र वर्मा ने देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश के पहले संस्करण की प्रस्तावना में यह उल्लेख किया है कि इस कोश को तैयार करने में उन्होंने फहरंग आसफ़िया (चार भाग, रचयिता मौलवी सैयद अहमद साहब देहलवी), लुग़ाते किशोरी (रचयिता मौलवी सैयद तसद्दुक हुसेन रिज़वी), न्यू हिन्दुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी (रचयिता डॉ॰ एस॰ डब्लू॰ फ़ैलन) जैसे कोशों की सहायता ली है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर उन्हें ग़यास उल् लुग़ात और करीम उल् लुग़ात से भी कुछ विशेष सहायता मिली है। वहीं वर्मा जी संपादित संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर से भी इस कोश के प्रणयन में सहयोग लिया गया है। बाद में बदरीनाथ कपूर ने रामचन्द्र वर्मा सम्पादित इसी देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश का संशोधन एवं पुनर्सम्पादन करते हुए पुनः उर्दू-हिन्दी कोश (उर्दू लिपि सहित) और उर्दू-हिंदी-अंग्रेजी त्रिभाषी कोश के रूप में प्रकाशित कराया।

रामचन्द्र वर्मा के कोश-कार्यों के संबंध में बदरीनाथ कपूर बतलाते हैं कि 1940 ई॰ में एक वर्ष के लिए रामचन्द्र वर्मा महाराज बिलासपुर के निमंत्रण पर हिमाचल प्रदेश में रहे और वहाँ से उन्होंने प्राथमिक, मिडिल और हाईस्कूल के विद्यार्थियों के उपयोग के लिए श्रेणीबद्ध शब्दावलियों का प्रणयन किया। बाद में आनंद शब्दावली के नाम से ये शब्दावलियाँ पुस्तकाकार प्रकाशित हुई थीं।[248] बहरहाल, ज्ञात हो कि वर्माजी संपादित यह 'आनंद शब्दावली' सन् 1941 ई॰ में प्रकाशित हुई थी।

---

[247] रामचन्द्र वर्मा (संपादक), *देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश*, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, संशोधित और परिवर्द्धित किया हुआ दूसरा संस्करण - 1940 ई॰, भूमिका, पृष्ठ - 8

[248] बदरीनाथ कपूर, *शब्दब्रह्म के महान उपासक आचार्य रामचन्द्र वर्मा*, हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), *कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग*, वही, पृष्ठ - 167

पुलिस विभाग-संबंधी अँगरेजी-उर्दू शब्दों के हिन्दी पर्याय बतलाने वाली 'आरक्षिक शब्दावली' रामचन्द्र वर्मा के सम्पादन में सन् 1948 ई॰ में नागरीप्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुई; जिसके प्राक्कथन में वर्मा जी ने उल्लेख किया है कि "यह शब्दावली केवल आरक्षिक विभाग के लिए ही उपयोगी न होगी बल्कि उससे संबद्ध न्यायालयों एवं सर्वसाधारण के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी।"[249] बहरहाल, इस शब्दावली को रामचन्द्र वर्मा के कोश-रचना संबंधी कार्यों की विविधता के रूप में देखना चाहिए जो उस समय हिन्दी को राजभाषा के साथ-साथ कामकाज और व्यवहार की भाषा बनाने के प्रयासों के साथ जुड़ी हुई थी।

डल-परिषदों तथा नागर परिषदों में व्यवहृत होने वाले अँगरेजी-अरबी-फ़ारसी शब्दों के हिन्दी पर्याय बतलाने वाली 'स्थानिक परिषद् शब्दावली' रामचन्द्र वर्मा और गोपालचन्द्र सिंह के सम्पादन में सन् 1948 ई॰ में काशी के नागरीप्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुई। यह कोश भी सभा द्वारा वर्मा जी के सम्पादन में तैयार किए जा रहे कोशों का एक प्रमुख घटक है, जिसकी पृष्ठभूमि वस्तुतः राजभाषा हिन्दी में राजकीय कार्यालयों के प्रयोग हेतु तैयार की जाने वाली शब्दावली के निर्माण से जुड़ा हुआ था। इस तरह समष्टिगत रूप से रामचन्द्र वर्मा कोशकारिता के कार्य क्षेत्र को अपनी राजभाषा में शब्दावली निर्माण के दायित्व के साथ समर्पित कर रहे थे।

रामचन्द्र वर्मा सम्पादित 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' सन् 1950 ई॰ में प्रकाशित हुआ था। इसमें सहायक सम्पादक के रूप में जयकान्त झा का सहयोग भी शामिल है। यह कोश वस्तुतः हिन्दी भाषा के प्रामाणिक शब्दों का संग्रह माना जाता है, जिसमें ऐसे सैकड़ों शब्दों को रखा गया है जो पहले से हमारी भाषा के अंग हैं, किन्तु जिनका आज तक कोशों में समावेश नहीं हो पाया था। प्रामाणिक हिन्दी कोश की विशिष्टता को रेखांकित करते हुए रामचन्द्र वर्मा ने इसके उपयोग से पहले इसकी प्रस्तावना को ध्यानपूर्वक पढ़ने का आग्रह किया है। चूँकि इस कोश की प्रस्तावना में अन्यान्य कोशों की भूलें, शब्दों का चुनाव, शब्दों के मानक रूप, शब्द-भेद, लिंग-निर्णय, व्युत्पत्ति, अर्थ-विचार, मुहावरे आदि के

---

[249] रामचन्द्र वर्मा (संपादक), *आरक्षिक शब्दावली*, काशी-नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्रथमावृत्ति - 1948 ई॰, प्राक्कथन

विषय में 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' की कोशगत प्रविष्टियों तथा नए प्रयोगों के संबंध में उपयोगी सूचनाएँ दी गई हैं। बहरहाल, इसी कोश का उपयोगिता की दृष्टि से संशोधन और परिवर्द्धन करते हुए बदरीनाथ कपूर ने बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश, प्रामाणिक हिन्दी कोश (संक्षिप्त संस्करण) तथा प्रामाणिक हिन्दी बाल कोश (जो कि वस्तुतः पॉकेट डिक्शनरी या कहें कि विद्यार्थी संस्करण है) के रूप में प्रकाशित कराया है।

रामचन्द्र वर्मा ने 1952 ई॰ में 'कोश-कला' की रचना की थी। जो कोशकार्य के दौरान ध्यान में रखी जाने वाली बातों का सारांश है। ऐसे में यह 'कोशकला' एक कोशकार द्वारा किए गए कोश-संपादन संबंधी ज्ञान का निचोड़ है। जिस कारण कोश-साहित्य पर लिखी गई विश्व-साहित्य में संभवतः यह पहली पुस्तक बतलाई जाती है; जो हिन्दी भाषा में भी अपने ढंग की पहली पुस्तक थी। इस छोटी-सी पुस्तिका में रामचन्द्र वर्मा ने कोश-कला विषय के कई अंगों पर प्रकाश डाला है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रामचन्द्र वर्मा की कई पुस्तकें तो ऐसी हैं जो हिन्दी में पहले पहल ही लिखी गई अपने ढंग की एकमात्र अकेली पुस्तक हैं। जैसे ज्ञात हो कि कोशकला पर लिखी उनकी पुस्तक से पहले भारत में शायद ही इस विषय पर कोई दूसरी पुस्तक लिखी गई हो। यही नहीं विदेशी भाषाओं में भी ऐसे विषय पर पुस्तकों की संख्या गिनती की रही हैं; चाहे अब भले कोश-साहित्य पर लेखन को ले कर परिस्थितियाँ बदल गई हों। बहरहाल, उक्त कोशकला पुस्तक के पहले संस्करण (१९५२ ई॰) में विचारणीय नौ प्रकरणों यथा आगे देखें – प्रकार और रूप, कोशकार के गुण, शब्द-संग्रह, शब्द-संख्या, शब्दों के रूप, शब्द-क्रम, शब्द-भेद, निरुक्ति या व्युत्पत्ति, अर्थ-विचार के साथ परिशिष्ट में एक प्रतिमान शब्दावली भी दी गई है; जिसमें शामिल किए गए सब शब्द और अर्थ 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' के तीसरे परिवर्द्धित और संशोधित संस्करण से लिए गए हैं।

सन् 1954 ई॰ में प्रकाशित 'हिन्दी कोश-रचना : प्रकार और रूप' रामचन्द्र की कोश-रचनाओं के कृतित्व का एक अभिन्न अंग है; जिसमें कोशकार रामचन्द्र वर्मा ने निम्नलिखित पाँच प्रकार के कोशों की आवश्यकता पर बल देते हुए उनके प्रकार और रूप पर विचार किया है – १. आधारिक हिन्दी कोश, २. मानक हिन्दी कोश, ३. पर्याय-दर्शी कोश, ४. अँगरेजी-हिन्दी कोश और ५. हिन्दी-अँगरेजी कोश। वस्तुतः यह निर्धारित कोश-

रचना के सैद्धान्तिक और व्यावाहरिक पक्षों के आदर्श प्रयोग से जुड़ा हुआ कार्य है। जो आज के समय में भी कोशों के सम्पादन और उसकी शाब्दिक आवश्यकता के महत्त्व को प्रमुखता से उठता है।

रामचन्द्र वर्मा सम्पादित 'शब्द-साधना' 1955 ई॰ में प्रकाशित हुई थी; जिसकी प्रस्तावना तत्कालीन मदरास के राज्यपाल श्रीयुक्त श्रीप्रकाश ने लिखी थी। इसमें मुख्यतः पर्यायवाची शब्दों के सूक्ष्म अर्थों को बड़े ही सुन्दर ढंग से उद्घाटित किया गया है। अतः पर्यायवाची शब्दों के अर्थ बतलाने वाला यह एक ऐसा कोश है जो तात्त्विक और वैज्ञानिक दृष्टि से शब्दों की आत्मा (अर्थ) का साक्षात्कार कराता है। शब्द-साधना की एक अतिरिक्त विशेषता यह है कि इसमें प्रयोग योग्य हिन्दी पर्यायवाची (पर्यायकी) शब्दों के अँगरेजी पर्याय (अर्थ) भी दे दिए गए हैं; वस्तुतः ऐसा अँगरेजी शब्दों के ठीक हिन्दी अर्थ निर्धारित करने के लिए किया गया है। अतः यह कार्य हिन्दी भाषा के मानकीकरण के आरंभिक प्रयासों से भी जुड़ा हुआ है।

यहाँ उल्लेखनीय बात है कि हिन्दी भाषा के एक अद्यतन, अर्थ-प्रधान और सर्वांगपूर्ण शब्दकोश के रूप में 'मानक हिन्दी कोश' का संपादन कार्य सन् 1956 ई॰ से 1965 ई॰ तक चलता रहा; जिसका प्रकाशन हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा सन् 1962 ई॰ से 1966 ई॰ के दौरान पाँच खण्डों में पूरा हुआ। रामचन्द्र वर्मा संपादित इस कोश में सहायक संपादक के तौर पर बदरीनाथ कपूर, तारिणीश झा, गुरुनारायण पाण्डेय और जयशंकर त्रिपाठी का नाम भी शामिल है। ऐसे बदरीनाथ कपूर तो सन् 1950 ई॰ से ही रामचन्द्र वर्मा के साथ विभिन्न स्तरों पर किए गए कोश-कार्यों से जुड़े हुए थे। किन्तु मानक हिन्दी कोश के आरम्भिक निवेदन में वर्मा जी ने उन्हें यह कहते हुए याद किया है कि बदरीनाथ कपूर उनके इस कार्य में निरंतर सहायक रहे हैं; जो आगे भी कोश-रचना के इस कार्य को इसी रूप में चलाते रहेंगे। ऐसे में अपनी विशेषताओं और स्वरूप के कारण हिन्दी शब्दसागर के बाद मानक हिन्दी कोश दूसरा सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण कोश-ग्रन्थ माना जाता है। चूँकि अपनी अर्थछवि, अर्थ-विज्ञान, व्युत्पत्तिविज्ञान और व्याकरणिक रूपों की दृष्टि से यह हिन्दी का एक प्रामाणिक एवं सर्वथा उपयोगी सिद्ध होने वाला कोश है। अतः शब्दसागर की तरह इस कोश में भी शब्दों की व्युत्पत्ति देने का प्रयास किया गया है; जबकि

ज्ञात हो कि कोशों में शब्दों की ठीक-ठीक व्युत्पत्ति का निर्धारण करना ऐसे तो हमेशा की तरह ही एक टेढ़ी खीर अथवा कठिन कार्य माना जाता रहा है। फिर भी, इस कोश में इस तरह का प्रणयन-कार्य वास्तव में रामचन्द्र वर्मा की आजीवन की गई शब्दार्थ-साधना का प्रतिफल ही है। ऐसे में मानक हिन्दी कोश रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के कृतित्व में आज भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

भाषा प्रयोग के क्षेत्र में वस्तुतः अर्थ-विवेचन की कला और अर्थ-विवेचन का स्वरूप बतलाने वाली रामचन्द्र वर्मा की 'शब्द और अर्थ' नामक कृति का प्रकाशन सन् 1965 ई० में हुआ। रामचन्द्र वर्मा लिखित यह कृति कुछ हद तक शब्दों के ठीक-ठीक आर्थी विवेचन और उनके सूक्ष्म भेदों तथा उपभेदों के तुलनात्मक निरूपण करने से जुड़ी हुई है। हिन्दी में ऐसे कार्यों की आवश्यकता को वर्मा जी वैज्ञानिक ढंग से और शास्त्रीय स्तर पर पूरा करना चाहते थे। अतः उनका 'शब्द और अर्थ' भी इसी दिशा में किया गया एक लघुतम प्रयास है। यह छोटी-सी पुस्तिका इसी उद्देश्य से प्रकाशित की गई थी कि हिन्दी के विद्वान और साहित्यिक संस्थाएँ इन कामों की ओर या तो स्वयं ध्यान दें अथवा शासन से यह अनुरोध करें कि वह इसकी समुचित व्यवस्था करे। बहरहाल, इसी दृष्टि से वर्मा जी ने इस कृति में छोटे-छोटे हिन्दी शब्दों के आशयों और प्रयोगों के विश्लेषण का कुछ प्रयत्न मात्र करने का प्रयास कर दिया है।

सन् 1968 ई० में प्रकाशित 'शब्दार्थ-दर्शन' रामचन्द्र वर्मा की अंतिम रचना मानी जाती है जिसमें कुछ शब्द-वर्गों में दिए गए शब्दों का तात्त्विक और वैज्ञानिक विवेचन तथा पर्यायकी की दृष्टि से शब्दों के सूक्ष्म अर्थ-भेदों का स्पष्टीकरण देने का कार्य किया गया है। वास्तव में रामचन्द्र वर्मा का यह कार्य हिन्दी में अँगरेजी के पारिभाषिक शब्दों के मानक रूपों के निर्धारण से जुड़ा हुआ है। अँगरेजी से आए पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में हिन्दी भाषा की जो दुर्दशा वर्मा जी ने देखी, उसके प्रति वे चिंतित थे। यही कारण है कि 'शब्दार्थ-दर्शन' में दिए गए नए शब्दों के संबंध में वर्मा जी ने उसके कारणों का भी निरूपण कर दिया है और यह भी बतला दिया है कि पहले के या पुराने शब्दों में आर्थी दृष्टि से क्या त्रुटि है और नए शब्द रखने का क्या औचित्य है। इस कृति के आरंभ में रामचन्द्र वर्मा ने विषय प्रवेश के बाद शब्द और अर्थ; शब्दों का महत्त्व और महिमा; शब्द और अर्थ का संबंध;

शब्दों की रचना और आर्थी विकास; शब्दों के विकारी रूप; शब्दों के रूप विकार; शब्दों के प्रकार; शब्द शक्ति; प्राचीन भारतीय शब्द-शास्त्र; आधुनिक पाश्चात्य शब्द-शास्त्र; शाब्दीय व्याकरण; पर्याय-विज्ञान या पर्यायकी; पर्यायकी का महत्त्व; अर्थ-विवेचन की कला आदि पर विस्तृत चर्चा की है जिससे हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में रुचि रखने वाले अध्येता को 'शब्दार्थ-दर्शन' समझने में कोई कठिनाई नहीं आती है। रामचन्द्र वर्मा की इसी कृति को बदरीनाथ कपूर ने कुछ और व्यवस्थित तथा परिवर्द्धित संस्करण के रूप में 'शब्दार्थ-विचार कोश' के नाम से भी प्रकाशित कराया है। अतः जिस तरह रामचन्द्र वर्मा कोश-निर्माण आदि कार्यों को शाब्दिक मूल्यांकन की सतत प्रक्रिया का हिस्सा माने थे, वह उनकी अंतिम कोश-रचनाओं तक में वर्मा जी के छोटे भानजे बदरीनाथ कपूर के किए गए सुधारों के द्वारा वस्तुतः आने वाली पीढ़ी का मार्ग-दर्शन करती रहेंगी।

उक्त कोश-रचनाओं के कृतित्व के अतिरिक्त भी रामचन्द्र वर्मा ने शब्दार्थ-विवेचन, शब्दार्थ-मीमांसा, शब्दार्थक ज्ञानकोश तथा राजकीय कोश आदि का लेखन-सम्पादन किया था; किन्तु जो इस शोध अध्ययन के दौरान कहीं से उपलब्ध नहीं हुए।

कोशों का कोई आदि से अंत तक परायण करने नहीं बैठता। फिर भी, कोश-कार्य के क्षेत्र में रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं का कृतित्व आने वाले समय में हिन्दी भाषी जनता और हिन्दीतर जन को अपने किए गए कार्यों से प्रभावित करता रहेगा। आज खड़ीबोली का जिस तरह तीव्रगति से विस्तार हो रहा है और उसके साहित्यिक-सांस्कृतिक कर्म का सामाजिक दायरा बढ़ रहा तो कोश-रचना की आवश्यकताओं का भी इससे कुछ न कुछ निरंतर विकास अवश्य हो रहा है। यह विकास एक प्रकार से भाषा अधिगम के स्तर से आरंभ हो कर उसके सैद्धांतिक-व्यावहारिक प्रयोगों तक कोशों के कार्य क्षेत्र का निर्माण कर रहा है। बहरहाल, अब कोशों के मामले में शब्द-संख्या से कहीं अधिक यह तथ्य मायने रखता है कि कोश में व्यवहार योग्य शब्दों और उनके ठीक अर्थों तथा व्याख्याओं को कोशकार कितना महत्त्व देता है; जो आधुनिक स्तर के कोशों में वस्तुतः शब्द-परिष्कार के नए द्वार भी खोलता है।

रामचन्द्र वर्मा के कृतित्व पक्ष पर उपरोक्त विश्लेषण के संदर्भ में यहाँ यह तथ्य भी उल्लेखनीय हो जाता है कि उक्त कोश-कृतियों की दी गई सूचियों में, जहाँ तक संभव हो

सका है, वस्तुतः पुस्तकों के प्रथम प्रकाशन अथवा प्रयुक्त उपलब्ध संस्करण का ही उल्लेख किया गया है ताकि रामचन्द्र वर्मा के कृतित्व से जुड़े अध्ययन की प्रामाणिकता अवश्य ही कालक्रमिक रूप से भी व्यवस्थित प्रतीत हो।

रामचन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विविध पक्षों के उपरोक्त अध्ययन और विश्लेषण को पूरा करते हुए अब अंत में यह कह सकते हैं कि इस शब्दर्षि का जीवन हिन्दी की उन्नति का स्वप्न सँजोए हुए था। आज जबकि हिन्दी में अच्छे कोशकारों की संख्या गिनती की है, ऐसे में वर्मा जी का व्यक्तित्व कोश-रचना कर्म की परिधि का विस्तार करता है; जिसकी कुछ कालगत सीमाएँ हो सकती हैं किन्तु वह उनके कृतित्व की छाया में गौण रह जाती है। इनका कृतित्व वस्तुतः अनुवाद कार्यों, मौलिक रचनात्मक सृजन, भाषा और व्याकरण में योगदान तथा कोश-रचनाओं के कृतित्व से जुड़ा रहा है जो आज अपने महत्त्व में नितांत उल्लेखनीय कार्य सिद्ध हुए हैं। बहरहाल, इस शब्द-साधक के विषय में यहाँ जितना भी कहा जाए वह कम ही होगा।

****

चौथा अध्याय

रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं का विश्लेषण

चौथा अध्याय

रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं का विश्लेषण

चौथे अध्याय की पीठिका

यह अध्याय रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के विश्लेषण पर आधारित है; जिसमें रामचन्द्र वर्मा सम्पादित और सह-सम्पादित कोशों का कोश-रचना की प्रविधि तथा उसके विविध कार्य पक्षों के आधार पर विश्लेषण करने की आरंभिक कोशिश की गई है। ऐसे में यहाँ शब्दकोशों की आवश्यकता पर बात करना आवश्यक प्रतीत होता है; चूँकि शब्दकोश के माध्यम से न केवल भाषा के अध्ययन, मनन, प्रयोग और लोक-व्यवहार में समृद्धि आती है बल्कि अन्य भाषा-भाषियों एवं अध्येताओं के साथ संपर्क का कारक सहयोग भी पहली बार इन शब्दकोशों के माध्यम से ही प्राप्त होता है। उक्त संदर्भ में किसी भाषा के शब्दकोश एकभाषीय, द्विभाषीय और बहुभाषिक भी हो सकते हैं। वैसे कुछ शब्दकोशों में तो शब्दों के उच्चारण के लिए भी व्यवस्था होती है और कुछ शब्दकोशों में अर्थ निरूपण के लिए चित्रों का सहारा लिया जाता है। यद्यपि विविध कार्य क्षेत्रों में प्रयोग के लिए कुछ भाषाओं में अलग-अलग शब्दकोश भी बनाए जाते हैं; जैसे कि किसी भाषा में शामिल व्याकरण की शब्द-कोटियों पर आधारित कोश या कृषि-विज्ञान, चिकित्सा, क़ानून, गणित, कला, संगीत इत्यादि अलग-अलग कार्य क्षेत्रों से जुड़े हुए कुछ-एक विषय आधारित शब्दकोश भी हो सकते हैं। बहरहाल, इस अध्याय में इन्हीं उक्त संदर्भों पर रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के विश्लेषण की एक कोशिश की गई है।

रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं का विश्लेषण

वस्तुतः कोश एक ऐसा माध्यम है जो विशुद्ध वर्तनी, व्याकरणिक ज्ञान, व्युत्पत्ति, उच्चारण, परिभाषा, अर्थ, शब्द प्रयोग, मुहावरे, लोकोक्ति तथा विलोम आदि की जानकारी के मूलाधार होते हैं। वस्तुतः एक अच्छे कोश में किसी शब्द विशेष से संबंधित निम्नांकित

तथ्यों के समाधान की आशा की जाती है; जैसे कि वर्तनी, उच्चारण, व्याकरण, व्युत्पत्ति (शब्दस्रोत, उपसर्ग, प्रत्यय), परिभाषा, अर्थ, प्रयोग, मुहावरे व लोकोक्तियाँ, विलोम, अपभाषा (slang), आगत शब्द (विदेशी शब्द, नए शब्द, पुराने शब्दों के नवीन अर्थ), बोली, संक्षेप (चिह्न, संकेत एवं प्रतीकांक), मापतौल, प्रूफ़रीडिंग के संकेत, उद्धरण, भौगोलिक अथवा ऐतिहासिक प्रसिद्ध नाम, पारिभाषिक शब्दावली, संविधान सम्मत भाषाओं की समकक्ष शब्दावली इत्यादि। यही कारण है कि जब तक कोई भाषा 'सजीव' होती है तब तक उसके कोशों से यह आशा की जाती है कि वे उक्त सभी प्रकार के संभावित तथ्यों की जानकारी देने में सक्षम हों। अतः अब यहाँ रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के विश्लेषण के माध्यम से इन्हीं तथ्यों को परखने की कोशिश की जाएगी। बहरहाल, रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं का संसार निम्नवत है, जिनके आधार पर आगे हम रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के विश्लेषण का प्रयास करेंगे; यथा –

- हिंदी शब्दसागर (प्रथम भाग) : संस्करण - १९८६ ई०
- हिंदी शब्दसागर (द्वितीय भाग) : संस्करण - १९८७ ई०
- हिंदी शब्दसागर (तृतीय भाग) : संस्करण - १९९२ ई०
- हिंदी शब्दसागर (चतुर्थ भाग) : संस्करण - १९९५ ई०
- हिंदी शब्दसागर (पंचम भाग) : संस्करण - १९९५ ई०
- हिंदी शब्दसागर (छठा भाग) : संस्करण - १९६९ ई०
- हिंदी शब्दसागर (सातवाँ भाग) : संस्करण - १९७० ई०
- हिंदी शब्दसागर (आठवाँ भाग) : संस्करण - १९७१ ई०
- हिंदी शब्दसागर (नवाँ भाग) : संस्करण - १९७२ ई०
- हिंदी शब्दसागर (दसवाँ भाग) : संस्करण - १९७३ ई०
- हिंदी शब्दसागर (ग्यारहवाँ भाग) : संस्करण - १९७५ ई०
- संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर : संस्करण - २०१४ ई०
- देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश : संस्करण - १९४० ई०

१. उर्दू-हिन्दी कोश : संस्करण - २०१९ ई०
२. उर्दू-हिन्दी-अंग्रेजी त्रिभाषी कोश : संस्करण - २०१९ ई०

- आरक्षिक शब्दावली : प्रथमावृत्ति - १९४८ ई०
- स्थानिक परिषद् शब्दावली : प्रथमावृत्ति - १९४८ ई०
- प्रामाणिक हिन्दी कोश : पहला संस्करण - १९५० ई०
  १. बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश : संस्करण - २०१७ ई०
  २. प्रामाणिक हिन्दी कोश (संक्षिप्त संशोधित संस्करण) : संस्करण - २००९ ई०
  ३. प्रामाणिक हिन्दी बाल कोश : संस्करण - २०१३ ई०
- शब्द-साधना : पहला संस्करण - १९५५ ई०
- मानक हिन्दी कोश (पहला खण्ड) : संस्करण - २००६ ई०
- मानक हिन्दी कोश (दूसरा खण्ड) : संस्करण - २००७ ई०
- मानक हिन्दी कोश (तीसरा खण्ड) : संस्करण - २००६ ई०
- मानक हिन्दी कोश (चौथा खण्ड) : संस्करण - २००७ ई०
- मानक हिन्दी कोश (पाँचवाँ खण्ड) : संस्करण - २००७ ई०
- शब्दार्थ-दर्शन : प्रथम संस्करण - १९६८ ई०
  १. शब्दार्थ-विचार कोश : संस्करण - २०१५ ई०

हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा तैयार कराया गया 'हिन्दी शब्दसागर' वस्तुतः हिन्दी कोश-कार्य क्षेत्र में अब तक सबसे बड़ा आरंभिक प्रयास है। यह कोश ग्यारह भागों में प्रकाशित हुआ है। ऐसे में 'हिंदी शब्दसागर' के उन सभी ग्यारह भागों का रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के विश्लेषण की दृष्टि से मूल्यांकन करना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है चूँकि रामचन्द्र वर्मा हिन्दी शब्दसागर के मूल सहायक संपादकों में से थे, इसलिए यह कहना यहाँ ठीक ही होगा कि कोशकारिता संबंधी अपने उस काल विशेष के सभी प्रकार के अनुभवों का सारांश उन्होंने अपनी पुस्तक 'कोश-कला' में प्रस्तुत कर दिया है। अतः इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर ही हम 'हिन्दी शब्दसागर' के विश्लेषण का कुछ-एक प्रयास कर सकते हैं। इस दृष्टि से विचार करते हुए हम देखते हैं कि ग्यारह भागों में प्रकाशित इस एकभाषी कोश में शब्दों का अनुक्रम और उनकी कुल संख्या कुछ इस प्रकार से विभक्त है –

- प्रथम भाग – 'अ' से 'ईहित' तक और कुल शब्दसंख्या - १८०००

- द्वितीय भाग – 'उ' से 'क्वैलिया' तक और कुल शब्दसंख्या - २००००
- तृतीय भाग – 'क्षंतव्य' से 'छवाना' तक और कुल शब्दसंख्या - २१०००
- चतुर्थ भाग – 'ज' से 'दस्तंदाजी' तक और कुल शब्दसंख्या - १९०००
- पंचम भाग – 'दस्त' से 'न्हावना' तक और कुल शब्दसंख्या - १६०००
- छठा भाग – 'प' से 'प्सुर' तक और कुल शब्दसंख्या - १९०००
- सातवाँ भाग – 'फ' से 'मध्वृच' तक और कुल शब्दसंख्या - १९०००
- आठवाँ भाग – 'मनः' से 'ल्हीक' तक और कुल शब्दसंख्या - २००००
- नवाँ भाग – 'व' से 'ष्ठ्यूति' तक और कुल शब्दसंख्या - २००००
- दसवाँ भाग – 'स' से 'सौह्य' तक और कुल शब्दसंख्या - २१०००
- ग्यारहवाँ भाग – 'स्कंक' से 'ह्वेल' तक और कुल शब्दसंख्या - १००००

इस तरह शब्दसागर के कुल ग्यारह भागों में शामिल 'अ' से 'ह्वेल' तक के शब्दों की कुल संख्या १८४००० है, जो एक प्रकार से हिन्दी के विशालतम शब्द-भण्डार का द्योतक है। यद्यपि सारा संस्कृत का कोश, सारा उर्दू का कोश, सारा ब्रजभाषा या राजस्थानी या अवधी या ऐसी ही किसी बोली/भाषा का कोश भर देने मात्र से किसी कोश का कलेवर दुगुना छोड़ तिगुना ही क्यों न हो जाए, किन्तु उससे 'हिंदी' शब्दकोश तो नहीं ही बनता है। और इस हिन्दी शब्दसागर में तो ऐसे कई बेकार, अप्रचलित और 'अहिंदी' शब्दों की भरमार दिखलाई देती है।[250] यही कारण है कि शब्दसागर का पारायण करने पर पता चलता है कि इसमें शामिल अनेकों शब्द व्यावहारिक रूप से तो कभी प्रयोग में भी नहीं आते; तो क्या ऐसे कई अप्रचलित शब्दों के संग्रह के कारण शब्दसागर केवल अपने आकार-प्रकार में बड़ा हो गया है अथवा उसकी कुछ विशेष महत्ता भी है ? इस विश्लेषण के दौरान हमें यही जानने का प्रयास करना होगा।

उक्त संदर्भों में हरदेव बाहरी लिखते भी हैं कि "हिन्दी शब्दसागर के अपने गुण-दोष थे। इसमें लगभग एक लाख प्रविष्टियाँ थीं। उस समय तक प्राप्त साधनों और साहित्य को दृष्टि में रखें तो कहा जा सकता हैं कि यह हिन्दी का पूर्णतम कोश था, मुहावरों और

[250] हरदेव बाहरी, *हिंदी कोश-कार्य*, देवेन्द्रदत्त नौटियाल (संपादक), *भाषा (त्रैमासिक)*, वही, पृष्ठ - 157

साहित्यिक उद्धरणों की तो यह खान ही था। अर्थच्छटाएँ देने में भी यह सब से बढ़ चढ़ कर था। शब्दों की व्युत्पत्ति देने का भी व्यवस्थित प्रयास पहली बार इसी कोश में हुआ। किन्तु व्युत्पत्ति ही इसका निर्बलतम पक्ष है।"[251] चूँकि हिन्दी शब्दसागर के उपलब्ध संस्करण में व्युत्पत्ति की स्थिति वैसी ही है जो उसके पहले संस्करण में थी। फिर भी हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यह प्रयत्न स्तुत्य है क्योंकि हिन्दी के किसी अन्य कोश में शब्दों की इससे अच्छी निरुक्ति नहीं मिलती।[252] हिन्दी में ऐसे तो शब्द-व्युत्पत्ति के प्रति जिज्ञासा का अभाव है; किसी शब्द की व्युत्पत्ति/निरुक्ति के संदर्भ में हिन्दी के कई प्रतिष्ठित शब्दकोश भी विस्तार से कुछ नहीं बतलाते हैं। यहाँ प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि इधर के कुछ वर्षों में अजित वडनेरकर ने अपनी पुस्तक 'शब्दों का सफ़र' के माध्यम से हिन्दी की शब्द-संपदा के जन्म-सूत्रों की तलाश और विवेचना का कार्य बड़े ही महत्त्वपूर्ण ढंग से किया है। यह कार्य वस्तुतः उनके शब्दों में मूलतः एक प्रकार का शब्द-विलाश है।[253] बहरहाल, हिन्दी शब्दसागर के उपलब्ध संस्करण की कुछ-एक विशेषताएँ ऐसी हैं जो इस कोश को अधिक उपादेय और आवश्यक बनाती हैं, जैसे कि प्रायः सभी मूल शब्दों की व्युत्पत्ति इसमें दे दी गई है; शब्दों से जुड़े उपसर्ग और प्रत्यय आदि का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराने का भी इसमें प्रयास किया गया है; प्रविष्टियों की व्याकरणिक कोटियों के मानक निर्धारित करने के साथ-साथ उनसे जुड़े साहित्यिक उद्धरण एवं प्रयोग आदि का भी इसमें विशेष उल्लेख दिया गया है; यह कोश अपनी समग्रता में एक उत्कृष्ट संदर्भ-ग्रन्थ और उपजीव्य कोश की श्रेणी में आता है इत्यादि। ऐसे में यहाँ सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि हिन्दी शब्दसागर की निर्माण प्रक्रिया को जानने, नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा कोशकारिता क्षेत्र में किए गए इस योगदान को समझने तथा शब्दसागर के संपादन के आरंभ से उसके प्रकाशन तक की चुनौतियों से परिचित होने के लिए हमें इस कोश के प्रधान संपादक श्यामसुंदरदास की लिखी हुई शब्दसागर के प्रथम संस्करण की भूमिका (जो ३१ जनवरी १९२९ को लिखी गई थी) को अवश्य पढ़ना चाहिए। इसके अतिरिक्त १८ दिसंबर १९६५ को सभा के तत्कालीन संयोजक और संपादक मण्डल के सदस्य करुणापति त्रिपाठी द्वारा लिखी गई शब्दसागर की

---

[251] वही, पृष्ठ - 157

[252] वही, पृष्ठ - 157

[253] अजित वडनेरकर, *शब्दों का सफ़र (पहला पड़ाव)*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति - 2014 ई०, अपनी बात, पृष्ठ - 11

संपादकीय प्रस्तावना और सभा के प्रकाशन मंत्री सुधाकर पांडेय की लिखी हुई इस कोश की प्रकाशिका को भी एक बार अवश्य पढ़ लेना चाहिए। इससे एक कोश के रूप में हिन्दी शब्दसागर की रचना-प्रक्रिया और कोश-रचनाओं के तौर पर उसके विश्लेषण की महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं को समझने में अवश्य ही सहायता मिलेगी।

ऐसे हिन्दी के बहुत कम कोशों में ज्ञान की विविध शाखाओं के तकनीकी शब्दों की व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है किन्तु शब्दसागर में हमें इस तरह के किए गए कार्यों से जुड़ा हुआ प्राथमिक प्रयास अवश्य मिल जाता है। बहरहाल, इस तरह कोश के सर्वांगपूर्ण विश्लेषण में, जो भी सामान्य विशेषताएँ हमें मिलती हैं, उस दृष्टि से कोश-रचना के रूप में शब्दसागर का विश्लेषणात्मक उल्लेख निम्नवत किया जा सकता है –

१. कोश में शब्द प्रविष्टियों के अकारादि वर्णक्रम किस प्रकार से हों; यह कोश-रचनाओं के विश्लेषण का ही प्राथमिक प्रश्न माना जा सकता है। इस दृष्टि से 'हिंदी शब्दसागर' में शब्द प्रविष्टियों को देवनागरी वर्णों के अकारादि क्रम से रखने की ही कोशिश की गई है अर्थात् इसमें आदि अक्षरों का क्रम वस्तुतः वही है जो देवनागरी वर्णमाला का है; जैसे कि अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह। फिर भी, हिन्दी शब्दसागर में शामिल वर्णक्रम के संदर्भ में कुछ टिप्पणियाँ आगे दी जा रही हैं, जिनके आधार पर अवश्य ही 'शब्दसागर' में दी गई प्रविष्टियों को ढूँढ़ने में प्रयोक्ताओं को सुगमता होगी –

(१) अं/अँ, अः को शब्दसागर में अलग अक्षर नहीं माना गया इसलिए ये ध्वनियाँ 'अ' के साथ ही क्रमागत रखी गई हैं।

(२) ङ ञ ण से हिन्दी में कोई शब्द आरंभ नहीं होता इसलिए शब्दसागर में इन्हें अलग से नहीं दिया गया है।

(३) अधोबिंदु अर्थात् नुक़ता या ऑ का प्रयोग शब्दसागर में नहीं हुआ है और ड़ ढ़ को भी अलग से न देकर उनके आदि अक्षर ड ढ के साथ ही क्रमागत रखा गया है।

(४) उक्त वर्णक्रम को देखते हुए अब यहाँ यह कहने कि आवश्यकता नहीं है कि देवनागरी वर्ण माला में क्ष, त्र और ज्ञ संयुक्त अक्षर हैं, अतः शब्दसागर में क्ष (क्+ष) को क के साथ, त्र (त्+र) को त के साथ और ज्ञ (ज्+ञ) को ज के साथ रखा गया है।

(५) इस प्रकार हिन्दी शब्दसागर में किसी वर्ण के दूसरे अक्षर के रूप में निम्नलिखित क्रम को अपनाया गया है; यथा – अं/अँ, अः, अक/अक्ष, अख, अग, अघ, अङ, अच, अछ, अज/अज्ञ, अझ, अञ, अट, अठ, अड/अड़, अढ/अढ़, अण, अत/अत्र, अथ, अद, अध, अन, अप, अफ, अब, अभ, अम, अय, अर, अल, अव, अश, अष, अस, अह।

(६) इस क्रम के अनुसार शब्दसागर में किसी आदि अक्षर (जैसे कि 'क') में मात्राएँ लगने का क्रम इस प्रकार है; जैसे कि कं/कँ/कः/क, का, कि, की, कु, कू, कृ, के, कै, को, कौ।

(७) संयुक्त अक्षर शब्दसागर में मात्राओं के बाद अपने क्रमागत रूप में ही हैं; जैसे कि क्क, क्ख, क्ग, क्घ, क्ङ, क्च, क्छ, क्ज, क्झ, क्ञ, क्ट, क्ठ, क्ड/क्ड़, क्ढ/क्ढ़, क्ण, क्त, क्थ, क्द, क्ध, क्न, क्य, क्र, क्ल, क्व, क्श, क्ष (क्+ष), क्स।

(८) इसी प्रकार शब्दसागर में शब्द के तीसरे, चौथे, पाँचवें आदि अक्षरों का क्रम भी दूसरे अक्षर के समान ही दिया गया है।

२. जिन शब्दों के अर्थ एक से अधिक हैं उनके अर्थों को शब्दसागर में १, २, ३, ४, ५ आदि संख्या देकर लिखा गया है ताकि प्रयोक्ता को स्पष्ट रूप से अर्थ की भिन्नता का पता चल सके। इसके साथ ही कोश में शब्दों के साहित्यिक प्रयोगों और उनकी साहित्यिक विशिष्टताओं को 'विशेष' उल्लेख के साथ चिह्नित किया गया है।

३. शब्दसागर में जहाँ कहीं किसी मुख्य शब्द का समानार्थक कोई दूसरा शब्द भी है उसके आगे व्याकरणिक उल्लेख के बाद मूल शब्द का स्रोत (जैसे कि संस्कृत का शब्द है तो उसकी संस्कृत वर्तनी) और दे० (देखिए) के अंतर्गत उस समानार्थक शब्द का प्रयोग कर दिया गया; जैसे कि उदाहरण के लिए देखें : अंकविद्या – संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कविद्या] दे० अंकगणित।

४. शब्द की प्रविष्टि के उपरांत शब्दसागर में सबसे पहले उस शब्द की व्याकरणिक कोटि का उल्लेख किया गया है यद्यपि व्याकरणिक कोटि से पहले भी कुछ शब्दों में एक विशिष्ट चिह्न के माध्यम से शब्द के काव्यप्रयोग या पुरानी हिंदी में मिले प्रयोगों के संकेत का उल्लेख किया गया है। इसके साथ कोश की कुछ प्रविष्टियों में ऐसे ही कुछ-एक विशिष्ट चिह्नों आदि के द्वारा शब्द के व्युत्पन्न, प्रांतीय प्रयोग, ग्राम्य प्रयोग,

धातुचिह्न, संभाव्य व्युत्पत्ति और अनिश्चित व्युत्पत्ति का भी उल्लेख मिलता है; जिसके तुरंत बाद उस भाषा अथवा बोली आदि का भी संकेत वहाँ दे दिया गया है जिससे वह शब्द हिन्दी में ग्रहण किया गया है; जैसे कि अं० (अंग्रेजी), अ० (अरबी), अप० (अपभ्रंश), अव० (अवधी), त० (तमिल), पू० हिं० (पूर्वी हिंदी) आदि। बहरहाल, ज्ञात हो कि शब्दसागर के प्रत्येक भाग में व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों के विवरण का विस्तृत उल्लेख कोश प्रयोक्ता की सहूलियत को ध्यान में रखते हुए उसकी संकेतिका के अंतर्गत दे दिया गया है।

५. प्रविष्टि के अंतर्गत शामिल उद्धरणों में प्रयुक्त संदर्भ ग्रन्थों के विवरण में क्रमशः ग्रन्थ का संकेताक्षर, ग्रन्थनाम, लेखक अथवा संपादक का नाम और प्रकाशक के विवरण आदि का उल्लेख भी प्रयोक्ता की बोधगम्यता को ध्यान में रखते हुए शब्दसागर के प्रत्येक भाग की संकेतिका में कर दिया गया है।

६. यहाँ अलग से यह उल्लेख कर देना भी उचित ही होगा कि शब्दसागर में प्रविष्टियों की व्युत्पत्ति का निर्धारण, साहित्यिक प्रयोगों आदि के उद्धरण और उदाहरण, व्याकरणिक कोटियों आदि का उल्लेख ही वस्तुतः हिन्दी की उन्नत आरंभिक कोश-रचना के साथ-साथ इसे एक संदर्भ-ग्रन्थ के रूप में स्थापित करता है।

उपरोक्त कोशगत विश्लेषण में 'हिंदी शब्दसागर' की कोश-रचनात्मकता को समझा जा सकता है। चूँकि रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं में शब्दसागर पहला ही पड़ाव था और वे इसमें बतौर सहायक संपादक की हैसियत से जुड़े थे, इसलिए उन्होंने इसमें कोशकारिता के जो गुण-दोष सीखे उन्हीं के आधार पार आगे भी वे अपनी कोश-रचनाओं का संपादन-संवर्द्धन करते रहे। बरहाल, एक कोशकार के रूप में उनकी जो महत्त्वपूर्ण भूमिका रही उसका संपूर्ण मूल्यांकन करने के लिए आगे हमें वर्मा जी की कोश-रचनाओं के विश्लेषण का सहारा लेना होगा ताकि कोश-रचना क्षेत्र में किए गए उनके योगदान को भली-भाँति समझा जा सके।

हिन्दी शब्दसागर के कार्यों को अधिक सुगठित और उपादेय बनाने के लिए ही रामचन्द्र वर्मा ने आगे चलकर सन् 1933 ई० में 'संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर' अर्थात् हिंदी शब्दसागर के संक्षिप्त संस्करण का संपादन किया; जो उपयोगिता और व्यावहारिकता की

दृष्टि से हिन्दी शब्दसागर का ही एक अगला पड़ाव था। वर्मा जी ने ऐसे तो इसका मूल संपादन किया था किन्तु उसके बाद इसका संशोधन, संवर्धन और नव संपादन नागरीप्रचारिणी सभा के कोश विभाग ने किया है। इस नवोन्मेषशाली परिवर्तन एवं परिवर्धन के कारण 'संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर' अब एक उत्कृष्ट अद्यतन कोश बन गया है और इस तरह इसे कोश-रचना की विधा में एक प्रकार का अनुपम प्रयोग भी कहा जा सकता है।[254] बहरहाल, यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इसमें किए गए संशोधन एवं संवर्धन बहुत हद तक कोश की उपयोगिता और प्रामाणिकता को ध्यान में रखते हुए किए गए हैं; अर्थात् दूसरे अर्थों में स्पष्ट रूप से यह ज्ञात होता है कि कोश में आकारवर्धन आदि के लक्ष्य से ऐसा कुछ नहीं किया गया है। इसी तरह संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर में शब्दसंग्रह विविध साहित्यप्रयुक्त ग्रन्थों से ही हुए हैं तथा शब्दभेदनिर्देश, व्युत्पत्तिनिर्वचन, अर्थनिरूपण इत्यादि के संदर्भ में यथासाध्य प्रामाणिकता और विशदता की दृष्टि को ध्यान में रखने का प्रयास किया गया है।[255] जिसके परिणाम स्वरूप प्रयोक्ताओं के लिए इस कोश की उपयोगिता और भी अधिक बढ़ गई है; चूँकि संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर के उपलब्ध संस्करण में भी यथासाध्य अर्थों-उदाहरणों आदि का संचयन एवं उनका यथास्थान उचित सन्निवेश कोश-रचना की पूरी दक्षता के साथ किया गया है।

उल्लेखनीय है कि विद्यार्थियों तथा जनसाधारण के सुलभ एवं व्यावहारिक उपयोग के लिए हिन्दी शब्दसागर का एकग्रंथी 'संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर' सन् 1933 ई॰ में नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ; जो बाद में इसी कारण से हिन्दी का सर्वप्रिय कोश ग्रन्थ बन गया था। आगे, यथाशक्य संशोधन, परिवर्धन तथा अतिरिक्त उपयोगी शब्दावली एवं भारतीय संविधान परिषद् द्वारा स्वीकृत संविधान शब्दावली के परिशिष्टों से युक्त, संवर्धित आकार में, इसका पंचम संस्करण तत्कालीन शिक्षामंत्री संपूर्णानंद की कृपा एवं प्रादेशिक सरकार की अनुकूल सहायता से सन् 1951 ई॰ में सभा से ही प्रकाशित हुआ था। ज्ञात हो कि इस एकभाषिक संक्षिप्त कोश का प्रथम संपादन हिन्दी शब्दसागर के अन्यतम संपादक रामचन्द्र शुक्ल (वस्तुतः ये भी शब्दसागर के सहायक संपादकों में से ही

---

[254] रामचन्द्र वर्मा (संपादक), *संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, पंचदश संस्करण - 2014 ई॰, इस संस्करण के संबंध में, पृष्ठ - 3

[255] वही, सप्तम संस्करण का वक्तव्य, पृष्ठ - 4

थे) के हाथों समारब्ध हुआ किन्तु वह पूरा संपन्न, उनके सहयोगी सहायक और हिन्दी शब्दसागर के सहायक संपादक रामचन्द्र वर्मा द्वारा हुआ । और पंचम संस्करण तक, यथावश्यक संकलित तथा वर्धित उसके परिशिष्ट भाग के पूर्व तक, यह कोश रामचन्द्र वर्मा द्वारा ही संपादित रहा ।[256] अतः उपरोक्त इन्हीं विशेष बातों को ध्यान में रखते हुए अब आगे हम कोश-रचना के कुछ-एक उल्लेखनीय बिन्दुओं के आधार पर 'संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर' के विश्लेषण का थोड़ा-बहुत प्रयास करेंगे; जैसे कि –

१. संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर में प्रविष्टियों के वर्णानुक्रमादि रूप हिंदी शब्दसागर के अनुसार ही दिए गए हैं।
२. हिंदी शब्दसागर की अपेक्षा गुणवर्धन की दृष्टि से 'संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर' में साहित्यप्रयुक्त शब्दों के विशेष संग्रह के अतिरिक्त लोकप्रयुक्त देशी तथा विदेशी शब्दों का भी यथाशक्य संकलन किया गया है।
३. शब्द-भेद की दृष्टि से छतियाना, डोरियाना, हथियाना, गरियाना जैसी क्रियाओं के संबंध में हिंदी नामधातुओं से उनकी निष्पन्नता का निर्देश किया गया है एवं उनका स्वरूप स्पष्ट किया गया है।
४. संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर में पूर्वनिरुक्त व्युत्पत्तियों का परीक्षण कर उनमें यथासाध्य सुधार किया गया है; जैसे कि अलकलड़ेता [अ० अलक + हिं० लाड़ + ऐता (प्रत्य०)], चिल्लपों [प्रा० चिल्ल = बच्चा + प्रा० धातुचिह्न पोक्क = पुकारना], निकर [अँ० (या डच?) निकरबोकर्स के संक्षिप्त रूप 'निकर्स' से संबंधित] इत्यादि और नए शब्दों की व्युत्पत्तियाँ यथासाध्य प्रामाणिक दी गई हैं; जैसे कि 'कौसीस' कीर्तिलता का प्रयोग दर्शानेवाला संकेत चिह्न [सं० कपिशीर्षक], 'मतरुक' कीर्तिलता का प्रयोग दर्शानेवाला संकेत चिह्न [अ० मुतरिब] आदि के साथ-साथ व्युत्पत्ति-निर्वचन में, अपेक्षितस्थलों पर हिन्दी धातुओं का प्रयोग किया गया है, जैसे कहावत [हिं० धातुचिह्न कह + आवत (प्रत्य०)], चुनाव [हिं० धातुचिह्न चुन + आव (प्रत्य०)] इत्यादि में कहना, चुनना आदि क्रियार्थक संज्ञाएँ नहीं; कह, चुन आदि धातु निर्दिष्ट किए गए हैं किन्तु जहाँ संस्कृत और प्राकृत धातुओं का निर्देश अपेक्षित हुआ है वहाँ वैसा ही किया गया है।

[256] वही, प्रस्तावना (नवसंपादित षष्ठ संस्करण), पृष्ठ - 5

५. कोश संक्षेपाक्षरों का उल्लेख 'संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर' में संकेत सूची के अंतर्गत किया गया है; जो बहुत हद तक हिंदी शब्दसागर से मिलता-जुलता प्रतीत होता है।

६. अर्थनिरूपण में शब्दार्थों के पूर्व निरूपण यथासाध्य संशोधित, संवर्धित एवं प्रामाणिक तौर पर किए गए हैं; जैसे कि यहाँ आरती – संज्ञा स्त्री० [सं० आरात्रिक] १. नीराजन। पूजा में किसी देवमूर्ति के समक्ष कपूर या घी का दीपक मंडलाकार घुमाना। २. आदर या मंगल के निमित्त किसी के सम्मुख इसी प्रकार दीपक घुमाना। ३. षोडशोपचार पूजन का एक अंग। ४. आरती करने का पात्र। ५. अत्यधिक आदर, प्रेम या सेवा करना। ६. आरती में पढ़ा जानेवाला स्तोत्र या विनय के पद या प्रार्थना। मुहा० – आरती करना या आरती उतारना = सिर चढ़ाना। और हृदय – संज्ञा पुं० [सं०] १. छाती के भीतर बाईं ओर मांशपेशियों से बना हुआ एक सिकुड़ने और फैलनेवाला खोखला अवयव जो शरीर में रक्तसंचार का केंद्र है। इसका आकार १२x८ सेंटीमीटर और वजन पुरुषों में ३०० ग्राम तथा स्त्रियों में २५० ग्राम होता है। यह दो बड़े और अलग खंडों में बँटा रहता है। दिल। कलेजा। २. छाती। वक्षस्थल। मुहा० – हृदय विदीर्ण होना = अत्यंत शोक होना। ३. प्रेम, हर्ष, शोक, करुणा, क्रोध आदि मनोविकारों का स्थान। ४. अंतःकरण। मन। ५. अंतरात्मा। विवेक बुद्धि। आदि के अर्थ इस संदर्भ में 'संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर' में देखे जा सकते हैं।

७. संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर के उपलब्ध संस्करण में साहित्यशास्त्रीय तथा अन्य शास्त्रीय शब्दों के अर्थ यथासाध्य प्रामाणिक किए गए हैं। इसके साथ-साथ कोश में दिए गए अर्थनिरूपण में प्रामाणिकता तथा विशदता के लिए उपयुक्त उदाहरणों के महत्त्व को समझते हुए इसमें यथावसर उदाहरण भी दे दिए गए हैं एवं ऐसे ही कुछ-एक अवसरों पर रचना-विशेषों के निर्देश आदि भी दिए गए हैं; जैसे कि इस संदर्भ में अंडज, इमामबाड़ा, मानसून, लिपि, साम्यवाद आदि शब्द कोश में देखे जा सकते हैं।

८. कोश के परिशिष्ट भाग के रूप में दी गई भारतीय संविधान परिषद् द्वारा स्वीकृत संविधान शब्दावली में, पहले देवनागरी वर्णों के अकारादि क्रम में हिन्दी शब्दों के अंग्रेजी अर्थ रोमन लिपि में दिए गए हैं और दूसरे हिस्से में रोमन वर्णमाला के क्रम में अंग्रेजी शब्दों के अर्थ हिन्दी की देवनागरी लिपि में दिए गए हैं; जो वस्तुतः संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर की अद्यतन उपयोगिता और अधिक बढ़ा देते हैं।

बहरहाल, कहना न होगा कि उक्त विश्लेषणों के अतिरिक्त 'संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर' में कोश-रचना से संबंधित अन्य अनेक तथ्यों का संयोजन 'हिंदी शब्दसागर' के अनुसार ही किया गया है।

सन् 1936 ई० अपने देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश के माध्यम से रामचन्द्र वर्मा ने उर्दू शब्दों को जानने का एक ऐसा आधार प्रस्तुत कर दिया है, जिसमें आने वाले समय में आवश्यकतानुसार परिवर्धन और संशोधन भी हो सकते हैं और जिसे एक उत्कृष्ट व प्रामाणिक उर्दू-कोश के रूप में परिणत भी किया जा सकता है।[257] यही कारण है कि वर्मा जी के कई कोश-कार्यों में सहयोगी रहे उनके छोटे भानजे बदरीनाथ कपूर ने बाद में इसी देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश का संशोधन एवं पुनर्सम्पादन करते हुए एक द्विभाषी उर्दू-हिन्दी कोश (जिसमें शब्द प्रविष्टियों को देवनागरी लिपि के साथ-साथ उर्दू की अरबी-फ़ारसी लिपि में भी दिया गया है) और उर्दू-हिंदी-अंग्रेजी के रूप का एक त्रिभाषी कोश बना दिया है। ऐसे में यहाँ बदरीनाथ कपूर के द्वारा पुनर्सम्पादित इन दोनों कोशों का प्रसंगवश उल्लेख मात्र किया गया है; जिनकी अपनी कई उल्लेखनीय विशिष्टताएँ हो सकती हैं। किन्तु विशेष रूप से यहाँ हम रामचन्द्र वर्मा के संपादन में आए देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश के विश्लेषण का ही प्रयास करेंगे ताकि वर्मा जी की कोश-रचनाओं के विश्लेषण का आपसी संबंध और उसके अन्तःसूत्रों की हर संभव तलाश की जा सके। अतः इस द्विभाषी देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश के विश्लेषण को यहाँ निम्नवत प्रस्तुत किया जा रहा है –

१. देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश में बहुत से प्रचलित उर्दू शब्दों के साथ कई अरबी-फ़ारसी, तुर्की, पुर्तगाली, यूनानी आदि भाषा के शब्दों को भी देवनागरी लिपि में शामिल वर्णों के अकारादि क्रम में दिया गया है; और आगे उनका हिन्दी अर्थ वर्णित किया गया है; जैसे अल्तमिश – पुं० [तु०] सेनानायक, फौज का अफसर। ज़ियाफ़त – स्त्री० [अ०] बड़ी दावत जिसमें बहुत से लोगों को भोजन कराया जाता है, प्रीतिभोज। शंग – पुं० [फा०] बटमार। सद्दे-सिकंदर स्त्री० [अ०+फा०] चीन की प्रसिद्ध दीवार जो सिकन्दर बादशाह की बनवाई हुई मानी जाती है आदि कोश में शामिल ऐसे ही कुछ शब्द हैं।

---

[257] रामचन्द्र वर्मा (संपादक), *देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश*, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, पहला संस्करण - 1936 ई०, भूमिका लेखक वंशीधर विद्यालंकार, पृष्ठ - 9

२. उर्दू वर्णमाला में ऋ, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, भ और ष के लिए कोई वर्ण नहीं है और इसीलिए कोश में देवनागरी के इन अक्षरों से आरंभ होने वाले शब्द भी प्रयोक्ता को नहीं मिलेंगे। इसके अलावा ट और ड के सूचक वर्ण तो इसमें हैं, किन्तु इन वर्णों से आरंभ होने वाले शब्दों का ही अभाव है; और इस तरह वे इस कोश में भी नहीं मिलेंगे। इस देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश के प्रयोक्ताओं के लिए रामचन्द्र वर्मा कोश की प्रस्तावना में यह निर्देश भी देते हैं कि उर्दू वाले अल्पप्राण वर्णों के साथ 'ह' या 'हे' लगाकर ही उनसे महाप्राण अक्षर बना लेते हैं और महाप्राण अक्षरों में से केवल 'ख' के लिए उनके यहाँ 'ख़े' और 'फ' के लिए 'फ़े' मिलता है।

३. इस देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश में कवर्ग और चवर्ग के साथ वाले शब्दों में तो अनुस्वार का प्रयोग किया गया है, शेष वर्णों के साथ आधा 'न' अर्थात् 'न्' रखा गया है। और अधिकतर इसी आधार के अनुसार शब्द-रूपों को भी रखा गया है। किन्तु इसमें कहीं-कहीं अपवाद है; जैसे अंक़रीब, इंकसार या अंक़ा लिखने से काम नहीं चल सकता था, जिससे प्रयोक्ताओं को शब्दों के ठीक-ठीक उच्चारणों का पता नहीं लग सकता। ऐसे में कोशकार को अन्क़रीब, इन्कसार और अन्क़ा आदि शब्द-रूप भी साथ में रखने पड़े हैं। इसके विपरीत कोश में 'शाहन्शाह' न लिखकर 'शाहंशाह' लिखा गया है, क्योंकि साधारणतः लोग लेखन में शाहंशाह ही लिखते हैं, शाहन्शाह तो वस्तुतः कोई भी नहीं लिखता। बहरहाल, पंचम वर्ण और अनुस्वार-संबंधी कठिनता के अतिरिक्त शब्दों के रूप स्थिर करने में भी कोशकार को और कुछ-एक कठिनाइयाँ थीं, और उन सब कठिनाइयों से भी कोशकार के अनुसार वस्तुतः तभी बचा जा सकता था, जब कोश में शब्दों के वही रूप लिए जाते जो अधिकतर हिन्दी में लिखे जाते हैं।[258] इसके सिवा इसमें एक और लाभ भी था; चूँकि अरबी-फ़ारसी के बहुत-से शब्द ऐसे भी हैं जिनका हिन्दी में बहुत कम प्रयोग होता है या अभी तक उनका प्रयोग बिलकुल नहीं हुआ है, फिर भी ऐसे शब्दों को इस कोश में स्थान देना आवश्यक था। अतः उक्त धारणाओं के प्रयोग से यह लाभ हुआ कि उन शब्दों के संबंध में कोश के हिन्दी प्रयोक्ता यह जान जाएँगे कि उन्हें किस रूप में लिखना चाहिए। इसीलिए आरंभ में तो शब्दों की मुख्य प्रविष्टियों में प्रचलित रूप रखे गए हैं और फिर कोष्ठक में, जहाँ व्युत्पत्ति बतलाई गई है,

[258] वही, प्रस्तावना, पृष्ठ - 16

वहाँ यथासाध्य उनका शुद्ध रूप देने का प्रयत्न किया गया है; जैसे कि वज़ारत, वादा, वकूफ़, शायर, फ़सल आदि रूप आरंभ में रखकर व्युत्पत्ति वाले कोष्ठक में इनके शुद्ध शब्द-रूप विज़ारत, वअद:, वुकूफ़, शाइर और फ़स्ल आदि दे दिए गए हैं।

४. इस कोश में अरबी-फ़ारसी शब्दों में जहाँ शब्दों के अंत में 'हे' या 'ह' होता है, वहाँ हिन्दी में विसर्ग रखा गया है; और जहाँ अंत में 'ऐन' या 'अ' होता है, वहाँ अथवा जहाँ 'हम्जा' होती है, वहाँ लुप्ताकार (अवग्रह चिह्न या प्लुत) को रखा गया है। किन्तु जहाँ प्रचलित रूप दिखलाए गए हैं, वहाँ कोशकार ने इन दोनों के स्थान पर केवल आकार की मात्रा (आ की मात्रा) का ही प्रयोग किया है; जैसे कि मुख्य प्रविष्टि में 'जमा' रूप दिया गया है और व्युत्पत्ति के साथ 'जमऽ' रूप रखा गया है।

५. मुख्य प्रविष्टियों के साथ प्रयुक्त हुए मुहावरों आदि का उल्लेख भी इस कोश में किया गया है; उदाहरण के तौर पर प्रविष्टि देखें – ग़ुस्सा – पुं० [अ० गुस्स:] क्रोध, कोप, रिस। मुहा० १. गुस्सा उतरना या निकलना = क्रोध शांत होना। २. गुस्सा उतारना = क्रोध में आकर अपने मन की करना। ३. गुस्सा चढ़ना = क्रोध का आवेश होना।

६. ऐसे तो इस कोश में शब्दों के ठीक उच्चारण के लिए उसकी वर्तनी को देवनागरी लिपि के अनुकूल उचित रूप में प्रस्तुत किया गया और नुक़ते आदि का प्रयोग भी प्रविष्टियों में दे दिया गया है। किन्तु इस कोश की भूमिका में वंशीधर विद्यालंकार उल्लेख करते हैं कि कोशकार महोदय 'अलिफ़' और 'ऐन' का जो हिन्दी में 'अ' के अंतर्गत शामिल हो जाते हैं, भेद बतलाने के लिए कोई ऐसा सांकेतिक चिह्न दे देते जिससे यह स्पष्टतया मालूम पड़ जाता कि अमुक शब्द 'अलिफ़' से और अमुक 'ऐन' से लिखा जाता है तो अच्छा होता। इसी प्रकार से 'सीन', 'स्वाद', 'ते' और 'तोए' आदि के शब्दों में भी भेद रखने के लिए सांकेतिक चिह्नों की आवश्यकता समझी जाती थी।[259] यद्यपि कोश के सिवा अन्यत्र इन शब्दों को सांकेतिक चिह्नों के साथ लिखने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं अनुभव होती तो भी इस भाषा के कोश में हर शब्द के साथ इस तरह के भेदों को बतलाना ज़रूरी है। इससे एक तो प्रयोक्ता उर्दू भाषा के शुद्ध रूप से परिचित हो जाता; दूसरे भाषा की बनावट और उसमें हिन्दी भाषा से जो पृथक्ता और विशेषता है उसका भी अच्छी तरह ज्ञान हो जाता। बहरहाल, इसके साथ ही कोश में

[259] वही, भूमिका लेखक वंशीधर विद्यालंकार, पृष्ठ - 9

कहीं-कहीं शब्दों के उच्चारणों को भी लिखने की आवश्यकता समझी जा सकती है। किन्तु इसी संदर्भ में रामचन्द्र वर्मा कोश के दूसरे संस्करण की प्रस्तावना में कहते हैं कि वस्तुतः उल्लिखित सूचना है तो बहुत उपयोगी, पर इसे कार्य रूप में परिणत करने में बहुत-सी कठिनाइयाँ हैं। देवनागरी में जो उच्चारण 'स' का है, वह या उससे मिलता जुलता उच्चारण सूचित करने वाले उर्दू में तीन अक्षर हैं – से, सीन और साद; 'ज' का उच्चारण सूचित करने वाले चार अक्षर हैं – ज़ाल, जे, ज़ाद और ज़ो इसके अतिरिक्त साधारण 'ज' के लिए जो जीम है, वह तो है ही। अतः यदि ये संकेत नए बनाए जाएँ तो इनके लिए टाइप भी नए बनवाने पड़ेंगे अथवा एक दूसरा उपाय यह हो सकता था कि जहाँ भी कोष्ठक में उर्दू शब्दों की व्युत्पत्ति दी गई है, वहाँ एक कोष्ठक में उर्दू लिपि में उनके मूल रूप भी दे दिए जाते।[260] बहरहाल, यह बात कोशकार के ध्यान में पहले संस्करण के दौरान आई थी किन्तु प्रकाशक महोदय इसके लिए तैयार नहीं हुए और स्वयं वर्मा जी ने भी कई कारणों से ऐसा करना बिलकुल निरर्थक समझा। चूँकि वे जानते थे कि जो प्रयोक्ता इन अक्षरों के भेद जानना चाहेंगे, वे अवश्य ही उर्दू लिपि से परिचित होने चाहिएँ; और वे अरबी-फ़ारसी के कोश देखकर अपना भ्रम दूर कर सकते हैं; किन्तु जो प्रयोक्ता उर्दू लिपि से परिचित नहीं हैं, उनके लिए कोश में इस प्रकार का भ्रम-जाल खड़ा करना उचित नहीं है। ऐसे प्रसंगवश यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बाद में इसका संशोधन एवं पुनर्सम्पादन होने जाने पर बदरीनाथ कपूर ने इसमें अरबी-फ़ारसी आधारित उर्दू लिपि को इस द्विभाषी उर्दू-हिन्दी कोश और इसके साथ अंग्रेजी शब्दार्थों को इसके उर्दू-हिंदी-अंग्रेजी त्रिभाषी कोश की प्रविष्टियों के साथ जोड़ दिया है।

७. कोश में प्रविष्टियों के अर्थ देते हुए ध्यान रखा गया है कि प्रयोक्ता को उनके ठीक-ठीक आशय के अतिरिक्त यह भी ज्ञात हो जाए कि उनका मूल क्या है अथवा वे किस शब्द से बने हैं; जैसे कि फ़िदाई का अर्थ दिया है – फ़िदा होने या जान देने वाला। इससे प्रयोक्ता सहज में ही समझ सकता है कि फ़िदाई शब्द 'फ़िदा' से बना है। इसके अतिरिक्त कोश में कई महत्त्वपूर्ण व्याकरणिक पहलुओं का नियमबद्ध प्रयोग भी मिलता जैसे कि इसमें प्रायः विशेषणों के साथ उनसे संबंध रखने वाली संज्ञाएँ भी प्रविष्टियों के आगे इसलिए कोष्ठक में दे दी गई हैं कि जिससे व्यर्थ का कोई विस्तार न हो; जैसे कि

[260] वही, दूसरे संस्करण की प्रस्तावना, पृष्ठ - 28

कोश देखें तो इसमें ख़बरगीर के साथ की संज्ञा ख़बरगीरी, गिलकार के साथ की संज्ञा गिलकारी, दिलचस्प के साथ की संज्ञा दिलचस्पी, फ़िक्रमन्द के साथ की संज्ञा फ़िक्रमन्दी आदि ऐसे ही कुछ-एक प्रविष्टियों के उदाहरण हैं।

८. देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश में सामान्यतः उर्दू/अरबी/फ़ारसी आदि के प्रचलित लगभग बारह हजार शब्दार्थों को शामिल किया गया। और सुगम प्रयोग के लिए उन शब्दों को देवनागरी में वैसे ही लिखा गया है, जैसे वे उच्चारित होते हैं।

९. इस कोश में वस्तुतः उर्दू कवियों की ग़ज़लों में मिलने वाले शब्दों के सिवा साहित्य एवं विविध विषयों के अन्यान्य शब्दावलियों, जैसे कि व्याकरण, गणित, धर्मशास्त्र, क़ानून आदि के भी बहुत से शब्द सम्मिलित किए गए हैं।

१०. स्वतंत्र अर्थों वाले अलग-अलग अरबी और फ़ारसी शब्द और संयुक्त अर्थ वाले शब्द इस कोश में सांकेतिक रूप से स्पष्टतः चिह्नित किए गए हैं तथा केवल स्वर के बदलाव से अलग अर्थ देने वाले उर्दू शब्दों को विशेष व्याख्या के साथ रखा गया है।

११. संकेताक्षर-सूची के साथ इसमें कोश-रचना के अन्य कई आधुनिक सैद्धान्तिक पहलुओं का व्यावहारिक और देवनागरी लिपि के अनुकूल प्रयोग करने का प्रयास हुआ है।

रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं में देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश का उल्लेखनीय महत्त्व रहा है। उक्त कोश का उपरोक्त विश्लेषण वर्मा जी की कोशकला का ही एक पड़ाव माना जा सकता है। जहाँ उनकी कोश-रचनाएँ उपजीव्य ग्रन्थों का रूप धारण कर लेती हैं। बहरहाल, यहाँ उल्लेखनीय है कि रामचन्द्र वर्मा संपादित देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश के उपलब्ध हुए संशोधित और परिवर्द्धित दूसरे संस्करण (सन् १९४० ई०) में 'अंगबी' से 'हौसला' तक शामिल किए गए शब्दों की कुल संख्या ११३३५ है; जो कोश प्रयोक्ताओं की दृष्टि से कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी कहा जा सकता है।

रामचन्द्र वर्मा संपादित आरक्षिक शब्दावली सन् 1948 ई० में नागरीप्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुई; जिसमें संपादक द्वय के रूप में गोपालचन्द्र सिंह का सहयोग रहा। इसमें पुलिस विभाग में प्रयुक्त होने वाले अँगरेजी और अरबी-फ़ारसी (उर्दू) शब्दों के हिन्दी पर्याय संगृहीत किए गए हैं। शब्दावली के संपादक इसके प्राक्कथन में उल्लेख करते हैं कि वस्तुतः यहाँ संक्षेप में यह भी निवेदित कर देना उचित होगा कि पर्यायों के स्थिर करने में

नागरीप्रचारिणी सभा के कोश-विभाग ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र, मनु तथा याज्ञवल्क्य आदि की स्मृतियों तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में प्रयुक्त शासन-संबंधी शब्दों का भी समुचित उपयोग किया है।[261] यही कारण है कि इस शब्दावली में इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है कि कोई उपयोगी शब्द छूटने न पाए। ऐसे में पर्याय स्थिर करने में संपादकों की दृष्टि यह रही है कि हिन्दी शब्दों से वही अर्थ और भाव ठीक-ठीक व्यक्त हो जाएँ जो उनके अँगरेजी अथवा अरबी-फ़ारसी पर्यायों से व्यक्त होते हैं। वहीं इस शब्दावली में दिए गए संकेताक्षरों के विवरण से पता चलता है कि इसमें शब्दों के निर्धारण में संपादकों को याज्ञवल्क्य स्मृति, अभिज्ञान-शाकुंतल, मिताक्षरा, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, रघुवंश और मृच्छकटिक से भी बहुत सहायता मिली है। बहरहाल, यहाँ आरक्षिक शब्दावली से अँगरेजी-हिंदी के निश्चित किए गए कुछ-एक शब्दों के उदाहरण दिए जा रहे हैं; जैसे कि Abductor अपनेता, Abet प्रवर्तित करना, Abetment प्रवर्तन, Abortion गर्भस्राव, Absent अनुपस्थित/अविद्यमान, Absentee अनुपस्थित व्यक्ति, Access पहुँच/गति, Accident दुर्घटना, Accusation अभियोग/दोषारोपण, Accused अभियुक्त आदि ऐसे ही व्यवहार योग्य कुछ उपयुक्त शब्द हैं। इसी तरह यहाँ पुलिस रूपकों (FORMS) में प्रयुक्त होने वाले कुछ शब्द दिए जा रहे हैं; जैसे कि Abstract सारांश, Abstract of report आख्या का सारांश, Deputed प्रतिनियुक्त, Impounded अवरुद्ध, Impounded property अवरुद्ध संपत्ति, Injured आहत, Injury letter आघातपत्र, Order sheet आज्ञा-फलक, Place of occurrence घटनास्थल, Rank पद आदि वस्तुतः इस श्रेणी में ऐसे ही कुछ-एक प्रमुख प्रयुक्त शब्द हैं। यहाँ हम भाषायी दृष्टिकोण से देखें तो आरक्षिक शब्दावली वास्तव में हिन्दी को राजभाषा के पद पर स्थापित करने के सहयोगी कारकों के रूप में शामिल की जा सकती है; जो शाब्दिक समृद्धि की दृष्टि से आज भी हिन्दी भाषा की अनिवार्य शब्दावलियों का प्रतिनिधित्व करती हुई महत्त्वपूर्ण जान पड़ती है।

1948 ई॰ में ही स्थानिक परिषद् शब्दावली भी संपादक द्वय रामचन्द्र वर्मा और गोपालचन्द्र सिंह के संपादन में काशी-नागरीप्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुई थी। जो मुख्य रूप से डल-परिषदों तथा नगर परिषदों में व्यवहृत होने वाले अँगरेजी-अरबी-फ़ारसी शब्दों

[261] रामचन्द्र वर्मा और गोपालचन्द्र सिंह (संपादक), *आरक्षिक शब्दावली*, वही, प्राक्कथन

के हिन्दी पर्याय स्थिर करने के लिए तैयार की गई थी। जहाँ तक हो सका है इसमें दोनों संपादकों ने अँगरेजी और अरबी-फ़ारसी शब्दों के ऐसे ही हिन्दी पर्याय स्थिर किए हैं जो व्यवहार में सरल भी हों और ठीक-ठीक अर्थ या आशय भी प्रकट कर सकें। वैसे कहीं-कहीं शब्द स्थिर करने में संपादकों ने 'आरक्षिक शब्दावली' की तरह ही अपने यहाँ के प्राचीन धर्मशास्त्रों और स्मृतियों आदि से भी बहुत कुछ सहायता ली है। बहरहाल, प्रसंगवश यहाँ पर स्थानिक परिषद् शब्दावली से उर्दू शब्दों और उनके हिन्दी पर्याय उदाहरण स्वरूप दिए जा रहे हैं; जैसे कि अर्दली – अनुचर, अहलमद – विभागपाल, इस्तकरार – प्रख्यापन, अज़्ज़दारी – १. आपत्ति २. आपत्तिपत्र, उम्मेदवार – अर्थिक, कबालानवीस – विलेखक, कब्ज़ा – १. अधिकार २. भोग, कारिन्दा – कार्यकर्ता, किरायानामा – भाटकपत्र, कुर्की – आसंजन, गोशवारा – चिट्ठा, जुर्माना – अर्थदंड, तजवीज सानी – पुनर्विचार, ततिम्मा – परिशिष्ट, तलबी – आकारण, तामीरात – वास्तु, दखल – १. प्रवेश २. भोग, दफ्ती – गत्ता, दलील – तर्क, दाखिल-खारिज – नाम-चढ़ाई, दाखिल दफ्तर हो – अभिलेखालय को भेजा जाए, दारोगा – निरीक्षक, दारोगा तामीरात – वास्तु-निरीक्षक, नकलनवीस – प्रतिलिपिकार अथवा प्रतिलिपिक, नक्शा – रेखाचित्र, नजर जानी – प्रत्यालोचन, नाजिर – प्रतिदर्शी, निगरानी – पुनरीक्षण, पेशकार – उपस्थापक, पैमाइश – मापन या माप, फ़र्राश – आमंडक, फ़र्राशी – आमंडन, बयान – १. कथन २. वक्तव्य, बहस – वितर्क, मखदूश – भीतिप्रद, मज़दूर – कर्मकर, मवेशीखाना – पशुशाला, मुयत्तल – अनुलंबित, मुन्सरिम – व्यवस्थापक, मुहर्रिर – करणिक, रवन्ना – निकासी, रोजनामचा – दैनिकी, शिकायत – परिवाद, सरबराहकार – कार्यपाल, सिफ़ारिश – अनुशंसा, सोख्ता – शोषक आदि वस्तुतः ऐसे ही कुछ उपयुक्त शब्द हैं। इस तरह स्थानिक परिषद् शब्दावली वस्तुतः इसीलिए तैयार की गई थी कि हिन्दी कार्यालय-भाषा के रूप में हिन्दीभाषी प्रान्तों की स्थानिक परिषदों में तो प्रचलित हो ही जाएगी, हिंदीतर प्रान्तों की स्थानिक परिषदें भी इसका बहुत कुछ उपयोग कर सकेंगी; जिससे राजभाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकार्यता निश्चित रूप से और अधिक बढ़ेगी।

हिंदी शब्दसागर एवं संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर के संपादन अनुभवों को थोड़ा-बहुत और परिष्कृत रूप देते हुए रामचन्द्र वर्मा ने प्रामाणिक हिन्दी कोश का संपादन किया। जो 1950 ई॰ में साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस से प्रकाशित हुआ। जयकान्त झा इस

कोश के सहायक संपादक थे। यह कोश हिन्दी का प्रामाणिक कोश माना गया; जिसमें संपादक ने मानकीकृत शब्दावली के सर्वश्रेष्ठ चयन का हर संभव प्रयास किया। बाद में इसी प्रामाणिक हिन्दी कोश के संशोधन और परिवर्द्धन के आधार पर बदरीनाथ कपूर ने बृहत् प्रामाणिक हिन्दी कोश, प्रामाणिक हिन्दी कोश (संक्षिप्त संशोधित संस्करण) एवं प्रामाणिक हिन्दी बाल कोश का संपादन किया; जो वस्तुतः कोश-रचना के दृष्टिकोण से वर्मा जी के कोशों को उपजीव्य-ग्रन्थों के रूप में पुनर्स्थापित करने का कार्य कहा जा सकता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि रामचन्द्र वर्मा संपादित प्रामाणिक हिन्दी कोश में शामिल कुल शब्द प्रविष्टियों की संख्या ३१५९७ थी; और उसके परिशिष्ट भाग में मुख्य प्रविष्टि से छूटे हुए कई और महत्त्वपूर्ण शब्दार्थ भी शामिल किए गए थे; जिसके पश्चात प्रयोक्ताओं के उपयोग के लिए इस कोश के अंत में अंग्रेजी वर्णक्रमानुसार एक अँगरेजी-हिन्दी शब्दावली भी दे दी गई थी। अतः अब यहाँ आगे हम इस प्रामाणिक हिन्दी कोश का कोश-रचनाओं के विश्लेषण की दृष्टि से अध्ययन-विश्लेषण करने का एक प्रयास करेंगे; जैसे कि –

१. प्रामाणिक हिन्दी कोश में भी प्रविष्टियों के वर्णानुक्रमादि रूप हिंदी शब्दसागर तथा संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर के अनुसार देवनागरी वर्णक्रम में ही दिए गए हैं।
२. इस कोश में प्रविष्टियों का क्रम उन्हीं सिद्धांतों के अनुसार है जो हिन्दी शब्दसागर की रचना के समय स्थिर हुए थे। किन्तु शब्दसागर में कहीं-कहीं भूलवश उन सिद्धांतों का अतिक्रमण भी हुआ है। इस प्रकार की भूलें जहाँ-जहाँ रामचन्द्र वर्मा के ध्यान में आई हैं, वहाँ-वहाँ वे प्रामाणिक हिन्दी कोश के संपादन में ठीक कर दी गई हैं।
३. हिंदी शब्दसागर के बाद के छूटे हुए आधुनिक कवियों व कुछ-एक समाचारपत्रों आदि में प्रयुक्त सात-आठ हजार नए शब्द भी इस कोश की प्रविष्टियों में शामिल किए गए हैं।
४. स्वतंत्रता के बाद हिन्दीभाषी लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए और उनके प्रयोग में आने वाले शासनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक आदि अनेक सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्रों के कार्यालयों में प्रयुक्त होने वाले बहुत से अँगरेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय उपयोगिता की दृष्टि से इस कोश में भी शामिल किए गए हैं।
५. प्रामाणिक हिन्दी कोश में प्रयोक्ताओं को कुछ अँगरेजी शब्दों के दो-दो और तीन-तीन पर्याय भी मिलेंगे; वे इस दृष्टि से दिए गए हैं कि सुविज्ञ लोग उनमें से चल सकने योग्य और उपयुक्त शब्द आसानी से चुन सकें। ऐसे महत्त्वपूर्ण शब्दों की व्याख्या के अंत में

उनके वाचक अँगरेजी शब्द भी दे दिए गए हैं। बहरहाल, जो प्रयोक्ता कार्यालयों में प्रचलित कुछ-एक उपयोगी अँगरेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय जानना चाहते हों, उनकी सुविधा के लिए कोश संपादक ने अँगरेजी के प्रायः दो हजार शब्दों की एक सूची उनके हिन्दी पर्यायों के साथ इस कोश के अंत में दे दी है।

६. हिन्दी और संस्कृत के शब्दों में से गिनतियों, औषधियों, स्थलों, व्यक्तियों, पशु-पक्षियों, जातियों, वृक्षों आदि के नामों एवं धर्म-शास्त्र, ज्योतिष, तर्क-शास्त्र, पिंगल, अलंकार-शास्त्र आदि के शब्दों में से वस्तुतः वही शब्द प्रामाणिक हिन्दी कोश में लिए गए हैं, जो बहुत अधिक प्रचलित हैं। इसी तरह अरबी-फ़ारसी के भी बहुत प्रचलित शब्द ही इस कोश में लिए गए हैं, शेष छोड़ दिए गए हैं।

७. कोश में शब्दों के अक्षरी या हिज्जे उनके मानक रूप के अंतर्गत ही आ जाते हैं किन्तु प्रामाणिक हिन्दी कोश में संपादक द्वारा अक्षरी में भी एक विशेष बात का ध्यान रखा है; वह यह कि आवश्यकतानुसार समस्त या यौगिक शब्द-पदों में संयोजक-चिह्न लगाकर उनके ठीक-ठीक उच्चारण बतलाने का भी प्रयत्न किया गया है। जैसे कि उदाहरणार्थ 'कनपटी' रूप इसलिए दिया गया है ताकि तमिल, बंगाली, मराठी आदि हिन्दीतर भाषा-भाषी कहीं भूल से उसका उच्चारण 'कनप-टी' के समान न करने लगें। इसी दृष्टि से 'ड' और 'ड़' तथा 'ढ' और 'ढ़' के अंतर का भी बहुत-कुछ ध्यान रखा गया है।

८. इस कोश में संपादक द्वारा अरबी-फ़ारसी आदि विदेशी शब्दों के हिन्दी मानक रूप स्थिर करने का भी कुछ हद तक प्रयत्न किया गया है। जैसे कि उदाहरणार्थ देखें तो उम्र, बिल्कुल, सब्र, सर्दी आदि रूपों के बदले उमर, बिलकुल, सबर, सरदी आदि रूप ही मानक माने गए हैं। संपादक के अनुसार इसके कई कारण हैं, एक तो यह कि ये शब्द हिन्दी में इन्हीं रूपों में बोले और लिखे जाते हैं; दूसरे यह कि ऐसे रूपों में संयुक्त अक्षरों के लिखने और पढ़ने की कठिनाई से बचत होती है। किन्तु बस्ता, बस्ती जैसे कुछ-एक शब्द इसी लिए इन्हीं रूपों में रखें गए हैं क्योंकि ये इसी प्रकार से बोले और लिखे जाते हैं। इसी दृष्टि से संस्कृत के तारल्य, प्रबलता, शिथिलता आदि रूप ही कोश में मान्य किए गए हैं। बहरहाल, सारांश यह है कि इस कोश में शब्दों के मानक रूप बहुत ही सोच-समझकर और कुछ विशिष्ट सिद्धांतों के आधार पर ही स्थिर किए गए हैं; जो इस कोश की गुणवत्ता की उत्कृष्टता को प्रतिष्ठित करते हैं।

९. शब्द-भेद और व्याकरणिक कोटियों का निरूपण भी प्रामाणिक हिन्दी कोश में कुशलतापूर्वक किया गया है; जैसे कि संज्ञा, विशेषण, क्रिया के भेदों अर्थात् सकर्मक और अकर्मक क्रिया, क्रिया विशेषण इत्यादि का निर्धारण व्याकरणिक प्रयोगों के आधार पर निश्चित किया गया है और प्रायः शब्दों के साथ ही भाववाचक संज्ञाएँ, विशेषण, क्रियाएँ आदि भी कोष्ठक में दे दी गई है; जैसे कि तीक्ष्ण के अंतर्गत ही तीक्ष्णता, दीवाना में ही दीवानापन, संबंध के साथ ही उससे बननेवाला विशेषण संबद्ध इत्यादि व्याकरणिक जानकारी भी इस कोश में दे का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही, हिन्दी में जो शब्द अशुद्ध रूप अथवा अशुद्ध अर्थ में चल पड़े हैं, उनकी अशुद्धता आदि का निर्देश भी प्रविष्टियों के आगे कोष्ठक में कर दिया गया है।

१०. प्रामाणिक हिन्दी कोश में प्रविष्टियों के लिंग विचारपूर्वक और कुछ निश्चित सिद्धांतों के आधार पर स्थिर किए गए हैं। जैसे कि संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर में थूक शब्द पुल्लिंग बतलाया गया है किन्तु इस कोश में इस मत को ध्यान में रखा गया है कि चूक, हूक, फूँक आदि शब्दों की तरह थूक भी स्त्रीलिंग ही है; अतः ऐसे ही कई अन्य शब्दों का लिंग निर्धारण भी इसमें सावधानीपूर्वक किया गया है।

११. इस कोश में व्युत्पत्तियों की वैसी छानबीन तो नहीं हो सकी है, जैसी होनी चाहिए, फिर भी कोश में जहाँ-तहाँ बहुत-सी व्युत्पत्तियाँ ठीक की गई हैं; जैसे 'तरी' का एक अर्थ होता है – नीची भूमि अर्थात् जिसमें बरसाती पानी इकट्ठा होता है, वह है। इस अर्थ में यह शब्द हिन्दी के उस 'तर' से निकला है, जिसका अर्थ 'तले' या 'नीचे' है, न कि फ़ारसी 'तर' अर्थात् आर्द्र से इसे उत्पन्न बतलाना चाहिए। बहरहाल, व्युत्पत्ति संबंधी इस प्रकार की सैकड़ों भूलें इस कोश में सुधारी गई हैं। बहुत-से ऐसे शब्द भी हैं जिनकी कोई व्युत्पत्ति 'शब्दसागर' आदि में दी ही नहीं गई और उनके आगे प्रश्न-चिह्न लगाकर छोड़ दिया गया है। इस कोश में ऐसे कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति ढूँढ़ने का भी प्रयत्न किया गया है; जैसे उदाहरणार्थ देखें तों पंक्ति या कतार के अर्थ में 'परा' शब्द फ़ारसी के उस 'पर' शब्द से निकला है, जिसका अर्थ पंख है। इसी तरह धूजना शब्द धूत से और पुटियाना शब्द 'पुट देना' में के पुट से निकला है।[262] किन्तु इसमें पुतली घर, पक्का,

[262] रामचन्द्र वर्मा (सम्पादक) जयकान्त झा (सहायक सम्पादक), *प्रामाणिक हिन्दी कोश*, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण विक्रम संवत् २००७ अर्थात् सन् १९५० ई०, प्रस्तावना, पृष्ठ - 7-8

चिट्ठा जैसे कई समस्त या यौगिक शब्दों की व्युत्पत्ति इसलिए नहीं दी गई है क्योंकि वह ऐसे शब्दों से स्वतः ही प्रकट हो जाती है और इनके अलग-अलग शब्दों के अंतर्गत व्युत्पत्ति विषयक स्पष्टता देखी जा सकती है।

१२. कोश में शब्दार्थों के अ-व्याप्ति दोष और अति-व्याप्ति दोष से बचने का प्रयास भी है।

१३. हिंदी शब्दसागर से इतर इस कोश में जहाँ तक हो सका है मुहावरे, कहावत और पद अलग-अलग रखे गए हैं; जैसे कि 'काम पड़ना' मुहावरा है, 'काम के न काज के' कहावत है और 'काम की बात' पद है। इसके साथ जिस प्रकार शब्दों के मानक रूप स्थिर किए गए हैं, उसी प्रकार मुहावरों के भी मानक रूप स्थिर करने का प्रयास किया गया है; जैसे कि उदाहरणार्थ देखें तो मुहावरे का शुद्ध रूप है 'टुक्का सा जवाब देना' न कि 'टका सा जवाब देना'। रामचन्द्र वर्मा के अनुसार 'टुक्का' का अर्थ होता है 'टुकड़ा' अर्थात् इस तरह मुहावरे का आशय है – उसी प्रकार जवाब देना जिस प्रकार किसी चीज़ का कोई टुकड़ा तोड़कर किसी के आगे फेंक दिया जाता है। और 'टका सा जवाब' में 'टका' केवल उर्दू वालों की फ़साहत और उर्दू-लिपि की कृपा से चला है अर्थात् वस्तुतः ज्ञात हो कि 'टका सा जवाब का कुछ अर्थ नहीं होता।

१४. इस प्रामाणिक हिन्दी कोश में दी गई अँगरेजी-हिन्दी शब्दावली में अँगरेजी शब्दों के आगे जो हिन्दी पर्याय दिए गए हैं, उनमें से बहुतेरे शब्द कोश संपादक को बाद में ध्यान आए हैं; अतः वे परिशिष्ट के अंतर्गत दिए गए हैं और ऐसे अधिकतर शब्दों के आगे परिशिष्ट का संकेत भी कर दिया गया है।

इस प्रकार प्रामाणिक हिन्दी कोश का किया गया यह विश्लेषण रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के अध्ययन के इस दृष्टिकोण से भी आवश्यक है कि इसका उपयोग उपजीव्य ग्रन्थ के रूप में करते हुए बदरीनाथ कपूर ने कई महत्त्वपूर्ण कोशों जैसे कि बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश, प्रामाणिक हिन्दी बाल कोश आदि के तौर पर संशोधन और परिवर्द्धन किया था। बहरहाल, यहाँ हम यह कह सकते हैं हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा के इन कोशों का वस्तुतः बड़ा उल्लेखनीय महत्त्व रहा है। अतः इस आधार पर ज्ञात होता है कि वर्मा जी की कोश-रचनाओं के विश्लेषण और उनके अध्ययन का यह प्रयास अपने सार्थक पड़ाव पर पहुँचने का ही एक प्रयत्न मात्र है; जिसकी थोड़ी-बहुत सिद्धि वस्तुतः यहाँ होती जान पड़ रही है।

सन् 1955 ई० में प्रकाशित 'शब्द-साधना' वस्तुतः कोश-रचना के क्षेत्र में रामचन्द्र वर्मा के लंबे अध्यवसाय का परिणाम है। जो मुख्यतः उन विचारशीलों को समर्पित है जो तात्त्विक और वैज्ञानिक दृष्टि से शब्दों की आत्मा का साक्षात्कार करना चाहते हैं अर्थात् जो वास्तव में शब्दों की पर्यायकी का अध्ययन करना चाहते हैं और जिनके मन में शाब्दिक मीमांसा की उत्कट इच्छा है। अगर ऐसा न हो तो भी वस्तुतः यहाँ विदित है कि शाब्दिक मीमांसा और शब्द-ब्रह्म का उत्तोत्तर संबंध है। इसी कारण कहते हैं कि शब्दों में भी आत्मा तथा जीवन – ब्रह्म का व्यक्त और स्पष्ट अंश – होता है। उनका भी जन्म और विकास होता है; कुल, गोत्र और परिवार होते हैं। ऐसे में उनका महत्त्व संभवतः उन प्राणियों से भी बढ़कर होता है, जो उनका प्रयोग करते हैं। अतः ऐसी उत्कृष्ट वस्तु को नगण्य या साधारण समझकर हम बहुत बड़ा अन्याय और अपराध करते हैं। इस दृष्टि से शब्दों के ठीक-ठीक अर्थ और आशय समझना असल में अपना और अपने देश तथा साहित्य का गौरव बढ़ाना है। वस्तुतः रामचन्द्र वर्मा इन उक्त बातों के साथ यह भी कहते हैं कि इसके लिए विपुल तपस्या और साधना भी होनी ही चाहिए। राष्ट्रभाषा ऐसे तपस्वियों और साधकों की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही है। ज्ञात हो कि हमारे यहाँ का 'शब्द-ब्रह्म' पद बतलाता है कि किसी समय भारतीय लोग शब्दों और उनके अर्थों को कितना अधिक महत्त्वपूर्ण समझते थे। किन्तु इधर बहुत दिनों से हम शब्दों को 'ब्रह्म' मानना और 'ब्रह्म' ही की तरह उनकी उपासना तथा साधना करना भूल से गए हैं; और इसी लिए हम विद्या तथा साहित्य की दृष्टि से अब बहुत पीछे रह गए हैं। किन्तु पाश्चात्य देशों में अब 'शब्द-ब्रह्म' की उपासना और साधना उसी प्रकार हो रही है, जिस प्रकार किसी समय प्राचीन भारत में होती थी। अतः आज हमारे लिए भी फिर से शब्द-ब्रह्म का महत्त्व समझना बहुत आवश्यक हो गया है।[263] और रामचन्द्र वर्मा के अनुसार उसी महत्त्व की ओर हिन्दी वालों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए वस्तुतः उनके द्वारा 'शब्द-साधना' का यह तुच्छ प्रयास पूरा किया गया है। बहरहाल, 'शब्द-साधना' एक प्रकार के पर्यायकी या पर्यायवाची शब्दों के अर्थ बतलाने वाला ही कोश-ग्रन्थ है। जो वस्तुतः एक दूसरे के पर्याय माने जाने वाले कुछ-एक उपयुक्त शब्दों के पारस्परिक अंतर को बतलाता है। रामचन्द्र वर्मा लिखते हैं कि "पर्याय

---

[263] रामचन्द्र वर्मा, *शब्द-साधना*, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण - 1955 ई०, निवेदन, पृष्ठ - 2

हमें बहुधा धोखे में रखते हैं। वे हमें शब्दों के अर्थों की छाया का आभास मात्र करा देते हैं – उनके ठीक और पूरे अर्थ तथा भाव नहीं बतलाते। कारण यही है कि हम जिस प्रकार किसी शब्द के वास्तविक अर्थ से अपरिचित होते हैं, उसी प्रकार उसके पर्यायों के वास्तविक अर्थों से भी कोरे रहते हैं। फिर उन पर्यायों में भी बहुत कुछ अर्थ भेद होते हैं। और जब तक हमें पर्याय माने जानेवाले शब्दों के अर्थ-भेद न मालूम हों, तब तक हमारा भाषा-ज्ञान अधूरा ही रहता है, वह कभी गहरा, पक्का, पूरा और यथार्थ नहीं हो सकता।"[264] अतः अँगरेजी के समतुल्य पर्याय निर्धारण में हिन्दी भाषा और उसके शब्दों के अर्थों के इसी अधूरे ज्ञान से जन-साधारण को परिचित कराने अथवा कुछ हद तक उनका ठीक-ठीक अर्थबोध समझाने तथा शब्दों की पर्यायकी को निश्चित करने के लिए इस 'शब्द-साधना' नामक ग्रन्थ की रचना की गई है।

कहा गया है कि किसी भाषा को मानक बनाने के लिए ये तीन बातें आवश्यक होती हैं – एक तो व्याकरण की दृष्टि से शुद्धता और सर्वांग-पूर्णता; दूसरे, अक्षरी के विचार से शब्दों के रूपों की निश्चितता और स्थिरता, और तीसरे, शब्दों की आर्थी मर्यादा का निर्धारण और परिसीमन।[265] बहरहाल, ऐसे में हम जिस अँगरेजी के स्थान पर हिन्दी को आसीन करना चाहते हैं, यदि उसके साहित्यिक वैभव को छोड़ कर केवल भाषिक वैभव की ओर ध्यान दें, तो भी हम सहज में समझ सकेंगे कि हमें अँगरेजी के पास तक पहुँचने के लिए अभी कितना बड़ा रास्ता और पार करना है।[266] अतः हिन्दी की भाषिक त्रुटियों और दुर्बलताओं का जितना और जैसा अधिक अनुभव रामचन्द्र वर्मा को इस 'शब्द-साधना' के काम में हुआ है, उतना और वैसा अनुभव उनके अनुसार उन्हें आज तक कभी नहीं हुआ था। वर्माजी के शब्दों में कहें तो हिन्दी की यह दुर्बलता तभी दूर होगी, जब हम अपनी भाषा को उसी प्रकार मानक बना सकेंगे, जिस प्रकार संसार की अन्य उन्नत भाषाएँ हैं अर्थात् केवल शब्दों की कमी देखकर हिन्दी में नए-नए कई अन्य हजारों-लाखों शब्द गढ़ डालने भर से काम नहीं चलेगा।[267] यही कारण है कि पर्यायकी कोशों की कोशकारिता के

---

[264] वही, निवेदन, पृष्ठ - 2

[265] वही, निवेदन, पृष्ठ - 3

[266] वही, निवेदन, पृष्ठ - 4

[267] वही, निवेदन, पृष्ठ - 4-5

क्षेत्र में 'शब्द-साधना' का यह कार्य वस्तुतः रामचन्द्र वर्मा द्वारा हिन्दी में अँगरेजी शब्दों की मानकीकृत पर्यायकी निश्चित करने की दिशा में अग्रसर एक महत्त्वपूर्ण और प्राथमिक प्रयास जान पड़ता है।

यहाँ प्रसंगवश यह उल्लेखनीय है कि रामचन्द्र वर्मा के अनुसार आधुनिक दृष्टि से पर्यायों के सूक्ष्म अर्थ-भेदों के निरूपण की ओर संभवतः पहले पहल फ्रांसीसी भाषाविदों का ही ध्यान गया था। सन् 1718 ई॰ में जिरर्ड (?) नामक फ्रांसीसी विद्वान ने अपने एक ग्रन्थ में इसका उल्लेख करते हुए यह बतलाया था कि पर्यायों को बिलकुल समानार्थी समझना बहुत बड़ी भूल है। शब्दों के अलग-अलग अर्थ होते हैं; और उनका प्रयोग सदा उन ठीक अर्थों में ही होना चाहिए।[268] वस्तुतः इस फ्रांसीसी भाषाविद् द्वारा फ्रांसीसी भाषा में जो बहुत-से शब्द एक-दूसरे के पर्याय माने जाने के कारण अनुपयुक्त रूप से प्रयुक्त होते थे, उनके ठीक अर्थ और प्रयोग इस ग्रन्थ में बतलाए गए थे। कहा जाता है कि इस ग्रन्थ का सारे योरोप में यथेष्ट प्रचार हुआ था, जिससे इसकी ओर तब के कई अच्छे-अच्छे विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ था। बाद में, इसी ग्रन्थ के अनुकरण और आधार पर इंग्लैंड में जॉन ट्रसलर नामक एक पादरी ने सन् 1766 ई॰ में 'पर्यायवाची माने जानेवाले शब्दों में भेद' नामक एक ग्रन्थ अँगरेजी में प्रकाशित किया था। इस विषय का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ब्रिटिश पर्यायकी (British Synonymy) के नाम से सन् 1794 ई॰ में प्रकाशित हुआ था; जिसकी रचयित्री श्रीमती पियोजी थीं। श्रीमती पियोगी अँगरेजी के सुप्रसिद्ध कोशकार और विद्वान जॉनसन की घनिष्ठ मित्र मानी जाती थीं।[269] बहरहाल, इन सब बातों से मुख्य विषय से कुछ-कुछ भटकाव हुआ जा रहा है, अतः यहाँ पर पुनः एक बार हम अपना ध्यान 'शब्द-साधना' के विश्लेषण की ओर ले आते हैं; जिसका एकमात्र उद्देश्य – हिन्दी को भाषिक दृष्टि से आगे बढ़ाकर अँगरेजी के समकक्ष ले आने का रहा है। इसके लिए ही रामचन्द्र वर्मा द्वारा सैकड़ों नए शब्द गढ़े गए हैं, और जहाँ तक हो सका है 'शब्द-साधना' में अर्थों को एक निश्चित सीमा में बद्ध करके उनके विस्तार तथा व्याप्ति को मर्यादित रूप देने का प्रयत्न किया गया है। वस्तुतः कहना न होगा कि यही 'शब्द-साधना' के कोशगत विश्लेषण का वास्तविक मूल भी है; जिसके बारे में रामचन्द्र वर्मा स्वयं लिखते हैं कि "यह

[268] वही, निवेदन, पृष्ठ - 7

[269] वही, निवेदन, पृष्ठ - 7-8

पुस्तक मेरे जीवन के सबसे अधिक संकट-मय काल की रचना है। मानसिक, शारीरिक आदि अनेक प्रकार की चिन्ताएँ अपने प्रबल-तम रूप में मेरे सामने आई हैं। इस बीच में मुझे एक ऐसा विकट मानसिक आघात सहना पड़ा है, जिसकी मैंने कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। यदि मैं इस आघात के फल स्वरूप मरने या पागल होने से बचा हूँ, तो इसी 'शब्द-साधना' की कृपा से। यही काम इतने दिनों तक मुझे विकट मानसिक कष्टों और चिन्ताओं की ओर से उदासीन रखने में समर्थ हुआ है। अतः यह 'शब्द-साधना' मेरे लिए संजीवनी सिद्ध हुई है।"[270] ऐसे में कुछ हद तक हमें भी इसमें निर्धारित की गई कुछ-एक पर्यायकी की प्रविष्टियों को अपने अध्ययन के निहितार्थ अवश्य देख लेना चाहिए – उदाहरणार्थ 'शब्द-साधना' में शामिल एक प्रविष्टि का इसी आधार पर आगे यहाँ उल्लेख किया जा रहा है; जैसे कि कोश = शब्दकोश (Dictionary), अभिधान = नामकोश = नाममाला (Nomenclature), कोश कला (Lexicology), कोश-रचना (Lexicography), जीवनी-कोश (Biographical Dictionary), निघन्टु = पुराकोश (Lexicon), पदावली (Phraseology), पर्यायकी (Synonymy), पर्याय कोश (Synonyms Dictionary), भौगोलिकी (Gazetteer), विश्वकोश (Encyclopaedia), शब्दार्थी (Glossary) और शब्दावली (Vocabulary) अर्थात् इस प्रविष्टि में कोश विषयक कुल १४ अँगरेजी शब्दों की हिन्दी पर्यायकी निर्धारित की गई है। वस्तुतः इस कोश विषयक पर्यायकी निर्धारण के संदर्भ में ही रामचन्द्र वर्मा लिखते हैं कि "शब्द-कोश बनाने का काम कोश-रचना कहलाता है। इसमें सभी तरह के कोश, शब्दावलियाँ आदि बनाने का काम आ जाता है। कोश कला वह विद्या या शास्त्र है जिसमें इस बात का विवेचन होता है कि सब प्रकार के कोश किस तरह और किन सिद्धांतों के आधार पर बनाए जाते हैं, उनमें किस तरह की बातों का किस ढंग से विवेचन तथा समावेश होना चाहिए, और उनके प्रकार तथा रूप आदि कैसे होने चाहिएँ।"[271] किन्तु ज्ञात हो कि इस प्रविष्टि में 'Lexicology' के लिए पर्यायकी निर्धारित करते हुए वर्मा जी से 'कोश-विज्ञान' जैसा महत्त्वपूर्ण शब्द छूट गया है। ऐसे में यहाँ यह उल्लेखनीय हो जाता है कि इस प्रविष्टि में 'कोश-कला' को जिस रूप में परिभाषित किया गया है, वह अर्थ वस्तुतः 'कोश-विज्ञान'

---

[270] वही, निवेदन, पृष्ठ - 11

[271] वही, पृष्ठ - 74

अर्थात् 'Lexicology' शब्द के लिए ही कुछ हद तक सटीक बैठता है। ऐसे में यहाँ यह कहना उचित होगा कि 'कोश-कला' अपने सही अर्थों में 'कोश-रचना' की अँगरेजी पर्यायकी 'Lexicography' के निकटतम प्रतीत होती है, बल्कि यहाँ दृढ़तापूर्वक कहें तो वह इन अर्थों में वस्तुतः है भी यही; और इसके लिए फ़ादर कामिल बुल्के का प्रसिद्ध अँगरेजी-हिन्दी कोश सबसे बड़ा प्रमाण है, जिसमें Lexicography के लिए 'कोश-कला' और 'कोश-रचना' शब्दों का प्रयोग किया गया है। ख़ैर, ज्ञात हो कि पर्यायकी शब्दों के विश्लेषण और निर्धारण के अतिरिक्त 'शब्द-साधना' के अंतिम भाग में इस पर्यायकी कोश में दिए गए शब्दों की दो अनुक्रमणिका भी संलग्न की गई है; जिसमें अनुक्रमणिका 'क' में हिन्दी-अँगरेजी और अनुक्रमणिका 'ख' में अँगरेजी-हिन्दी शब्दों को इस पर्यायकी कोश में उनकी स्थिति के पृष्ठों के उल्लेख के साथ वर्णानुक्रम से व्यवस्थित किया गया है। वस्तुतः ऐसा 'शब्द-साधना' के प्रयोक्ताओं की सहूलियत को ध्यान में रख कर किया गया है ताकि इसमें शामिल हिन्दी-अँगरेजी शब्दों की पर्यायकी को आसानी से देखा जा सके।

रामचन्द्र वर्मा कृत शब्द-साधना अँगरेजी शब्दों के समक्ष हिन्दी पर्यायकी निर्धारित करनेवाला अपने स्तर का उल्लेखनीय ग्रन्थ है। जो इन्हीं कारणों से हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में आवश्यक प्रतिमान कहा जा सकता है। इस तरह वर्माजी की कोश-रचनाओं के विश्लेषण के पड़ाव को ही कुछ और आगे बढ़ाने का छोटा-सा प्रयत्न किया गया; जिसका निहितार्थ यहाँ उल्लेखनीय रूप से रामचन्द्र वर्मा की निर्धारित कोश-रचनाओं के विश्लेषण के विभिन्न पक्षों से जुड़ा हुआ जान पड़ता है।

हिन्दी कोश परम्परा में हिंदी शब्दसागर, संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर, प्रामाणिक हिंदी कोश जैसे कई प्रमुख कोश-ग्रन्थों की रचना-प्रक्रिया और संपादन से जुड़े रहने वाले शब्दर्षि रामचन्द्र वर्मा का एक बेहद महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय कोश-ग्रन्थ 'मानक हिन्दी कोश' को माना जाता है। जिसे हिन्दी भाषा का अद्यतन, अर्थ-प्रधान और सर्वांगपूर्ण शब्दकोश कहा गया है; जिसको हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने पहली बार सन् 1962 ई॰ से 1966 ई॰ के दौरान पाँच खण्डों में प्रकाशित किया था। ज्ञात हो कि इस कोश के सहायक संपादकों में बदरीनाथ कपूर, तारिणीश झा, गुरुनारायण पाण्डेय और जयशंकर त्रिपाठी का नामोल्लेख भी शामिल है। बहरहाल, यहाँ पर 'मानक हिन्दी कोश' के पाँच खण्डों में

विभक्त शब्दों का अनुक्रम और उनकी कुल संख्या का विवरण जान लेना भी आवश्यक प्रतीत होता है, ताकि कोशगत विश्लेषण के आरंभिक स्वरूप को इस कोश की महत्ता के साथ-साथ समझा जा सके, जो वस्तुतः इस प्रकार दिया गया है –

- पहला खण्ड – 'अ' से 'क्ष्वेडा' तक और कुल शब्दसंख्या - २१९४८
- दूसरा खण्ड – 'ख' से 'त्सारुक' तक और कुल शब्दसंख्या - २११२७
- तीसरा खण्ड – 'थ' से 'प्लैटिनम' तक और कुल शब्दसंख्या - २३६५३
- चौथा खण्ड – 'फ' से 'ल्हेसित' तक और कुल शब्दसंख्या - २१०८२
- पाँचवाँ खण्ड – 'व' से 'ह्वेल' तक और कुल शब्दसंख्या - २५३९६

उपरोक्त विवरण के अतिरिक्त 'मानक हिन्दी कोश' के पाँचवें खण्ड में दो परिशिष्टों को भी संलग्न किया है, जिसमें परिशिष्ट 'क' में कोश में न आ सके कई छूटे हुए शब्द और अर्थ एवं परिशिष्ट 'ख' में वर्णानुक्रम से अंग्रेजी-हिन्दी की एक शब्दावली दी गई। इस तरह पाँच खण्डों में विभक्त 'मानक हिन्दी कोश' में कुल शब्द प्रविष्टियों की संख्या ११३२०६ के आस-पास है। जो कोश-ग्रन्थों में शब्द-संग्रहण की दृष्टि से हिन्दी शब्द-संपदा का एक विशालतम संग्रह कहा जा सकता है। इन्हीं संदर्भों के साथ यहाँ 'मानक हिन्दी कोश' का विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जो पूर्ण रूप से कोश-रचनाओं के विश्लेषण के आधारों तथा कोशकारिता के प्रयोगगत व्यावहारिक दृष्टिकोण पर आधारित है –

१. मानक हिन्दी कोश में शामिल सभी प्रविष्टियों के वर्णानुक्रमादि रूप भी हिन्दी शब्दसागर, संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर और प्रामाणिक हिन्दी कोश के अनुसार वस्तुतः देवनागरी-लिपि के वर्णक्रम में ही दिए गए हैं।
२. हिन्दी के प्रायः सभी कोशों में एक ही शब्द अनेक भिन्न-भिन्न स्थानिक रूपों में तो लिए ही गए हैं; प्रायः सभी रूपों के साथ उनके अर्थ, क्रियाप्रयोग, मुहावरे आदि भी दे दिए गए हैं। किन्तु इस कोश में यथासाध्य मानक और शिष्ट-सम्मत रूपों के साथ ही अर्थ, उदाहरण, मुहावरे, व्याख्याएँ आदि दी गई हैं, शेष स्थानिक रूपों के आगे केवल उनके मानक रूप का निर्देश मात्र कर दिया गया है। इससे एक तो उल्लिखित कोश के आकार-प्रकार में व्यर्थ का विस्तार नहीं हुआ है और दूसरा कोश के प्रयोक्ताओं को

शब्द का अधिक प्रचलित, मानक और शिष्ट-सम्मत रूप भी आसानी से पता चल जाता है। जैसे कि उदाहरणार्थ देखें तो लोक में 'भरता' और 'भुरता' दोनों रूप चलते हैं मगर शिष्ट-सम्मत रूप 'भरता' ही है अर्थात् 'भुरता' केवल उसका स्थानिक रूप मात्र है। अतः कोश में सारा विवेचन 'भरता' के अन्तर्गत किया गया है और 'भुरता' में 'भरता' का केवल निर्देश कर दिया गया है। इसी तरह के कई और उदाहरण भी 'मानक हिन्दी कोश' में देखे जा सकते हैं। जिनके बारे रामचन्द्र वर्मा का मत है कि "इससे लोग शब्दों के मानक तथा शुद्ध रूप जान सकेंगे और आगे चलकर हिन्दी भाषा का मानक रूप स्थिर करने में विशेष सहायता मिलेगी।"[272] बहरहाल, इसी के साथ-साथ 'मानक हिन्दी कोश' में बहुत से शब्दों की अक्षरी/वर्तनी भी ठीक की गई है। जैसे कि हिन्दी शब्दसागर में कुआँ, कुहरा, धुआँ, पांडुवा, भौंतुवा आदि शब्द-रूप ठीक मानकर उन्हीं के आगे अर्थ और विवरण दिए गए हैं, जो उच्चारण के विचार से ठीक नहीं हैं। अतः मानक हिन्दी कोश में इनके क्रमशः कूआँ, कोहरा, धूआँ, पांडूआ, भौंतुआ आदि शब्द-रूप ही रखे गए हैं और उन्हीं के आगे अर्थ तथा विवरण दिए गए हैं; जैसे कि हिन्दी शब्दसागर में सारा विवेचन 'पावं' प्रविष्टि में दिया गया है पर मानक हिन्दी कोश में उसका मानक रूप 'पाँव' रखा गया है और उसी में सारा विवेचन दे दिया गया है।[273] ऐसे कई उदाहरण इस कोश में मिल जाएँगे जिन प्रविष्टियों में शब्दों के रूप और उनकी अक्षरी/वर्तनी को उक्त दृष्टि से कुछ संशोधित व परिवर्द्धित किया गया है।

३. शब्दों की ठीक-ठीक व्युत्पत्ति का निर्धारण एक टेढ़ी खीर है, किन्तु मानक हिन्दी कोश में रामचन्द्र वर्मा ने शब्दों की निरुक्ति/व्युत्पत्ति देने का यथासंभव भरपूर प्रयास भी किया है। कोश में शामिल संस्कृत शब्दों की प्रविष्टियों में व्युत्पत्ति लिखने का कार्य 'मानक हिन्दी कोश' के सहायक संपादक तारिणीश झा ने ही किया है। हिन्दी शब्दसागर में निरुक्ति/व्युत्पत्ति से जुड़ा जो काम हुआ था, वह बिलकुल नया होने के कारण भी तथा उस समय की परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए भी बहुत-कुछ अधूरा तथा त्रुटिपूर्ण कार्य था। अतः ऐसे हजारों शब्दों की निरुक्तियाँ/व्युत्पत्तियाँ इस मानक हिन्दी कोश में ठीक

---

[272] रामचन्द्र वर्मा (संपादक), *मानक हिन्दी कोश (पहला खण्ड)*, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, तृतीय संस्करण - 2006 ई०, आरम्भिक निवेदन, पृष्ठ - 7

[273] वही, आरम्भिक निवेदन, पृष्ठ - 7-8

की गई हैं; जैसे कि यहाँ उदाहरणार्थ देखें तो हिन्दी के कुछ-एक क्षेत्रों में एक देहाती बहु-प्रचलित शब्द 'बेहरी' है, जिसकी व्युत्पत्ति हिन्दी शब्दसागर में दी ही नहीं गई और कोष्ठक में केवल प्रश्नचिह्न लगाकर छोड़ दिया गया है। रामचन्द्र वर्मा की समझ में यह शब्द संस्कृत व्याहृति से व्युत्पन्न है, जिसका एक अर्थ 'वि+आहरण' अर्थात् किसी से ज़बरदस्ती कुछ ले लेना भी है।[274] इसी तरह 'जुकाम' अरबी का सीधा-साधा शब्द है, किन्तु हिन्दी शब्दसागर में इसकी व्युत्पत्ति 'जूड़ी+घाम' दी गई है, जो वस्तुतः इन अर्थों में व्युत्पत्ति निर्धारण का एक हास्यास्पद उदाहरण है। बहरहाल, इस प्रकार के बहुत-से उदाहरणों का उल्लेख वर्माजी ने स्वयं अपनी पुस्तक 'कोश-कला' में भी किया है। इस तरह मानक हिन्दी कोश में निरुक्ति अथवा व्युत्पत्ति निर्धारण के प्रयासों के साथ-साथ शब्दों के शुद्ध रूप निर्धारित करने के संदर्भ में भी बहुत-सा नया काम किया गया है। जैसे यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अधिकतर अरबी-फ़ारसी शब्दों के आगे कोष्ठक में उनके वास्तविक और शुद्ध रूप देने का भी कोश में प्रयास किया गया है ताकि कोश प्रयोक्ता उनका मूल उच्चारण भी अवश्य जान लें। इसके साथ बहुत-से शब्दों के सामने अनेक भारतीय भाषाओं के मिलते-जुलते रूपोंवाले शब्द भी दे दिए गए हैं; जैसे इस कोश की दो-एक प्रविष्टियाँ यहाँ उदाहरण स्वरूप देखें; अकेला – वि० [सं० एकाकिन्, गु० एकल एकलु, रा० एकला, पं० इकल्ला], छबीला – वि० [सं० प्रा० छवि, दे० प्रा० छाइल्लो; गु० छबिलो; पं० छबीला; मरा० छबिला] इत्यादि। कोश में निरुक्ति/व्युत्पत्ति संबंधी आए ऐसे प्रयोगों से रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचना संबंधी कार्यानुभवों की परिपक्वता का भी यहाँ विशेष रूप से पता चलता है।

४. मानक हिन्दी कोश में शब्दों की आर्थी विवेचना पर सबसे अधिक ध्यान दिया गया है। अधिकतर महत्त्वपूर्ण शब्दों एवं नित्य व्यवहार में आनेवाले कुछ बहुत ही छोटे तथा साधारण शब्दों जैसे इधर, इतना, उधर, और, कुछ, क्या आदि का भी यथासाध्य ऐसा सर्वांगपूर्ण विवेचन किया गया है जैसा किसी उन्नत भाषा के प्रथम श्रेणी के शब्दकोश में होना चाहिए। जैसे यहाँ उदाहरणार्थ अच्छा, अधिकार, आन, इधर, उग्र, कहाँ आदि ऐसे सैकड़ों-हजारों शब्द मानक हिन्दी कोश में देखे जा सकते हैं। ज्ञात हो कि मानक हिन्दी कोश में इन शब्दों के प्रयोगों के आधार पर अलग-अलग अर्थ विस्तृत

[274] वही, आरम्भिक निवेदन, पृष्ठ - 8

व्याख्याओं द्वारा स्पष्ट किए गए हैं, जिससे वर्मा जी के अनुसार शब्दों का सारा स्वरूप अंग-प्रत्यंग के साथ सामने आ जाता है। ऐसा इसीलिए किया गया है कि पर्याय प्रायः भ्रामक होते हैं और व्याख्याएँ बहुधा निर्भ्रांत तथा स्पष्ट होती हैं।[275] जैसे कि यदि हम 'अच्छा' का अर्थ उत्तम, भला, शुभ अथवा श्रेष्ठ आदि बतला दें और ऐसे ही उत्तम, भला, शुभ, अथवा श्रेष्ठ आदि का अर्थ 'अच्छा' बतला दें तो इससे शब्दार्थ संबंधी जिज्ञासुओं और विशेष रूप से अन्य भाषा-भाषी जिज्ञासुओं की समझ में शायद कुछ भी न आ पाए। किन्तु यदि कहा जाए (क) जो अपने वर्ग में उपकारिता, उपयोगिता, गुण, पूर्णता आदि के विचार से औरों से बढ़कर और फलतः प्रशंसा के योग्य हो; (ख) जो आकार-प्रकार, रचना, रूप आदि के विचार से देखने योग्य या सुंदर हो; (ग) जो प्रसन्न करनेवाला हो; (घ) जो कल्याण या मंगल करनेवाला हो[276] आदि-आदि तो कोई भी ऐसा जिज्ञासु इस एक 'अच्छा' शब्द के अर्थ तथा आशय को समझने में देर नहीं करेगा और उसे 'अच्छा' शब्द की इन व्याख्याओं से उसके अर्थ तथा आशय को समझने में बहुत-कुछ सुविधा भी होगी। अतः इस कोश में उड़ना, आग, कडा, कल, कपट, खड़ा, खोलना, जबान, जान, जी, ज्ञान, दान, धाक, ध्रुव, नाम, निकलना, निरुक्ति, निर्वाण, निर्वेद, पढ़ना, पढ़ाना, प्रकाश, प्रति, प्रतीक, प्रबन्ध, प्रमाण, बैठना, भरना जैसे बहु-प्रचलित तथा महत्त्वपूर्ण हजारों शब्दों का विवेचन बिलकुल नए ढंग से उक्त सिद्धान्तों (शब्द-प्रयोग आधारित व्याख्या) का ध्यान रखकर किया गया है।

५. रामचन्द्र वर्मा के अनुसार अधिकतर संस्कृत कोशों में भी और हिन्दी कोशों में भी बहुत-से शब्दों के बहुत-से अर्थ एकत्र करके वस्तुतः एक साथ रख तो दिए गए हैं किन्तु उनका कोई युक्ति-संगत तथा व्यवस्थित क्रम नहीं लगाया गया है।[277] अतः इस कोश में वर्मा जी द्वारा बहुत से शब्दों के अर्थों का अनेक दृष्टियों से कुछ विशिष्ट तर्क-संगत क्रम लगाने और वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया गया है; जैसे कि कोश में दिए गए अर्थों के विकास क्रम का ध्यान रखना ऐसा ही एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है, यहाँ उदाहरणार्थ अगर हम 'आल्हा' शब्द की प्रविष्टि देखें तो वह 'हिन्दी शब्दसागर' से बहुत कुछ भिन्न है

---

[275] वही, आरम्भिक निवेदन, पृष्ठ - 8

[276] वही, आरम्भिक निवेदन, पृष्ठ - 8-9

[277] वही, आरम्भिक निवेदन, पृष्ठ - 9

अर्थात् इसमें महोबे (बुंदेलखंड) के सुप्रसिद्ध वीर 'आल्हा' का नाम पहले है और वीर छन्द की कृतियों में वर्णित होने वाली कथा का 'आल्हा' नाम पड़ने का अर्थ बाद में दिया गया है। बहरहाल, इसी प्रकार कोश में परिमल, राष्ट्र, रस, संप्रदाय, हिंदी आदि जैसे कुछ अन्य शब्दों के अर्थ-निर्धारण क्रम को भी देखा जा सकता है; जिसके आधार पर ही यह कहा जा सकता है कि कोश में अर्थ-क्रम लगाने का यह काम 'मानक हिन्दी कोश' के हजारों महत्त्वपूर्ण शब्दों में नए ढंग से किया गया है।

६. मानक हिन्दी कोश में बहुत-से महत्त्वपूर्ण शब्दों के अर्थों का बिलकुल नए ढंग और नए सिरे से वर्गीकरण किया गया है। वर्गीकरण के फलस्वरूप अनेक शब्दों की अर्थ-संख्या पहले से बहुत-कुछ बढ़ गई है; जैसे अभी, बाकी, जीवन, पड़ना, प्रकृति आदि ऐसे ही शब्द प्रविष्टियों से उदाहरण हैं, जिनमें दिए गए अर्थ हिंदी शब्दसागर से अधिक हैं। यही नहीं इस नए वर्गीकरण तथा विवेचन के कारण कोश में कुछ स्थानों पर शब्दों के अर्थों की संख्या हिंदी शब्दसागर की तुलना में घट भी गई है; जैसे कि शब्दसागर में 'बात' शब्द की प्रविष्टि के अंतर्गत ३१ अर्थ दिए गए हैं किन्तु मानक हिंदी कोश में यह संख्या २२ रह गई है। ऐसे में अर्थ वर्गीकरण के प्रभाव की यह प्रक्रिया रामचन्द्र वर्मा के कोशों में कोश-रचना कार्य की गतिशीलता को लक्षित करती है।

७. अर्थों के सूक्ष्म अंतर का प्रभाव इस कोश की अनेक प्रविष्टियों में दिए गए शब्दों के पारस्परिक अर्थों में देखा जा सकता है; जैसे इस कोश में 'ऊपर' शब्द की प्रविष्टि के अंतर्गत ही 'पर' शब्द से उसका अंतर भी बतलाया गया है, इसमें यह भी दिखलाया गया है कि आख़िर 'ऊपर' का प्रयोग किन प्रसंगों में होता है तथा 'पर' का प्रयोग किन प्रसंगों में किया जाता है। इसी प्रकार मानक हिन्दी कोश में चाव और चाह, जोखना और नापना, टोटका और टोना, ठंढ और ठंढक, नमूना और बानगी, बहाना और मिस तथा हीला/शंका/सन्देह और संशय आदि शब्दों के भी पारस्परिक सूक्ष्म अंतर तथा उससे संबंधित प्रयोग आदि बतलाए गए हैं। इस दृष्टि से मानक हिन्दी कोश में आर्थी विवेचन का यह कार्य क्षेत्र कई संभावनाओं से भरा हुआ है।

८. हिंदी शब्दसागर में बहुत से मुहावरे एकत्र किए गए थे, जिनका अर्थ-विवेचन भी बहुत कुछ किया गया था; फिर भी उसमें कई प्रकार की त्रुटियाँ रह गई थीं; जिसका उल्लेख प्रामाणिक हिन्दी कोश के उक्त विश्लेषण के समय किया गया था। अतः यहाँ ये कहना

पर्याप्त होगा कि हिंदी शब्दसागर में उस समय मुहावरों, पदों और कहावतों में कोई विशेष अंतर नहीं समझा गया था; सब को प्रायः एक वर्ग में रख दिया गया था। किन्तु मानक हिन्दी कोश में प्रामाणिक हिन्दी कोश की ही तरह ये तीनों अलग-अलग कर दिए गए हैं; जैसे आँख का काँटा, भाड़े का टट्टू, भानमती का पिटारा, रंग में भंग इत्यादि बोल-चाल के पद हैं और जैसा कि रामचन्द्र वर्मा इनके संदर्भ में 'अच्छी हिन्दी' में भी बतला चुके हैं कि इनकी गणना मुहावरों में नहीं होनी चाहिए। बहरहाल, इस कोश में पद शीर्षक से शब्द प्रविष्टियों के अंतर्गत इनका एक अलग वर्ग ही रखा गया है। इसी प्रकार साधारणतः जिस शब्द के कई अर्थ होते हैं, उनका हर एक मुहावरा भी उसी अर्थ के साथ रहना चाहिए जिससे वह सम्बद्ध हो; जैसे कि मुँह में पानी भर आना मुहावरा 'मुँह' के अंतर्गत होना चाहिए 'पानी' के अंतर्गत बिलकुल नहीं। उल्लेखनीय है कि हिन्दी शब्द सागर में ऐसी कुछ भूलें हुई हैं, जिन्हें मानक हिन्दी कोश में सुधारने का पूरा प्रयत्न किया गया है। वस्तुतः प्रविष्टियों के अंतर्गत आने वाले मुहावरों, कहावतों और पदों में शब्दों के निर्धारण, अभिप्राय/आशय, व्याख्या तथा उदाहरण आदि का भी इस कोश में बहुत ध्यान रखा गया है; जिससे मुहावरों/कहावतों/पदों के प्रयोग संबंधी धरातल पर इस कोश की उपादेयता बहुत-कुछ बढ़ गई है।

९. हिंदी शब्दसागर में शब्द-संग्रह और अर्थ-विवेचन का बहुत बड़ा प्राथमिक काम हुआ ही था, उसके साथ कई प्राचीन और कुछ तत्कालीन ग्रन्थों से भी शब्दों के उदाहरणों के संग्रह का कार्य किया गया था। किन्तु इस शब्दसागर में जो कुछ उदाहरण गलत अर्थों के साथ अथवा गलत जगह पर दे दिए गए हैं, ऐसे सभी उदाहरण मानक हिन्दी कोश में ठीक अर्थ के साथ या ठीक जगह पर देने का पूरा प्रयास किया गया है। इसके साथ ही जिस तरह मानक हिन्दी कोश में शब्दों का सारा विवेचन नए ढंग से करने का प्रयास है, उसी तरह इसमें शब्द प्रविष्टियों के अंतर्गत उदाहरण भी कुछ हद तक बिलकुल नए रखने का प्रयास किया गया है। जिस कारण इस कोश में रामचन्द्र वर्मा को स्वयं अथवा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के कोश-कार्यालय में उनके सहायकों को मानक हिन्दी कोश हेतु उदाहरण संगृहीत करने पड़े हैं।[278] बहरहाल, इससे मानक हिन्दी कोश में बहुत कुछ नया और उल्लेखनीय काम हो गया है।

---

[278] वही, आरम्भिक निवेदन, पृष्ठ - 10-11

१०. रामचन्द्र वर्मा ने अपने कोश-कार्यों के अनुभवों से भी अन्यान्य कई महत्त्वपूर्ण संशोधन 'मानक हिन्दी कोश' में किए हैं; जैसे कि शब्द प्रविष्टियों संबंधी व्याकरणिक तथ्यों, सूचनाओं आदि के संबंध में 'हिन्दी शब्दसागर' की तुलना में इसमें अनेक प्रकार के संशोधन तथा सुधार मिल जाते हैं, उदाहरणार्थ क्रियाओं और संज्ञाओं के अंतर्गत अकर्मक-सकर्मक तथा स्त्रीलिंग-पुल्लिंग संबंधी जो भूलें हिन्दी शब्दसागर जैसे कोशों में प्रविष्टियों के अंतर्गत हो गई थीं, उनका भी इसमें संशोधन करने का पूरा प्रयत्न किया गया है; जिस कारण यह तो कहा ही जा सकता है कि मानक हिन्दी कोश के शब्दों की व्याकरणिक समृद्धि पहले से कहीं अधिक बढ़ी है।

११. प्रामाणिक हिन्दी कोश के पहले संस्करण से रामचन्द्र वर्मा ने महत्त्वपूर्ण हिन्दी शब्दों के साथ उनके उपयुक्त अँगरेजी पर्याय देने की जो नई परिपाटी चलाई थी, मानक हिन्दी कोश में वह कार्य और भी अधिक विस्तृत रूप में पूरा हुआ है। यही कारण है कि मानक हिन्दी कोश के पाँचवें खण्ड के परिशिष्ट में अँगरेजी-हिन्दी की एक शब्दावली देने का काम भी किया गया है। इससे यह लाभ होगा कि अँगरेजी जानने वाले बहुत से अन्य भाषा-भाषी भी सहज में यह समझ सकेंगे कि हिन्दी का कौन-सा शब्द अँगरेजी के किस शब्द के स्थान पर चलता अथवा प्रयुक्त होता है। वस्तुतः हिन्दी कोशों में ऐसा अभिनव प्रयोग रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचना संबंधी कार्यानुभवों का ही परिणाम है।

१२. मानक हिन्दी कोश के प्रत्येक खण्ड में दिए गए संकेताक्षरों का स्पष्टीकरण और संस्कृत शब्दों की व्युत्पत्ति के संकेत संबंधी दिशा-निर्देश भी इस कोश को प्रयोक्ताओं की सूचनाओं संबंधित जिज्ञासा की समझ के अनुकूल बनाता है।

१३. रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि कोश-रचना की परम्परा में 'शब्दसागर' और अन्य हिन्दी कोशों की तरह इस मानक हिन्दी कोश की आवश्यकता भी आनेवाली पीढ़ी के लिए उपजीव्य कोश-ग्रन्थ के रूप में बनी रहेगी।

मानक हिन्दी कोश के विश्लेषण में हमने कई बार कोशगत कार्यों के कुछ बिंदुओं पर उसकी तुलना 'हिन्दी शब्दसागर' से करने की कोशिश की है; जिसमें शब्दसागर की कोश-रचना संबंधी कुछ सीमाओं का भी पता चलता है। बहरहाल, ऐसा 'शब्दसागर' को मानक हिन्दी कोश से कमतर दिखाने या कोश-रचना संबंधी भूलों को उजागर कर रामचन्द्र वर्मा की कोशकारिता को पूर्ण रूप से 'महान और निर्दोष' बतलाने के उद्देश्य से नहीं किया

गया है; बल्कि इसका सीधा-सा कारण यह है कि 'मानक हिन्दी कोश' कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा अप्रतिम उदाहरण है। जो रामचन्द्र वर्मा की हिन्दी कोश-रचनाओं से सबसे प्रौढ़, सम्पन्न, प्रामाणिक और उपयोगी बन पड़ा है। अतः मानक हिन्दी कोश का किया गया उपरोक्त विश्लेषण उसकी महत्ता और गुणों को रेखांकित करने के उद्देश्यों का ही एक छोटा-सा प्रयास मात्र है; जिसकी आवश्यकता उपजीव्य ग्रन्थ के रूप में बनी रहेगी।

रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं में शामिल अंतिम रचना के रूप में 1968 ई० में प्रकाशित पर्यायकी कोश-ग्रन्थ 'शब्दार्थ-दर्शन' का नाम मिलता है; जिसमें हिन्दी-अँगरेजी के मिले-जुले २६९ शब्द-वर्गों का तात्त्विक और वैज्ञानिक विवेचन तथा पर्यायकी की दृष्टि से कुल ९०० शब्दों के सूक्ष्म अर्थ-भेदों का स्पष्टीकरण किया गया है; जिसका संशोधन तथा परिवर्धन बदरीनाथ कपूर ने 'शब्दार्थ-विचार कोश' के रूप में किया है। यह पूरी पुस्तक दो खंडों में विभक्त है; जिसके पहले खंड में विषय-प्रवेश परिचय के साथ शब्दार्थ विवेचन के विभिन्न पहलुओं, पर्याय-विज्ञान या पर्यायकी, पर्यायकी का महत्त्व आदि के अतिरिक्त अर्थ-विवेचन की कला पर सूक्ष्मता से विचार-विश्लेषण किया गया है तथा दूसरे खंड में दी गई पर्यायकी प्रविष्टियों की पर्याय-मालाओं का तुलनात्मक और व्याख्यात्मक विवेचन किया गया है। बहरहाल, इस पर्यायकी कोश के अंत में तीन परिशिष्ट भी दिए गए हैं; परिशिष्ट 'क' में पर्यायकी प्रविष्टियों से छूटे हुए प्रति-अभिदेशक शब्द, परिशिष्ट 'ख' में भूल सुधार और परिशिष्ट 'ग' में प्रयोक्ताओं की सहूलियत के लिए एक अँगरेजी-हिन्दी शब्दावली दी गई है, जो 'शब्दार्थ-दर्शन' में की पर्यायकी प्रविष्टियों पर आधारित है।

हिन्दी पर्यायकी कोश के रूप में 'शब्दार्थ-दर्शन' शब्दों के अर्थसहित विवेचन और उनके सूक्ष्म भेदों-उपभेदों के तुलनात्मक निरूपण की दृष्टि से हिन्दी का एक विशिष्ट और अपने ढंग का संभवतः अकेला ग्रन्थ है। रामचन्द्र वर्मा ने इसमें समानार्थक समझे जाने वाले पर्यायकी शब्दों का विवेचन अत्यंत वैज्ञानिक ढंग से किया है। समानार्थक शब्दों के अर्थों में मूलतः समानता रहने पर भी उनके अभिप्रायों या आशयों में जो थोड़ी-बहुत भिन्नताएँ होती हैं, उन्हीं को ध्यान में रखते हुए वर्माजी ने इस अपूर्व ग्रन्थ की रचना की है; जिसमें कई समानार्थक/पर्यायकी शब्द-समूहों को व्यवस्थित क्रम से इस प्रकार विवेचित-विश्लेषित किया गया है कि उनके अभिप्रायों के अंतर स्वतः स्पष्ट होते जाते हैं। अतः यह कार्य इस

उद्देश्य से किया गया है कि अध्ययनशील प्रयोक्ता शब्दों के ठीक-ठीक अभिप्राय समझकर उनका प्रयोग तो करें ही, साथ ही उनमें शब्दों के अंतर समझने की प्रवृत्ति भी जाग्रत हो।[279] बहरहाल, ऐसे में उदाहरणार्थ यहाँ 'शब्द-दर्शन' की पर्याय-मालाओं में से एक-आध प्रविष्टि भी देख लेनी चाहिए ताकि यथा उदाहरण हम उसके महत्त्व और रचनात्मक उद्रेक को समझ सकें; जैसे कि ५३ प्रविष्टि में देखें तो आलोचना (Criticism), समालोचना और समीक्षा (Review) जैसी समानार्थक शब्दों की पर्यायकी को रखा गया है। रामचन्द्र वर्मा के अनुसार इस वर्ग के शब्द वस्तुतः अभिधार्थ की दृष्टि से बहुत कुछ एक से ही हैं; इसीलिए प्रयोक्ता प्रायः इनमें से एक का प्रयोग दूसरे के स्थान पर कर जाते हैं। किन्तु वास्तव में इन सभी शब्दों के भावार्थ में बहुत कुछ सूक्ष्म अन्तर है, जिनका ध्यान रखना प्रयोक्ता के लिए आवश्यक है। जैसे कि आलोचना का एक मूल अर्थ देखना और दूसरा अर्थ चिन्तन, मनन या विचार करना है, किन्तु आजकल इसका प्रयोग किसी व्यक्ति के कथन, निश्चय या विचार के दोषों का उल्लेख करते हुए उसका विरोध करने या उससे अपनी असहमति व्यक्त करने के लिए होता है; समालोचना का मूल अर्थ अच्छी तरह देखना और ध्यानपूर्वक विचार करना है, परन्तु आजकल इसका प्रयोग किसी कलात्मक, वैज्ञानिक अथवा साहित्यिक कृति और रचना के संबंध में विचारपूर्वक कही जाने वाली बातों और सम्मतियों के संबंध में होता है तथा समीक्षा तो बहुत कुछ वही है जो 'समालोचना' है, फिर भी यह उससे कुछ भिन्न है अर्थात् समालोचना में तो समालोचक अपने निजी विचार भी प्रकट करता है पर समीक्षा में यह बात नहीं होती क्योंकि समीक्षा वस्तुतः 'समालोचना' से भिन्न समीक्षक के आंकलन पर आधारित कुछ-एक विशिष्ट बातों का संक्षिप्त विवरण मात्र होती है।[280] इसी तरह के कई पर्यायकी कोश-ग्रन्थों में कोशकार द्वारा इन समानार्थक प्रयुक्त शब्दों के सूक्ष्म अंतरों को रेखांकित किया जाता रहा है और रामचन्द्र वर्मा के इस 'शब्दार्थ-दर्शन' पर्यायकी कोश में भी यही किया गया है; जिसके विश्लेषण का यहाँ हमने भी मात्र एक उपरोक्त प्रयास भर किया है। कह सकते हैं कि हिन्दी में आज भी ऐसे उत्कृष्ट एवं महत्त्वपूर्ण पर्यायकी कोश-ग्रन्थों की अनिवार्य आवश्यकता

---

[279] रामचन्द्र वर्मा (मूल लेखक), बदरीनाथ कपूर (संशोधन तथा परिवर्धन), *शब्दार्थ-विचार कोश*, राजपाल एण्ड सन्ज़, संस्करण - 2015 ई०, भूमिका, पृष्ठ - 3

[280] रामचन्द्र वर्मा, *शब्दार्थ-दर्शन*, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण - 1968 ई०, पृष्ठ - 219-220

बनी हुई है; जिससे हिन्दी कोश-रचना की परम्परा के क्षेत्र में उक्त कोशकार्यों की विशिष्टता का तक़ाज़ा भी अब तक बना हुआ है।

यहाँ कहना न होगा कि उपरोक्त उल्लिखित कोश-रचनाओं के विश्लेषण का जो भी थोड़ा-बहुत प्रयास किया गया है, वह रामचन्द्र वर्मा के ही कुछ-एक अन्य उल्लेखनीय कोश-ग्रन्थों जैसे सन् 1941 ई० में प्रकाशित आनंद शब्दावली अथवा सन् 1948 ई० में प्रकाशित शब्दार्थ-विवेचन अथवा सन् 1965 ई० में प्रकाशित शब्दार्थ-मीमांसा अथवा सन् 1967 ई० में प्रकाशित शब्दार्थक ज्ञानकोश[281] याकि इन्हीं उपरोक्त कोश-रचनाओं के तर्ज़ पर निर्मित एक अन्य कोश-ग्रन्थ जिसका की प्रकाशन वर्ष ज्ञात नहीं हो सका है और जिसे

[281] यहाँ यह तथ्य भी ज्ञात हो कि इस शब्दार्थक ज्ञानकोश का प्रकाशन सन् 1967 ई० में बनारस के शब्दलोक प्रकाशन से हुआ था। रामचन्द्र वर्मा का यह कोशकार्य हिन्दी अर्थ-विज्ञान और पर्यायकी की आधार शिला पर ही निर्मित हुआ है। इस प्रस्तुत कोश-ग्रन्थ को रामचन्द्र वर्मा ने निम्नलिखित तीन भागों में विभक्त किया है, यथा उल्लेख देखें – १. शब्द और अर्थ, २. अर्थ-विवेचन की कला एवं ३. तुलनात्मक और व्याख्यात्मक विवेचन; जिसमें मूल 'शब्दार्थक ज्ञानकोश' ग्रन्थ के भाग ३. के अंतर्गत दिया गया है। इसके तीन परिशिष्टों में (क) छूटे हुए शब्द (ख) हिन्दी अँगरेजी शब्दावली (ग) अँगरेजी हिन्दी शब्दावली भी दी गई है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस कोश में 125 प्रमुख शब्द-मालाओं के अंतर्गत लगभग 450 शब्दों की अर्थ विषयक श्रेणियों की बहुत सूक्ष्मता से विवेचना की गई है अर्थात् इस कोश में शब्दों का सूक्ष्म आर्थी विवेचन बड़ी कुशलता से हुआ है और कई सवर्गीय शब्दों से भी उनमें स्पष्ट अन्तर बतलाया गया है। अतः यह कोश-ग्रन्थ हिन्दी शब्द पर्यायकी के क्षेत्र में किए गए कुछ आरंभिक प्रयासों में से एक है; जिसमें रामचन्द्र वर्मा के इसी प्रकार के कार्यों की श्रेणी में शामिल शब्द-साधना के 1300 शब्द और शब्दार्थ मीमांसा के 2100 शब्दों की सूक्ष्मता से की गई आर्थी विवेचना एवं सवर्गीय शब्दों से बतलाए गए उनके अन्तर भी सहयोगी रूप से कुछ और विशेष बन जाते हैं। बहरहाल, इस शब्दार्थक ज्ञानकोश की रचना का उद्देश्य शब्द-साधना और शब्दार्थ-मीमांसा नामक पर्यायवाची कोशों की कुछ-एक कमियों की पूर्ति करना भी था। चूँकि कहीं न कहीं उक्त दोनों पुस्तकों में ही शब्दों का वर्गीकरण उतना वैज्ञानिक और व्यवस्थित नहीं था, जितना की होना चाहिए था। अंततः शब्दार्थक ज्ञानकोश का स्वरूप भी शब्दकोश-सा रखने का प्रयास किया गया है, और इसमें शब्द अक्षर क्रम से ही रखे गए हैं। यही कारण है कि इस कोश की शब्द-मालाओं में भले ही कई-कई शब्द आए हों किन्तु उनमें शामिल शब्दों को भी वस्तुतः अक्षरक्रम से ही यथास्थान रखने का प्रयास किया गया है। ऐसे में शब्द और अर्थ, पर्यायकी, अर्थ-विवेचन की कला तथा पर्यायवाची शब्दों की सूक्ष्मता से किए गए तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक विशद विवेचन की दृष्टि से भी यह कोश ग्रन्थ अपने प्रकार का एक अनुपम उदाहरण बन जाता है।

राजकीय कोश[282] का नाम दिया गया है इत्यादि के उल्लेख के बिना यह अध्ययन कुछ हद तक अधूरा ही रह जाएगा; चूँकि इन कोश-ग्रन्थों के लेखन-सम्पादन के साथ प्रस्तुति आदि का कार्य भी स्वयं रामचन्द्र वर्मा ने ही किया था, किन्तु जो इस शोध अध्ययन के दौरान कहीं से उपलब्ध नहीं हुए।

रामचन्द्र वर्मा की उपरोक्त कोश-रचनाओं के उक्त विश्लेषण के संदर्भों में यहाँ यह उल्लेख करना भी आवश्यक लगता है कि पहली बार प्रकाशन के बाद प्रामाणिक हिन्दी कोश के दो संस्करण निकले थे; तभी से वर्मा जी हिन्दी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग) द्वारा संकलित 'मानक हिन्दी कोश' के संपादन कार्य में लग गए। अतः इस कोश-कार्य के कारण 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' इसी के भीतर समाहित हो गया था, जिसका प्रकाशन पूरे पाँच खण्डों में पूरा हुआ। यद्यपि इसमें स्तरों की विविधता बहुत अखरती है। किन्तु यहाँ

---

[282] आरक्षिक शब्दावली और स्थानिक परिषद् शब्दावली की तरह ही उक्त 'राजकीय कोश' का प्रकाशन भी काशी-नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी से ही होना तय था, जिसका प्रकाशन वर्ष भी संभवतः आरक्षिक शब्दावली और स्थानिक परिषद् शब्दावली के आस-पास का ही रहा होगा। ऐसे में यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रामचन्द्र वर्मा ने राजकीय क्षेत्रों, न्यायालयों आदि में प्रयुक्त होने वाले अँगरेजी और अरबी-फ़ारसी शब्दों के समांतर पर्यायवाची हिन्दी शब्दों के एक विपुल भण्डार की आवश्यकता इसलिए महसूस की थी क्योंकि तत्कालीन संयुक्त प्रान्त, बिहार तथा मध्य प्रान्त आदि में सरकार द्वारा हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकृत कर लिया गया था। वस्तुतः इन अर्थों में रामचन्द्र वर्मा एक दूरदर्शी व्यक्ति थे कि उन्होंने कोशकारिता के क्षेत्र में ऐसे कोशों के निर्माण के लिए आरंभ में ही रचनात्मक पहल और प्रयत्न करना कुछ हद तक शुरू कर दिया था; जिसमें तत्कालीन रायबरेली के सिविल जज एवं संयुक्त प्रांतीय सरकार द्वारा नियुक्त विशेष कार्याधिकारी गोपालचन्द्र सिंह का सहयोग भी रामचन्द्र वर्मा को बराबर मिल रहा था। ऐसे में संस्कृत, अँगरेजी और हिन्दी के मर्मज्ञ तथा विविध विषयों के विद्वान सदस्यों के एक परामर्शदातृ-मण्डल ने भी इन संपादकों को अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया था। बहरहाल, इन कोशों में विदेशी शब्दों के हिन्दी पर्याय निश्चित करने में इसके संपादकों ने संस्कृत साहित्य के अनेक प्राचीन ग्रन्थों से भी सहायता ली थी और इस बात का भी विशेष ध्यान रखा था कि हिन्दी पर्याय ऐसे हों जो सरल होने के सिवा मूल अँगरेजी शब्द का अर्थ और भाव भी पूर्णतया व्यक्त कर सकें। ["उत्तर प्रदेश की सरकार के प्रतिनिधि सिविल जज श्री गोपाल चन्द्र सिंह के साथ मैंने नागरी-प्रचारिणी सभा के लिए ५-६ वर्ष पहले एक राजकीय कोश बनाया था, जिसकी पूरी हस्त-लिखित प्रति प्रेस में भेज दी गई थी और जिसके ५-६ फ़र्मे छप भी गए थे; पर जो कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में व्यक्तिगत राग-द्वेष की वेदी पर बलि चढ़ा दिया गया था!" – रामचन्द्र वर्मा, *कोश-कला*, साहित्य रत्नमाला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण - 1952 ई०, कोशकार के गुण, पृष्ठ - 17 इस उक्त प्रसंग पर टिप्पणी करते हुए बदरीनाथ कपूर यह भी बतलाते हैं कि अब 'राजकीय कोश' की उस मुद्रणीय प्रति का भी कहीं पता नहीं है। देखें – रामचन्द्र वर्मा (मूल लेखक), बदरीनाथ कपूर (संशोधन एवं परिवर्धन), *कोश-कला*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीन संशोधित संस्करण - 2007 ई०, कोशकार के गुण, पृष्ठ - 32]

यह उल्लेखनीय तथ्य है कि स्वयं रामचन्द्र वर्मा आधुनिक कोश-रचना की परम्परा में हिन्दी के बड़े पुराने कोशकार ठहरते हैं । जिन्हें वस्तुतः कोश-कार्यों में लगभग ६० वर्ष का अनुभव था । पहले उन्होंने हिंदी शब्दसागर के संपादक-मण्डल में कार्य किया; फिर संक्षिप्त शब्दसागर आदि की श्रेणी में कई उत्कृष्ट कोश संपादित किए; जिसके बाद वे महत्त्वपूर्ण रूप से पर्याय कोशों अर्थात् पर्यायकी आदि पर भी लिखते-पढ़ते रहे । किन्तु इस 'मानक हिन्दी कोश' कार्य को पूरा करते हुए अपनी वृद्धावस्था में वे उतना परिश्रम नहीं कर सके, जितना इस भारी कोश के लिए अपेक्षित था । अतः जितना कुछ 'प्रामाणिक' कोश का 'मानक' कोश में आ गया, वह तो सुंदर है । उतने अंश का शब्दचयन, व्युत्पत्ति और अर्थों की व्यवस्था तथा पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या संतुलित और वैज्ञानिक है, किन्तु शेष अंश जो सम्मेलन में तैयार हुआ, त्रुटिपूर्ण रह गया है ।[283] ऐसे ही रामचन्द्र वर्मा ने कई पारिभाषिक और मानक अंग्रेजी शब्दों की हिन्दी पर्यायकी निर्माण का कार्य भी बड़ी तत्परता से किया है । हरदेव बाहरी इस पहलू पर अपनी बात रखते हुए यह उल्लेख करते हैं कि "अभी तक हमारे कोश साहित्य में अंग्रेजी स्तर के पर्याय-कोशों का नितांत अभाव है । रामचन्द्र वर्मा ने इस दिशा में अत्यंत स्तुत्य कार्य किया है – उनके 'शब्द साधना', 'शब्दार्थ मीमांसा' और 'शब्दार्थ ज्ञानकोश' में पर्यायों के सूक्ष्म भेदों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है और कुल मिलाकर लगभग 3500 शब्दों का प्रयोग और अर्थ की दृष्टि से उनका बहुत ही विचारपूर्ण वैज्ञानिक अध्ययन हुआ है ।"[284] बहरहाल, रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के विश्लेषण से जुड़ा यह अध्ययन उक्त संदर्भों में कोश-रचना की परम्परा के कई आयामों से जुड़ जाता है । रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचना संबंधी अनुभवों का सारांश और उनकी कोश-रचनाओं के विश्लेषण से जुड़े बहुत से तर्कसम्मत मत 'कोश-कला' नामक पुस्तक में भी प्रसंग अनुकूल जहाँ-तहाँ मिल जाते हैं । अतः इस संदर्भ में यहाँ इतना ही कहना है कि रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के विश्लेषण के संबंध में 'कोश-कला' भी एक आधार पुस्तक मानी जा सकती है ।

आज हम यह कह सकते हैं कि कोशों के आधुनिक स्वरूप में कोश कण्ठस्थ करने की धारणा वस्तुतः अब बहुत हद तक टूट-सी रही है और मौखिक कोश परम्परा का स्थान

---

[283] हरदेव बाहरी, *हिंदी कोश-कार्य*, देवेन्द्रदत्त नौटियाल (संपादक), *भाषा (त्रैमासिक)*, वही, पृष्ठ - 158

[284] वही, पृष्ठ - 159

आधुनिक मुद्रण तकनीकों ने ले लिया। बहरहाल, इस नए स्वरूप में आजकल डिजिटल माध्यम से भी छपाई वाले कोशों को चुनौती मिलने लगी है। ऐसे में रामचन्द्र वर्मा के इन कोशों की महत्ता कोश-रचनाओं के विश्लेषण के अवलोकन की दृष्टि से आज और अधिक बढ़ जाती है। किन्तु जैसा कि कहते हैं कि कोई भी कृति चाहे कितनी ही सावधानी से क्यों न तैयार की गई हो दरअसल वह भी – सर्वथा निर्दोष नहीं होती।[285] अतः कोशकारिता के विषय में यह कहना ठीक ही है कि समय के साथ कोश-रचनाओं का संशोधन एवं परिवर्द्धन होते रहना चाहिए ताकि कोश-ग्रन्थों की समकालिक उपादेयता बनी रह सके। बहरहाल, उल्लेखनीय है कि रामचन्द्र वर्मा के कोशों के संदर्भ में इस तरह का कार्य करने का प्रयास उनके छोटे भानजे बदरीनाथ कपूर ने किया है; जो आज भी इनके कोशों को उपजीव्य और संदर्भ ग्रन्थों के रूप में परिगणित करने के लिए हमें बाध्य कर देता है।

****

[285] वामन शिवराम आप्टे, *संस्कृत-हिन्दी कोश* ('दी स्टुडेंट्स संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी' का अनूदित हिन्दी संस्करण), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण - 2012 ई०, भूमिका (कोशकार का प्रथम प्राक्कथन), पृष्ठ - 8

पाँचवाँ अध्याय

हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा का योगदान

पाँचवाँ अध्याय

हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा का योगदान

पाँचवें अध्याय की पीठिका

यह अध्याय पिछले अध्यायों की पृष्ठभूमि में रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचना की प्रस्तावित भूमिका को हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में योगदान विषयक अध्ययन से जोड़ने का प्रयास करता है। अतः यहाँ हम हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा द्वारा किए गए कोश-कार्यों की सम्पूर्णता से परिचित होने और हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में उनका क्या योगदान है ? इसके अध्ययन एवं आकलन का एक छोटा-सा प्रयास करेंगे तथा जिसमें कोश एवं अन्य ज्ञानानुशासनात्मक साहित्योपांगों के पारस्परिक संबंध का हेतु; कोश, कोशकार, कोशकार्य/कोश-रचना का योगदान विषयक आयाम; हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा का नवाचार; हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा की पुनर्कल्पना; हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा द्वारा अवधारणा का विस्तार और हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा की स्थिति जैसे कुछ विविध कोशगत पक्षों की भी चर्चा करेंगे। बहरहाल, हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा का योगदान इस शोध अध्ययन का हिस्सा इसलिए भी है कि इस अध्याय के माध्यम से हम हिन्दी कोश-रचना के क्षेत्र में निरंतर अनेक दशकों तक सक्रिय रहने वाले रामचन्द्र वर्मा की व्यक्तिगत भूमिका को भी परखने का संभवतः थोड़ा-बहुत प्रयास कर सकेंगे।

कोश एवं अन्य ज्ञानानुशासनात्मक साहित्योपांगों के पारस्परिक संबंध का हेतु

कोश एवं कोशकार के रचनात्मक योगदान की परम्परा का किस प्रकार अध्ययन किया जाए ? यह जिज्ञासा आधुनिक कोश-विज्ञान और कोश-रचना क्षेत्र की आधारभूत संकल्पनाओं में शामिल किया जाता रहा है। अतः यहाँ से आगे हम कोश एवं अन्य ज्ञानानुशासनात्मक साहित्योपांगों के पारस्परिक संबंध के हेतुओं के उल्लेख का अवश्य ही

कुछ-एक प्रयास करेंगे। जैसे कि यहाँ हम कोश और इतिहास विषय को लें तो कहना न होगा कि शब्दों की भी व्युत्पत्ति अथवा संदर्भ विषयक कोई न कोई इतिहास होता ही है; इसी तरह कोश एवं समाजशास्त्र को लें तो कोशों में प्रयुक्त शब्दों के सामाजिक-सांस्कृतिक स्वरूप पर बल देना ही होगा, जिसका की समाजशास्त्र से भी कहीं न कहीं पारस्परिक संबंध होता है, यह तो हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा; इससे कुछ और आगे अगर हम कोश तथा मनोविज्ञान जैसे विषय को लें तो ऐसे में यहाँ यह कहना भी उचित ही होगा कि कोश में शब्दों के कलात्मक प्रयोग से जुड़ी अधिकांश बातें वस्तुतः मनोविज्ञान विषयक क्षेत्र से ही संबंधित कही जा सकती हैं; यही नहीं कोश और काव्य जैसे ऐतिहासिक रूप से पारस्परिक संबद्ध विषय को भी लें तो यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि मम्मट तथा भामह ने वस्तुतः अर्थ सहित शब्द को ही तो काव्य माना है; अब अगर यहाँ हम कोश और भाषाविज्ञान जैसे एक-दूसरे से जुड़े हुए पारस्परिक अंतरानुशासनिक विषय को लें तो यह कह सकते हैं कि कोशों में शब्दों के मूल अर्थ और व्युत्पत्ति तथा उनका रूपात्मक एवं प्राविधिक प्रयोग इत्यादि की दृष्टि से किए गए अध्ययन-विवेचन की ससंबद्ध प्रस्तुति को हमें वस्तुतः कुछ हद तक भाषा-विज्ञान के अंतर्गत ही अंतर्निहित समझना चाहिए; इसके साथ कोश एवं व्याकरण जैसे कुछ-एक विषय क्षेत्र के संदर्भ में तो हमें यहाँ यह कहना ही होगा कि इन दोनों शास्त्रों का पारस्परिक अन्योन्याश्रित संबंध अनादिकाल से चलता चला आ रहा है। ऐसे में प्रसंगवश यहाँ यह भी ज्ञात होना ही चाहिए कि स्वयं अंग्रेज़ी भाषाशास्त्री स्वीट के मतानुसार व्याकरण 'सामान्य तथ्य' अर्थात् जेनरल फ़ैक्ट्स और कोश 'विशिष्ट तथ्यों' अर्थात् स्पेशल फ़ैक्ट्स का प्रतिपादन करता है[286] यही कारण है कि व्याकरण और कोश का संबंध भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में बड़े महत्त्व का विषय रहा है। उदाहरण स्वरूप उल्लेखनीय है कि ब्लूमफील्ड कोश और व्याकरण को भाषा वैज्ञानिक वर्णन के दो अंग मानते हैं और कहते हैं कि दरअसल कोश व्याकरण का एक परिशिष्ट होता है। मूल अनियमितताओं की एक सूची। बहरहाल, ब्लूमफील्ड के इस वक्तव्य का आधार संभवतः यह तथ्य भी है कि व्याकरण के अन्तर्गत भाषा के समस्त नियमित रूपों और नियमित अर्थ वाले रूपों का वर्णन मिलता है और कोश में भाषा के अनियमित रूपों और अनियमित

---

[286] अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, भूमिका, पृष्ठ - 27 पर उल्लिखित हुए संदर्भ अर्थात् आट्टो जेस्पर्सन : दि फ़िलॉसॉफ़ी ऑव् ग्रामर, पृष्ठ - 31-33 से उद्धृत अंश को देखें।

अर्थों का ।[287] अतः कोश और व्याकरण का मूलभूत अन्तर उनकी प्रकृति पर आश्रित है; जिसमें इन दोनों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति के आधार पर कोश को मुक्त वर्ग (Open set) और व्याकरण को बद्ध वर्ग (Closed set) के अंतर्गत निर्धारित हुआ कह सकते हैं ।[288] जिसके उक्त महत्त्व को इन्हीं कारणों से हमें भी स्वीकार करना पड़ेगा । इस तरह कोश एवं उपरोक्त कई अन्य ज्ञानानुशासनात्मक साहित्योपांगों के पारस्परिक संबंध का हेतु वस्तुतः ऐसे निर्धारित है कि जिसका स्वरूप कोश-रचनाओं के योगदान विषयक किसी भी अध्ययन से अवश्य ही जोड़ा जा सकता है ।

बहरहाल, अचलानन्द जखमोला ने यह तो स्पष्ट किया ही है कि वस्तुतः किन्हीं भी कोश-रचनाओं के योगदान विषयक तथ्यों के अध्ययन में जिस शब्द की सिद्धि किसी भी शब्द-शास्त्रीय वचन से नहीं होती, उसका साधुत्व केवल कोश-बल से ही अभ्युपगत (स्वीकृत) होता जान पड़ता है ।[289] ऐसे में रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं का हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में योगदान विषयक अध्ययन भी उनके कोशों से आरंभ होकर ही आगे बढ़ाया जा सकता है । जिसके विषय में उसके कोशकार की महत्ती भूमिका की पड़ताल, कोश एवं व्याकरण, कोश तथा भाषा का मानकीकरण और कोश का आधुनिक संदर्भ विषयक कई महत्त्वपूर्ण योगदान जिस बात पर निर्भर करते हैं, वह यह है कि वस्तुतः कोशकार को कोशों की शब्द-परम्परा का ज्ञान तो हो ही साथ में उसे देशकाल सहित मानव मन की सभी शब्द-प्रयोगकालीन आवश्यकताओं की भी भरपूर जानकारी अवश्य ही होनी चाहिए ।[290] अतः ऐसे में यहाँ यह कहना न होगा कि वस्तुतः हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा का योगदान विषयक अध्ययन भी इन्हीं उक्त पहलुओं पर निर्भर करता है ।

ऐसे में यह एक तथ्य यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि अचलानन्द जखमोला के अनुसार संदर्भ-ग्रन्थों के प्रतिनिधि आधुनिक कोशों का किस शास्त्र या विज्ञान से संबंध नहीं है, यह बतलाना भी असम्भव ही है । तत्ववेत्ता (मेटाफिज़िशियन्स) इस तथ्य पर

---

[287] राम अधार सिंह, *कोश विज्ञान : सिद्धांत एवं प्रयोग*, वही, अध्याय 1, शब्दार्थ विज्ञान और कोश विज्ञान, पृष्ठ - 10

[288] वही, अध्याय 1 - शब्दार्थ विज्ञान और कोश विज्ञान, पृष्ठ - 11

[289] अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, भूमिका, पृष्ठ - 28

[290] हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), *कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग*, वही, आमुख, पृष्ठ - ग

एकमत हैं कि कोई भी बौद्धिक क्रिया शब्दों के माध्यम बिना सम्पन्न नहीं हो सकती है। अतएव ज्ञान की प्रत्येक शाखा के क्षेत्र में कोशों का पारस्परिक योगदान असंदिग्ध है।[291] क्या यह बातें रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के विषय में भी कही जा सकती हैं ?

वस्तुतः हमारे लिए यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय हो जाता है कि रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं तथा हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में उनके योगदान का अधिकांश उपरोक्त अवधारणा से कुछ न कुछ अवश्य ही सुसंगत रूप से संबद्ध हो जाता है। अतः ऐसे में यहाँ हम हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा के योगदान के माध्यम से यह जानने का भी प्रयास कर सकते हैं कि कोश एवं अन्य ज्ञानानुशासनात्मक साहित्योपांगों के पारस्परिक संबंध के हेतु के रूप में रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं का हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में किस प्रकार का योग या सहयोग रहा है अथवा रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं से हिन्दी कोश-रचना की उक्त परम्परा में क्या कोई नयापन आया है ? अर्थात् कहना न होगा कि यहाँ हमारे लिए वस्तुतः यह जानना भी इस शोध अध्ययन की दृष्टि से आवश्यक है कि स्वयं रामचन्द्र वर्मा का हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में क्या योगदान है और उनकी कोश-रचनाओं के न होने की स्थिति में आख़िर हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में क्या कुछ अपूर्णता बनी रह सकती थी ? अब यहाँ से आगे हम मुख्य रूप से इन्हीं बातों की ओर अपना यह अध्ययन आगे बढ़ाने का प्रयास करेंगे।

कोश, कोशकार एवं कोशकार्य/ कोश-रचना का योगदान विषयक आयाम

पूर्व में यह कहा जाता रहा है कि वस्तुतः कोई भी "कोशकार्य उस अवस्था में अत्यंत कठिन कार्य है जब हम कोश से कोश नहीं बनाते। शब्द, अर्थ, व्याकरण और व्युत्पत्ति के लिये सीधे लोक, साहित्य और शास्त्र से जुडते हैं। विभिन्न स्रोतों से शब्दसंग्रह करते हैं। कोश की प्रकृति के अनुसार शब्दों का वर्गीकरण करते हैं। फिर उनके अर्थों की ओर उन्मुख होते हैं।"[292] फिर भी मानव ज्ञान की प्रगति के साथ-साथ अन्य विषयों की तरह कोशों की उपयोगिता में भी उल्लेखनीय रूप से वृद्धि हुई है। ऐसे में किसी भी भाषा के कोश अब मात्र

---

[291] अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य*, वही, भूमिका, पृष्ठ - 24-25 पर उल्लिखित हुए संदर्भ पी॰ एम॰ राज़ेट : दि इण्टरनेशनल थेसारस, भूमिका, पृष्ठ - 9 देखें।

[292] हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), *कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग*, वही, आमुख, पृष्ठ - ग

संदर्भ-ग्रन्थ ही नहीं रह गए हैं। उनके प्रयोग के कई नए आयाम भी सामने आए हैं अर्थात् आज भाषा शिक्षण, भाषा नियोजन, तकनीकी शब्दावली का गठन और उसकी सामग्री के निर्माण इत्यादि के विभिन्न क्षेत्रों में भी कोशों का उपयोग दिन प्रति दिन और अधिक बढ़ रहा है।[293] वस्तुतः यही कारण है कि दुनिया भर में भाषायी विद्वानों द्वारा "कोशकार को भाषा का इतिहासकार तो माना ही गया है, उसे भाषा का समर्थ द्रष्टा और उसके प्रयोग का सक्षम समीक्षक भी कहा गया है।"[294] अतः ऐसे में किसी भी कोशकार का यह कर्तव्य होता है कि वह किसी भी शब्द के स्वरूप और अर्थ का कोश में यथातथ्य निरूपण, विश्लेषण और विवेचन कुशलतापूर्वक प्रस्तुत करे।

इस तरह हम देखते हैं कि बहुत सारे कोशों का निर्माण वस्तुतः भाषा के मानकीकरण के लिए ही किया जाता है किन्तु ऐसे तो "इसमें सन्देह नहीं कि कोश भाषा के मानकीकरण में महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं लेकिन इससे यह निष्कर्ष निकालना अत्यन्त भ्रान्तिपूर्ण होगा कि कोशकार मानकीकरण जानबूझ कर करता है। होता यह है कि लोग कोश को अनेक बार सत्य, उक्ति आदि के लिए देखते हैं और धीरे-धीरे ये ही रूप/अर्थ मान्यता प्राप्त कर लेते हैं।"[295] बहरहाल, उल्लेखनीय है कि इन्हीं उक्त कारणों से किसी भी कोश, कोशकार और कोशकार्य/कोश-रचना का योगदान विषय आधार कुछ हद तक उपरोक्त पहलुओं के साथ भी संबद्ध हो जाता है। किन्तु जैसा कि हम सब यह जानते ही हैं कि कोशकार्य अथवा कोश-रचना यद्यपि बड़ा ही कष्ट साध्य और कठिन अथवा कुछ लोगों के अनुसार अत्यन्त नीरस भी होता है, फिर भी अगर सूक्ष्मता के साथ देखा और समझा जाए तो कोश का कार्य बड़ा ही सरस, दिलचस्प और कुछ लोगों के लिए उत्तेजनाजनक तथा उमंगपूर्ण भी होता ही है।[296] जिस ओर आकृष्ट होने पर कोई भी कोशकार आजीवन कोश-रचना की संगत से एक अटूट संबंध बना लेता है अर्थात् ऐसे में किसी भी कोशकार की कोश-रचनाओं और स्वयं उसके कार्यों का योगदान वस्तुतः अपनी संपूर्णता में अध्ययन करने की संभावनाओं के साथ कई नए अवसरों से भी जुड़ जाता है।

---

[293] राम अधार सिंह, *कोश विज्ञान : सिद्धांत एवं प्रयोग*, वही, शब्दकोश : विविध नाम - विविध प्रयोग, पृष्ठ - xii

[294] वही, आमुख, पृष्ठ - v

[295] वही, शब्दकोश : विविध नाम - विविध प्रयोग, पृष्ठ - xii

[296] वही, शब्दकोश : विविध नाम - विविध प्रयोग, पृष्ठ - xi

बहरहाल, ऐसे तो यह स्पष्ट ही कहा गया है कि हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में योगदान स्वरूप कोशगत संशोधन-परिवर्द्धन अथवा संपादन करने की आवश्यकता से जुड़ा यह सब कार्य किसी एक आदमी के द्वारा पूरा हो जाए वस्तुतः यह तो आज संभव नहीं है किन्तु क्योंकि स्वयं रामचन्द्र वर्मा ने कई दशकों तक सक्रिय रह कर इस प्रकार के किए गए कुछ उल्लेखनीय कोश-रचना कार्यों से क्या ऐसा कोई बहुमूल्य योगदान दिया है, यह जानने का प्रयास करना भी यहाँ महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

ऐसे आज यहाँ हम कह सकते हैं कि आधुनिक कोश-विज्ञान और कोश-रचना के प्रभाव में शब्दकोशों के बदलते नए आयामों ने आधुनिकता भले ही प्राप्त की हो किन्तु रामचन्द्र वर्मा के कोशों में कुछ सैद्धांतिक पक्षों को पारम्परिक रूप से ही अपनाया गया है। फिर भी, यहाँ यह एक बात अवश्य उल्लेख योग्य है जो किसी अन्य कोश-रचना के संदर्भ में कही गई है किन्तु रामचन्द्र वर्मा के कोश-रचना विषयक आयाम से भी वस्तुतः जुड़ जाती है; वह यह कि अगर किसी कोशकार द्वारा हिन्दी में ऐसे शब्दकोश बनाए जाएँ जो उन शब्दों को भी शामिल करे, जो शायद मौखिक रूप में तो बहुत प्रचलित हैं, किन्तु लिखित साहित्य में जो बहुत ही कम प्रयुक्त/प्रयोग होते हैं।[297] तो जैसे यह हिन्दी शब्दकोश (यहाँ संदर्भ वर्धा हिन्दी शब्दकोश का है) इस कमी को अवश्य पूरा करेगा वैसे ही इसकी परम्परागत भूमिका के रूप में देखें तो रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाएँ भी यही कोशकार्य पूर्ण क्षमता के साथ करने में अपना पूरा योगदान देगी। वैसे यहाँ रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के योगदान विषयक कुछ-एक अन्य आयामों को भी देखें तो एक समय में उर्दू-हिन्दी में संस्कृत और अरबी-फ़ारसी शब्दों के प्रयोग को लेकर भाषायी साम्प्रदायिकता की बात कही जाती थी किन्तु आज इन भाषाओं में अंग्रेजी के शब्द ही नहीं, वाक्य-विन्यास तक प्रयोग में आ रहे हैं तो क्यों नहीं इस दृष्टि को भाषायी साम्राज्यवाद के रूप में रेखांकित किया जाए ? किन्तु ऐसा कहना भी एक अतिशयोक्ति है अर्थात् जैसा कि हम सब जानते हैं कि रामचन्द्र वर्मा जैसे बहुभाषाविद् कोशकार भाषाओं की ऐसी किसी भी संकीर्णता से बहुत ऊपर उठकर अपना कोशकार्य अथवा कोश-रचना-कर्म का दायित्व पूरे समर्पण भाव से न केवल निभा ही रहे थे बल्कि भाषाओं के परिष्कार के साथ उसे आत्मसात् करने के

[297] https://www.hindisamay.com/content/3159/1/वर्धा-हिंदी-शब्दकोश.cspx : Accessed on 16/06/2022

लिए इस क्षेत्र में सबको प्रेरित भी कर रहे थे। बहरहाल, यह सब ज़्यादा दूर कि बात तो नहीं है, यहाँ हमें उदाहरण के लिए ही सही लेकिन अंगरेज़ी शब्दों के समक्ष निर्धारित किए गए रामचन्द्र वर्मा के हिन्दी पर्यायकी कोशों याकि देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश को याद कर लेना चाहिए।

दरअसल किसी कोश, कोशकार एवं कोशकार्य/कोश-रचना का योगदान विषयक आयाम मुख्य रूप से इस तथ्य पर भी निर्भर करता है कि उसके प्रयोक्ताओं के मनोजगत में ये आयाम अपने मनोवैज्ञानिक शब्दावली के तर्ज़ पर कोशकार और शब्द अध्येता के द्वारा शब्दों के मूल तक पहुँचाने के लिए क्या प्रयोजन करते आ रहे हैं ? और वस्तुतः यह कार्य रामचन्द्र वर्मा ने अपनी कोश-रचनाओं के माध्यम से ठीक-ठाक ढँग से पूरा किया है; जिसका प्रमाण वर्माजी की कोश-रचनाओं के विश्लेषण में हम देख चुके हैं।

अतः यहाँ हम केवल कोशकार की दृष्टि और दृष्टिकोण का क्या महत्त्व है यह जाँचने के लिए स्वयं रामचन्द्र वर्मा के अनुभव जगत से ही एक उद्धरण प्रस्तुत करते हैं, जो वस्तुतः इस प्रकार से है कि "कुछ दिन पहले एक पुस्तक-विक्रेता की दुकान पर एक बुड्ढा डाकिया अपने छोटे लड़के के लिए शब्दकोश लेने आया था। उसके सामने कई कोश रखे गए। उनमें से अधिक शब्द-संख्या वाला एक छोटा कोश उसने पसंद किया। मैंने उसके हाथ से वह कोश लेकर देखा। उसे एक जगह से खोलते ही मेरे सामने जो पहला शब्द पड़ा, वह था 'देवालय' और उसके सामने उसका अर्थ लिखा था – पर्शिस्तगाह। मैंने कोश उसे लौटाकर करम ठोंका। जो लड़का देवालय का अर्थ नहीं जानता, वह क्या समझेगा कि यह 'पर्शिस्तगाह' क्या बला है। वस्तुतः यह फारसी का 'परस्तिशगाह' (देवपूजन का स्थान) है, जिसने सुयोग्य संपादक या सुचतुर प्रकाशक की कृपा से 'पर्शिस्तगाह' रूप धारण किया था। फिर भी हर साल उस कोश की हजारों प्रतियाँ बिकती हैं। ऐसे कोश जनता को अंधकार में रखकर उनकी रुचि उसी प्रकार परिष्कृत नहीं होने देते, जिस प्रकार निम्न कोटि के अश्लील चलचित्र जनता की रुचि विकृत करते हैं और उन्हें नैतिक दृष्टि से उन्नत नहीं होने देते।"[298] यहाँ इस प्रसंग के साथ हमें यह टिप्पणी भी जोड़नी पड़ेगी कि रामचन्द्र वर्मा

[298] रामचन्द्र वर्मा (मूल लेखक), बदरीनाथ कपूर (संशोधन एवं परिवर्धन), *कोश-कला*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीन संशोधित संस्करण - 2007 ई०, शब्द-संख्या, पृष्ठ - 51

को कोशकार्य/कोश-रचना के क्षेत्र में साठ वर्षों से अधिक का अनुभव था । इसलिए उपरोक्त उद्धरण में 'ऐसे कोश' का नाम क्या है और उसका संपादक कौन है, जैसे 'जिज्ञासु' प्रश्नों से असल में हम यहाँ संदेह पैदा नहीं कर सकते । बहरहाल, ऐसी स्थिति में कहना न होगा कि शब्दकोशों के मामले में शब्द-संख्या से कहीं अधिक यह तथ्य मायने रखता है कि उसमें व्यवहार योग्य शब्दों और उनके ठीक अर्थों तथा व्याख्याओं को कोई कोशकार कितना महत्त्व दे रहा है । वस्तुतः यही कोश, कोशकार एवं कोशकार्य/कोश-रचनाओं के योगदान विषयक आयाम को जाँचने-परखने के लिए सभी कोश-अध्येताओं का भी आप्तधर्म अथवा योजनाबद्ध कार्य-कौशल होना चाहिए।

हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा का नवाचार

अभी तक हम रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के बाह्य और आंतरिक पक्षों के विश्लेषण और अध्ययन से परिचित हुए हैं; यहाँ हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा की कार्यशैली एवं कार्यकौशल के नवाचार को समझने की कोशिश करेंगे । आख़िर हिन्दी कोश-रचना की चली आ रही परम्परा के कार्य-स्वरूप में रामचन्द्र वर्मा के आने से क्या बदलाव हुए ? वस्तुतः यह जान लेना भी यहाँ हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा के योगदान को समझने के लिए आवश्यक है।

रामचन्द्र वर्मा आजीवन कोश-रचना कार्यक्षेत्र से जुड़े रहे अर्थात् इस स्थिति में रह कर उन्होंने कोई साठ-एक वर्षों तक कोशकारिता के क्षेत्र में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। इस तरह रामचन्द्र वर्मा ने अपने समय में हिन्दी कोश-रचना की परम्परा के विकास में जो सैद्धांतिक और व्यावहारिक नवाचार विकसित किए उनको हम वस्तुतः निम्नलिखित बिन्दुओं में समझने का प्रयास कर सकते हैं; जिसका उल्लेख करते हुए यहाँ हमें विशेष रूप से उनकी कोश-रचनाओं को भी ध्यान में रखना होगा, यथा –

१. हिंदी शब्दसागर के निर्माण में अपने संपादन एवं भाषायी कौशल से नवयुवक रामचन्द्र वर्मा ने न केवल शब्द-संग्रह के दायित्व की ओर उस समय के प्रतिष्ठित कोश-संपादकों और कोशकारों का ध्यान आकृष्ट किया बल्कि कोशकला की कुशलता और परिपक्वता को उन्होंने जिस धैर्य से अपनाया था; वह भविष्य में हिन्दी कोश-रचना की

परम्परा में एक नवीन मार्ग प्रशस्त करने वाला भी सिद्ध हुआ। जिसका परिणाम आने वाले समय में हिंदी शब्दसागर के ग्यारह भागों में लक्षित भी हुआ।

२. हिंदी शब्दसागर में ऐसे तो रामचन्द्र वर्मा एक सह-संपादक के रूप में शामिल थे किन्तु जैसा कि इसके नाम से प्रदर्शित होता है, यह कोश 'शब्दसागर' अर्थात् 'शब्दों का सागर' के रूप में परिणत होकर हिन्दी कोश-रचना क्षेत्र में एक उपजीव्य ग्रन्थ के रूप में स्थापित हुआ। जोकि वस्तुतः हिन्दी कोश-रचना के क्षेत्र में अपना पहला नवाचार बनाने में भी सफल सिद्ध हुआ। जिसके तर्ज़ पर आगे हिन्दी में कोश-निर्माण की एक परम्परा ही चल पड़ी थी।

३. रामचन्द्र वर्मा ने कोश-संपादन कौशल का परिचय देते कोश-विस्तार एवं कोश-संक्षेपण की कला का भी नवाचार विकसित किया। जिसका परिणाम हमें 'हिंदी शब्दसागर' की सहायता से निर्मित 'संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर' के रूप में देखने को मिला।

४. हिन्दी भाषा की नवीन आवश्यकताओं और उस समय के भाषायी युगबोध को देखते हुए रामचन्द्र वर्मा ने जो देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश संपादित किया था, वह देवनागरी अक्षरों में किसी भी भाषा का कायाकल्प प्रस्तुत करने का हिन्दी कोश-क्षेत्र में अपनाया गया नवाचार सिद्ध हुआ। जिसके प्रभाव में देवनागरी अक्षरों में कई दूसरी भाषाओं के शब्दों को लिखने का प्रचलन भी बढ़ता चला गया।

५. राष्ट्रभाषा की संकल्पना के साथ राजभाषा के रूप में स्वीकार्य होने वाली हिन्दी के लिए कामकाज की भाषा के रूप में अपना स्थान बनाने और अपनी सक्षमता दिखाने हेतु उसमें जिस नए तरह की शब्दावली निर्माण की आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति का प्रयास रामचन्द्र वर्मा ने बड़े दायित्व के साथ करनी चाही, जिसमें उन्होंने सरकारी कार्यालयों हेतु कई शब्दावलियों जैसे कि आरक्षिक शब्दावली, स्थानिक परिषद् शब्दावली आदि के निर्माण-प्रक्रिया के भाषायी नवाचार का सूत्रपात कर दिया था।

६. हिन्दी शब्दावली निर्माण के साथ हिन्दी शब्दों के प्रामाणिक रूपों के व्यवहार लिए भी रामचन्द्र वर्मा ने कोई कसर छोड़ नहीं रखी थी। यही कारण है कि हिन्दी में भी व्यवहार योग्य प्रामाणिक शब्दों हेतु उन्होंने एक 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' का निर्माण किया; जो भविष्य में हिन्दी के प्रामाणिक शब्दकोशों के निर्माण की दिशा में वर्मा जी का बतलाया हुआ अपने तरह का नवाचार बन गया।

७. हिन्दी को बड़े फ़लक पर विकसित भाषा बनाने और भारत की एक समृद्ध राजभाषा के रूप में स्थापित करने के लिए वस्तुतः उसे भी अंगरेज़ी जैसी विश्व स्तर की भाषाओं के साथ तुलनात्मक रूप से समकक्षता में खड़ा होना चाहिए। इसलिए रामचन्द्र वर्मा ने पर्यायकी के क्षेत्र में भी हिन्दी का एक समृद्ध आधार विकसित करने का थोड़ा-बहुत प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने अंगरेज़ी भाषा के शब्दों के समतुल्य पर्याय गढ़ने और हिन्दी में उनके व्यवहार की एकरूपता लाने एवं पर्यायकी शब्दों के बीच पाए जाने वाले सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म अंतरों को स्पष्ट करने के लिए ही शब्द-साधना, शब्दार्थ-दर्शन, शब्दार्थ-विवेचन, शब्दार्थ-मीमांसा, शब्दार्थक ज्ञानकोश तथा राजकीय कोश जैसे कई कोशगत प्रयास किए। जिसके प्रभाव में हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में आगे चल कर न केवल पर्यायकी शब्दावली निर्माण का नवाचार विकसित हुआ बल्कि हिन्दी में अंगरेज़ी शब्दों के समतुल्य पारिभाषिक और पर्यायकी शब्द निर्माण की परम्परा भी विकसित हुई।

८. हिन्दी में 'शब्दसागर' के बाद दूसरे सबसे बड़े कोश-रचना कार्य को पूरा करने का श्रेय 'मानक हिन्दी कोश' के प्रधान संपादक रामचन्द्र वर्मा को ही जाता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि मानकीकृत हिन्दी भाषा की आधुनिक आवश्यकताओं को देखते हुए 'मानक हिन्दी कोश' हिन्दी कोश-निर्माण की परम्परा में वर्मा जी द्वारा किया गया अब तक का सबसे बृहत्तर प्रयास है। बहरहाल, जो भी हो 'मानक हिन्दी कोश' के नाम से यह तो ज्ञात हो ही जाता है कि हिन्दी में मानक शब्दकोशों के निर्माण में आने वाले नवाचार का एक सूत्रपात ही था।

इस तरह हम यह देखते हैं कि रामचन्द्र वर्मा न केवल हिन्दी कोश-निर्माण की परम्परा में बल्कि हिन्दी कोशों में शाब्दिक, भाषायी, व्यावहारिक, शब्दावली, प्रामाणिक, पर्यायकी, मानक इत्यादि के रूपों में और कोश-विस्तार एवं कोश-संक्षेपण के कौशल में भी पहले-पहल का प्राविधिक नवाचार लेकर आते हैं। वस्तुतः रामचन्द्र वर्मा के इन कार्यों से तत्कालीन हिन्दी कोशों की परम्परा पर तो प्रभाव पड़ा ही स्वयं रामचन्द्र वर्मा ने अपनी पीढ़ी के कोश संपादकों को कोश-संपादन का सलीक़ा भी सिखाया और भविष्य के कई कोशकारों को कोशकला में पारंगत होने की शिक्षाओं से अवगत भी कराया। आज भी इनकी कोशकला, हिन्दी कोश-रचना : प्रकार और रूप तथा शब्द और अर्थ जैसी कई

पुस्तकें उक्त कथन का प्रमाण हैं। यह ज्ञात हो कि वर्मा जी के छोटे भानजे बदरीनाथ कपूर जैसे भावी पीढ़ी के कई कोशकार एवं ग्रन्थकार इनकी छत्रछाया में ही पल्लवित और पुष्पित हुए थे।

हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा की पुनर्कल्पना

हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा का योगदान कोश-रचना विषयक पुनर्कल्पना के संदर्भों में भी अपना बहुआयामी रूपक गढ़ती है। जिसके आकलन के ऐसे तो कई दूसरे भी आधार हो सकते हैं किन्तु यहाँ हम देखें तो कोश-रचना विषयक की गई पुनर्कल्पना को वस्तुतः रामचन्द्र वर्मा द्वारा किए गए कोशों के नामकरण से भी लक्षित कर सकते हैं। ऐसे में हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में वर्मा जी के योगदान और उनकी कोशकला के अध्ययन से जुड़ी यह पुनर्कल्पना ही असल में उनके कोशों की संरचना और संकल्पना से जुड़ा हुआ सबसे प्रभावी माध्यम बन जाती है। क्या ऐसे में रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं के नामकरण पर भी यहाँ हमें एक बार विचार नहीं कर लेना चाहिए ? इस प्रश्न पर सोचते हुए हमें यह स्वीकार करना होगा कि हिन्दी कोश-रचनाओं की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा की पुनर्कल्पना का भाव इसी में अंतर्निहित है। अतः इनकी कोश-रचनाओं का यह पक्ष अवश्य ही यहाँ पर विचारणीय हो जाता है अर्थात् कहना न होगा कि यहाँ से आगे अब हम वर्माजी की कोशकला में पुनर्कल्पना के इसी पक्ष का आकलन करने का एक छोटा-सा प्रयास करेंगे; जिसे निम्नवत समझा जा सकता है –

१. यहाँ यह ध्यान देने कि बात है कि हिंदी शब्दसागर को हमें आधुनिक हिन्दी कोश-रचना की परम्परा की एक शुरुआती कड़ी के रूप में देखना चाहिए और जैसा कि हम जानते हैं – रामचन्द्र वर्मा 'हिंदी शब्दसागर' के मूल सहायक संपादकों में शामिल थे। वस्तुतः यहाँ हम ग्यारह भागों में प्रकाशित इस कोश के नामकरण पर विचार करें तो एक बार हमें इस 'शब्दसागर' शब्द को ही देख लेना चाहिए जो कि कोश के रूप में नए तरह की पुनर्कल्पना का साक्षी है। शब्दसागर का सीधा साहित्यिक अर्थ 'शब्दों का सागर' ही होगा जिसका आश्रय लेते हुए 'हिंदी शब्दसागर' शब्द-रूप बनाया गया है अर्थात् कोश-रचना की इस पुनर्कल्पना में 'कोश' शब्द का एक नया रूपक 'शब्दों के सागर'

के रूप में गढ़ा गया है। जिसके सहयोग से हिन्दी की इस सबसे शुरुआती आधुनिक कोश-योजना की परिणति का अर्थ वस्तुतः 'हिन्दी शब्दों का सागर' के रूप में पुनर्कल्पित और सृजित किया गया है।

२. हिंदी शब्दसागर को उपजीव्य-ग्रन्थ के रूप में देखते हुए उसकी व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से रामचन्द्र वर्मा ने कोश-संक्षेपण का सहारा लेकर अपनी कोश-रचना की योग्यता का प्रमाण 'संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर' के रचनात्मक योगदान के रूप में प्रस्तुत कर दिया है। वस्तुतः कोश-संक्षेपण में केवल कोशों को 'संक्षिप्त' करने का कार्य ही नहीं होता बल्कि उसके साथ उपजीव्य कोश-ग्रन्थ की कमियों और सीमाओं को भी दुरुस्त करने का प्रयास किया जाता है; जैसे इस संदर्भ में शब्द-संग्रह का ही उदाहरण लें तो हिंदी शब्दसागर में नरम, प्रमाण, पितलाना, भगवा, मँगैरैला, मुक्ति, श्री गणेश, समाई, समोसा, साढ़े, साप्ताहिक सरीखे बहुत-से ऐसे आवश्यक और उपयोगी शब्द छूट गए थे, जिनमें से कुछ शब्द 'संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर' में बढ़ाए गए हैं। शब्द-प्रविष्टियों की निरुक्ति या व्युत्पत्ति संबंधी आधारों को भी परिष्कृत करने का प्रयास 'संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर' में कुशलतापूर्वक हुआ है, जो कोशकार की कोशकला विषयक प्रवीणता का ही परिचायक है। इस तरह रामचन्द्र वर्मा ने हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर की तर्ज़ पर निर्मित होने वाले कोशों और कोश-संक्षेपण कला की पुनर्कल्पना का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत कर दिया था।

३. देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश के माध्यम से रामचन्द्र वर्मा ने हिन्दी कोश-रचना की परम्परा के भविष्य में सृजित होने वाले द्विभाषी कोशों और बहुत हद तक देवनागरी अक्षरों की वर्तनी में प्रस्तुत किए जाने वाले द्विभाषी-बहुभाषी कोशों की संकल्पना का भी सूत्रपात कर दिया था। इस तरह कहना न होगा कि हिन्दी में भाषिक कोश-रचना की संरचना एवं संकल्पना में यह एक नवीन प्रयास था। जो वस्तुतः देवनागरी लिपि के प्रयोग की आधुनिकता और हिन्दी भाषा में अन्य भाषाओं के शब्दों का देवनागरी अक्षरों में प्रस्तुतीकरण की कोशगत पुनर्कल्पना से भी अवश्य ही जुड़ा हुआ था।

४. आरक्षिक शब्दावली, स्थानिक परिषद् शब्दावली एवं राजकीय कोश के माध्यम से रामचन्द्र वर्मा ने हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में कोश-निर्माण क्षेत्र की पुनर्कल्पना का ही थोड़ा-बहुत विस्तार किया था। उनका यह कार्य राजभाषा के रूप में हिन्दी को

व्यावहारिक एवं कामकाज़ की भाषा बनाने की महत्त्वाकांक्षा से जुड़ा हुआ था; जिसके लिए न केवल राजभाषा के आधुनिक प्रयोग वाले कोशों में प्रौढ़ता की आवश्यकता थी बल्कि ऐसे कोशों की भाषायी संरचना एवं संकल्पना पर भी पुनर्विचार करने का दायित्व इसमें अंतर्निहित समझा गया था और जिसको पूरा करने का एक आवश्यक प्रयास हमें रामचन्द्र वर्मा की उपरोक्त कोश-रचनाओं के योगदान में भी संभवतः यहाँ लक्षित करना होगा।

५. हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा की पुनर्कल्पना के सबसे बड़े स्रोत का उदाहरण हमें प्रामाणिक हिन्दी कोश के रूप में दिखलाई देता है। जिसमें वर्मा जी ने शब्दों की प्रविष्टियों और उनकी कोशगत प्रस्तुति के स्तर पर कई तरह के नए प्रयोग किए थे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रामाणिक हिन्दी कोश में हिन्दी के प्रामाणिक शब्दों के चयन एवं उनके प्रस्तुतीकरण का ही अधिकतम प्रयास किया गया है; जिसके लिए शब्दों की व्यावहारिक प्रयोगगत एकरूपता के नियम को अपनाया गया है। जिसे वस्तुतः इस रूप में भी समझा जा सकता है कि कोशकार ने उच्चारणगत विभेदों के कारण ही प्रामाणिक हिन्दी कोश में कई कम प्रचलित शब्दों को कोश की प्रविष्टियों में शामिल नहीं किया; यथा कोश देखें तो गिनती के शब्दों में नब्बे से निन्यानबे तक के शब्द इस प्रामाणिक हिन्दी कोश में नहीं रखे गए। अब इसका क्या कारण है यह तो रामचन्द्र वर्मा की कोशगत पुनर्कल्पना से ही समझा जा सकता है।

६. अंगरेज़ी शब्दों के लिए हिन्दी पर्याय गढ़ने और ऐसे ही हिन्दी पर्याय शब्दों के बीच के सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म अंतरों को अंगरेज़ी शब्दों के समतुल्य उद्घाटित करने के लिए रामचन्द्र वर्मा ने पर्यायकी के कोश-ग्रन्थों जैसे शब्द-साधना, शब्दार्थ-दर्शन, शब्दार्थ-विवेचन, शब्दार्थ-मीमांसा तथा शब्दार्थक ज्ञानकोश की रचना भी की थी। अतः ऐसे में क्या यहाँ हमें रामचन्द्र वर्मा के इन पर्यायकी कोश-ग्रन्थों के नामकरण पर एक बार ठहर कर नहीं सोचना चाहिए ? हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा का योगदान विषयक यह अध्ययन उनके द्वारा कोशों की संरचना एवं संकल्पना के आधार पर किए गए उपरोक्त पर्यायकी कोशों के नामकरण की पुनर्कल्पना पर भी हमें एक बार अवश्य विचार कर लेना चाहिए। रामचन्द्र वर्मा आधुनिक हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में 'शब्दर्षि' की उपाधि से विभूषित थे; फिर ऐसे शब्द-साधक द्वारा शब्दों की साधना,

शब्दार्थ का दर्शन, शब्दार्थ का विवेचन, शब्दार्थ की मीमांसा तथा शब्दार्थक ज्ञानकोश का अन्वेषण किया जाना, किसी आश्चर्य का विषय नहीं होना चाहिए अर्थात् इस तरह के कार्यों से इस महान शब्द-शिल्पी ने न केवल हिन्दी कोशों की परम्परा को ही आगे बढ़ाया बल्कि हिन्दी की शब्द-सम्पदा का भी बहुत-कुछ विस्तार किया। आख़िरकार शब्द-ब्रह्म के इस महान उपासक ने भला ऐसे ही तो नहीं इन कोश-ग्रन्थों के साथ साधना, दर्शन, विवेचन, मीमांसा एवं शब्दार्थक ज्ञानकोश जैसे गूढ़ विषयक शब्दों को उक्त पर्यायकी कोशों के नामकरण से जोड़ा होगा; इसके पीछे ज़रूर उनका अपना शब्द-विवेक रहा होगा; जिसको परखने का अभ्यास वे आजीवन करते रहे।

७. मानक हिन्दी कोश के सम्पादन का कार्य रामचन्द्र वर्मा अपने जीवन के अंतिम कुछ वर्षों तक करते रहे। फिर भी, कोश-रचना के अपने अनुभवों का पूर्ण उपयोग वर्मा जी इस कोश में पूरे सामर्थ्य से नहीं कर पाए। जीवन के इस पड़ाव पर आ कर वे कुछ अशक्त से भी हो गए थे, जो संभवतः उनके बढ़ते उम्र की भी एक सीमा रही हो। यही कारण है कि रामचन्द्र वर्मा की कोशकला का जो प्रभाव प्रामाणिक हिन्दी कोश इत्यादि में देखने को मिलता, वह यहाँ पर आ कर कुछ अनुपस्थित-सा हो जाता है। बहरहाल, हिंदी शब्दसागर की सीमाओं और कोशगत कमियों के संशोधन, संपादन, परिवर्द्धन एवं परिवर्तन की आवश्यकताओं को पूरा करने का मानक हिन्दी कोश में कुछ हद तक सराहनीय प्रयास हुआ है। जिसका श्रेय रामचन्द्र वर्मा के कोशकला विषयक अनुभवों को ही जाता है। इस तरह मानक हिन्दी कोश रामचन्द्र वर्मा की कोशगत पुनर्कल्पना का अनुपम उदाहरण बन जाता है। जिसकी शब्द-प्रविष्टियों में 'हिंदी शब्दसागर' से आगे की कोश संरचना एवं संकल्पना का प्रवाह दिखाई देता है; यथा हमें मानक हिन्दी कोश में हिंदी शब्दसागर की अपेक्षा शब्दार्थों के प्रकरण में अव्याप्ति दोष और अतिव्याप्ति दोष कम ही देखने को मिलता है।

बहरहाल, अब उपरोक्त अध्ययन के आधारों पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा के कोश-ग्रन्थों का नामकरण ही उनकी कोशगत पुनर्कल्पना के योगदान को कोशकर्म में अंतर्निहित मूल्यांकन के विभिन्न पहलुओं से जोड़ता है; जो वस्तुतः आधुनिक क़िस्म के कोशों की संरचना एवं संकल्पना में परम्परागत कोशों की शृंखला का नवीन सूत्रपात करता है।

हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा द्वारा अवधारणा का विस्तार

अब तक हमने हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र के योगदान का आकलन करने हेतु ऊपर जो बातें कहीं वह वस्तुतः इस बात और तथ्य के उल्लेख के बिना अधूरी है कि हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा ने उसकी बुनियादी अवधारणा में आख़िर क्या विस्तार किया ? ऐसे में यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कोशकला, हिन्दी कोश-रचना : प्रकार और रूप तथा शब्द और अर्थ जैसी कुछ-एक पुस्तकों के माध्यम से रामचन्द्र वर्मा ने हिन्दी कोशकारिता की बुनियादी अवधारणा का विस्तार करने में अपना बहुमूल्य रचनात्मक योगदान दिया है। इस तरह कोश-रचना की सैद्धांतिकता और रचनात्मकता के क्षेत्र में किया गया वर्मा जी का योगदान हिन्दी कोश-रचना की चली आ रही परम्परा में एक सार्थक हस्तक्षेप के रूप में परिगणित किया जा सकता है। यहाँ हम बुनियादी तौर पर इसी तथ्य का उल्लेख करते हुए आगे बढ़ेंगे। अतः हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में उक्त कोशगत अवधारणा का विस्तार करने वाली वर्मा जी की पुस्तकों का यहाँ उल्लेख और विवरण अपेक्षित है; जो कि निम्नवत है –

- कोश-कला : साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण - १९५२ ई०
- हिन्दी कोश-रचना (प्रकार और रूप) : साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण - १९५४ ई०
- शब्द और अर्थ : शब्द-लोक प्रकाशन, बनारस, पहला संस्करण - १९६५ ई०

हिन्दी कोशकारिता से सम्बद्ध इन उपरोक्त पुस्तकों पर ऐसे तो हम 'रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं का विश्लेषण' के अंतर्गत पहले भी थोड़ी-बहुत चर्चा कर चुके हैं। फिर भी, हमारे लिए यहाँ यह जान लेना महत्त्वपूर्ण होगा कि ये सभी पुस्तकें वस्तुतः हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में किस तरह अपने योगदान से उसकी अवधारणा का विस्तार करते हैं ? बहरहाल, उक्त पुस्तकों के इन्हीं तथ्यों से जुड़े कुछ-एक पहलुओं का आगे उल्लेख किया जा रहा है –

१. कोश-कला पुस्तक रामचन्द्र वर्मा द्वारा हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में कोशगत अवधारणा के विस्तार की दृष्टि से किया गया पहला आधारभूत हस्तक्षेप है। बहरहाल,

सन् १९५२ ई० में प्रकाशित यह पुस्तक संभवतः किसी भी भाषा में कोश-रचना के व्यावहारिक पहलुओं को बतलाने और नियम-बद्ध करने वाली पहली पुस्तक मानी जाती है। जिसमें रामचन्द्र वर्मा द्वारा हिंदी शब्दसागर से आरंभ होकर प्रामाणिक हिंदी कोश तक कोशकारिता के क्षेत्र में प्रस्तुत किए गए कार्यों, कोश-रचना संबंधित अनुभवों आदि का दृष्टिकोण एवं उनका संक्षिप्त सारांश बतलाया गया है।

२. रामचन्द्र वर्मा ने कोशकला पुस्तक में हिंदी शब्दसागर, संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर, देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश, प्रामाणिक हिन्दी कोश आदि कोश-ग्रन्थों के रचनात्मक अनुभवों को बतलाने एवं कोशों की सीमाओं या भूलों को संशोद्धित-परिवर्द्धित करते हुए हिन्दी कोश-ग्रन्थों को संपादित करने के छोटे-छोटे किन्तु महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं को उसके उदाहरण सहित प्रस्तुत किया है; जिसका हिन्दी कोश-रचना हेतु कोशकारों के प्रयोग के लिए उसकी अवधारणागत विस्तार का वांछित महत्त्व इसी बात से समझा जा सकता है कि हिन्दी में किसी अन्य कोशकार के पगे हुए अनुभव जगत से निकली ऐसी कोई दूसरी पुस्तक नहीं मिलती। रामचन्द्र वर्मा का यह योगदान कोशकला के प्रति उनके अटूट लगाव और पूर्ण समर्पण के दायित्वबोध का ही द्योतक है; जिसके निर्वाह का दायित्व बदरीनाथ कपूर ने 'कोश-कला' पुस्तक के संशोधन एवं परिवर्धन द्वारा भविष्य के कोशकारों और कोश-जिज्ञासुओं के लिए बनाए रखा है।

३. हिन्दी कोश-रचना (प्रकार और रूप) पुस्तक हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा द्वारा की गई कोशगत अवधारणाओं के विस्तार को दर्शाने वाली उनकी एक और उल्लेखनीय रचना है; जिसमें वर्माजी हिन्दी में निर्मित होने वाले कोशों की आवश्यकता के आदर्श प्रकार और उनके रूप के कुछ-एक नमूने प्रस्तुत करते हैं। ऐसी पुस्तक के माध्यम से रामचन्द्र वर्मा ने न केवल स्वयं कोशकर्म में प्रवृत्त होने का आदर्श प्रयास प्रस्तुत किया बल्कि वे प्रेरणा स्वरूप ऐसी पुस्तकों की रचना कर भावी कोशकारों को भी कुछ हद तक प्रेरित करने का प्रयोजन पूरा कर रहे थे।

४. रामचन्द्र वर्मा द्वारा हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में किए गए अवधारणा का विस्तार को दर्शाने वाली 'हिन्दी कोश-रचना : प्रकार और रूप' पुस्तक आधारिक हिन्दी कोश, मानक हिन्दी कोश, पर्याय-दर्शी कोश, अँगरेजी-हिन्दी कोश और हिन्दी-अँगरेजी कोश के रूप में हिन्दी में कोश-निर्माण की आवश्यकता के प्रकार और रूप को उदाहरण

सहित दर्शाने का कार्य करती है; यथा देखें कि अँगरेजी-हिन्दी या हिन्दी-अँगरेजी कोशों में शब्दों की पर्यायकी देने की परम्परा का उल्लेख इसी पुस्तक में मिलता है। जिससे हिन्दी कोशगत अवधारणा का विस्तार करने का पक्ष रामचन्द्र वर्मा की ऐसी पुस्तकों के माध्यम से पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है।

५. हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा द्वारा अवधारणा का विस्तार को दर्शाने वाली उक्त पुस्तकों में 'शब्द और अर्थ' का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है जो हिन्दी कोशों में शब्द प्रविष्टियों के अर्थ-विवेचन की कला और स्वरूप पर आधारित है। और जिसका महत्त्व शब्द और अर्थ के बीच के संबंधों को विस्तार से समझे जाने के अवसर से जुड़ा हुआ है। इस तरह उपरोक्त कथनों के विषय में यहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि नए कोश-जिज्ञासुओं को यह पुस्तक एक बार अवश्य पढ़ लेनी चाहिए।

अंततः उपरोक्त तथ्यों से परिचय के आधार पर यहाँ यह कहना भी उल्लेखनीय हो जाता है कि हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा द्वारा कोशगत अवधारणा के विस्तार के लिए कई छोटे-बड़े प्रयास किए गए थे। बहरहाल, उपरोक्त तीनों पुस्तकों के अतिरिक्त रामचन्द्र वर्मा ने अपने कोश-ग्रन्थों की भूमिका, प्रस्तावना, निवेदन आदि में भी ऐसी बहुत-सी बातें लिखी हैं जिन्हें उक्त अवधारणा का विस्तार वाले पक्ष के अंतर्गत ही रखा जा सकता है।

हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा की स्थिति

हिन्दी कोश-रचना की बृहत् परम्परा में रामचन्द्र वर्मा एवं उनकी कोश-रचनाओं की स्थिति अन्य कोशकारों और उनके कोशों की तुलना में कितनी भिन्न या मिलीजुली थी; यह विचार किया जाना भी हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा के योगदान विषयक अध्ययन का ही एक अभिन्न प्रयास समझना चाहिए। बहरहाल, इस तुलना का ठीक-ठीक आधार हिन्दी शब्दसागर काल तथा उसके अनंतर से ही प्रारंभ होता है। 1910 ई॰ से जिस 'हिंदी शब्दसागर' का कोशकार्य आरंभ हुआ, उसमें रामचन्द्र वर्मा के अतिरिक्त कोशविद्या के मर्म को जाने वाले कई उत्कृष्ट व्यक्तियों/कोशकारों का योगदान भी रहा है। अतः यहाँ रामचन्द्र वर्मा की प्रधानता का कोई प्रश्न नहीं उठता। किन्तु इसी दिशा में आगे चल कर

जिस 'संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर' का सृजन और सम्पादन रामचन्द्र वर्मा ने किया वह अवश्य ही 'शब्दसागर' के आधार पर निर्मित हुए कोशों का प्रतिनिधित्व करता है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में हिन्दी कोश-रचना की परम्परा का और विस्तार हुआ; कई ऐसे महत्त्वपूर्ण कोश बनाने के प्रयास हुए जिनसे रामचन्द्र वर्मा के कोशगत योगदान की तुलना की जा सकती है। जैसे ज्ञात हो कि अभिनव हिन्दी कोश, नालन्दा विशाल शब्दसागर, प्रचारक हिन्दी कोश, भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोश, नारायण शब्दसागर, राष्ट्रभाषा कोश, हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश, बृहत् हिन्दी कोश, संक्षिप्त राष्ट्रभाषा कोश, संक्षिप्त हिन्दी प्रामाणिक कोश, भारतीय हिन्दी कोश, नालन्दा अद्यतन कोश, अशोक हिन्दी कोश, लघु हिन्दी कोश आदि-आदि सभी कोशों को स्वातंत्र्योत्तर काल में रामचन्द्र वर्मा के संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर (1933 ई०), प्रामाणिक हिंदी कोश (1950 ई०) और पाँच खण्डों वाले मानक हिन्दी कोश (1962-1966 ई०) के समकक्ष रख कर देखना चाहिए। ये सभी कोश हिन्दी कोश-रचना की परम्परा के तत्कालीन आधार और केंद्रीय बिंदु अर्थात् एक राजभाषा के रूप में हिन्दी की शब्द-समृद्धि के विस्तार की महत्त्वकांक्षाओं से जुड़े हुए थे।

उक्त कोशों में 1952 ई० का ज्ञानमण्डल से प्रकाशित कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय एवं मुकुंदीलाल श्रीवास्तव द्वारा संपादित 'बृहत् हिंदी कोश' अपने कोशकारों के ही परिश्रम का परिणाम थी, जो रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर और प्रामाणिक हिंदी कोश का अगला पड़ाव प्रतीत हुई। इन कोशों की पृष्ठभूमि में 'शब्दसागर' के कार्यों का योगदान भी लक्षित होता है जो शब्द-संग्रह, शब्द-संख्या, शब्दों की निरुक्ति या व्युत्पत्ति याकि शब्द-अर्थ-विचार आदि की दृष्टि से अपनी मौलिकता को उजागर करने के प्रयासों से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई थी; और जो रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं की सीमाओं को दुरुस्त करने का प्रयास हिंदी शब्द-सम्पदा में संस्कृत, फ़ारसी और अंगरेज़ी के प्रचलित शब्दों को कोश-प्रविष्टियों में स्थान देकर पूरा कर रही थी।

बहरहाल, वह दौर ही वस्तुतः इसी तरह के उपरोक्त कोशगत प्रयासों को बढ़ाने से जुड़ा हुआ था, जिसका परिणाम हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा की स्थिति पर भी पड़ा। कहना न होगा कि ऐसे में रामचन्द्र वर्मा का कोश-रचना क्षेत्र में योगदान अपने समकालीन कोशकारों की परिणति से मिलेजुले और सहयोगी प्रयास वाला ही रहा।

हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा का योगदान

अब तक हमने हिन्दी कोश-रचना में रामचन्द्र वर्मा के योगदान से जुड़े कुछ-एक उक्त पहलुओं का अध्ययन और विश्लेषण किया। बहरहाल, यहाँ योगदान विषयक कुछ-एक प्रश्नों के आलोक में यह जान लेना भी आवश्यक है कि रामचन्द्र वर्मा ने हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में क्या योग किया ? अथवा उन्होंने ऐसा क्या किया जो हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में पहले नहीं था ? याकि अगर रामचन्द्र वर्मा नहीं होते तो हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में आख़िर क्या छूट गया होता ? और हिन्दी कोश-निर्माण कार्य में रामचन्द्र वर्मा का ऐसा क्या योगदान है जो कोश-प्रयोक्ताओं को कुछ हद तक प्रभावित कर सकता है ? यहाँ ऐसे ही कुछ-एक प्रश्नों पर विचार करते हुए हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा के योगदान को रेखांकित किया जा सकता है अर्थात् रामचन्द्र वर्मा द्वारा कोश-रचना क्षेत्र में किए गए कार्यों का मूल्यांकन वस्तुतः हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में किए गए उनके योग याकि जोड़-घटाव से ही आँका जा सकता है।

जैसे कहना न होगा कि वस्तुतः रामचन्द्र वर्मा ने ही पहले पहल हिन्दी कोशों में अँगरेजी शब्दों की पर्यायकी गढ़ने का थोड़ा-बहुत प्रयास किया है। इसके साथ ही उन्होंने नए ढंग के शब्द निर्माण का कार्य भी किया; जैसे कि उदाहरण स्वरूप यहाँ देखें तो अँगरेजी के 'नेगेटिव' और 'पॉजिटिव' शब्दों के लिए उपयुक्त हिन्दी पर्याय कई थे किन्तु उन सभी में किसी न किसी प्रकार की अव्याप्ति या एकांगिता दिखाई देती थी इसलिए बहुत सोच-विचार कर रामचन्द्र वर्मा ने इनके लिए 'नहिक' और 'सहिक' जैसे शब्द स्थिर किए जो कि वर्मा जी के प्रामाणिक हिन्दी कोश में यथास्थान प्रयुक्त भी हुए हैं। बहरहाल, रामचन्द्र वर्मा की यह विनम्र स्वीकारोक्ति थी कि उनके तुच्छ परिश्रम से हिन्दी में कोश-कला का एक नया आदर्श स्थापित हो सका, तो यह आशा करते थे कि उनकी अन्यान्य त्रुटियों के लिए भावी हिन्दी जगत की दृष्टि में उन्हें क्षम्य ही समझा जाएगा।[299] इस आधार पर देखें तो हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा का योगदान उनके बृहत् कोशकर्म एवं कृतित्व के विविध पहलुओं के साथ-साथ वर्माजी के परोपकारी व्यक्तित्व से भी जुड़ा हुआ है।

---

[299] रामचन्द्र वर्मा (मूल संपादक), बदरीनाथ कपूर (संशोधन-परिवर्द्धन), *बृहत् प्रामाणिक हिन्दी कोश*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवाँ संस्करण - 2017 ई०, दूसरे संस्करण का वक्तव्य, पृष्ठ - xxiv

ऐसे तो कोशों में दोष या कोशों की सीमाएँ कोशकार के कोश-रचना संबंधी आधारों और उसके शब्दबोध पर ही निर्भर करता है; जिसके प्रभाव से स्वयं रामचन्द्र वर्मा और उनके समकालीन भी ऐसे तो अछूते नहीं कहे जा सकते किन्तु इसका एक सकारात्मक उदाहरण यह है कि आधारिक हिन्दी प्रतिमान कोशों में अधिकतर शब्दों के साथ उनके अँगरेजी समानार्थी शब्द देने का प्रयास या हिन्दी शब्द-कोश के क्षेत्र में यह परम्परा रामचन्द्र वर्मा ने पहले पहल प्रामाणिक हिन्दी कोश में चलाई थी और इस एक उल्लेखनीय परम्परा की उपयोगिता इसी से सिद्ध है कि प्रामाणिक हिन्दी कोश का पहला संस्करण निकलने के बाद हिन्दी में जितने प्रमुख कोश निकले, उन सब ने यह प्रथा प्रमुखता से ग्रहण भी कर ली थी। रामचन्द्र वर्मा लिखते हैं कि "प्रामाणिक हिन्दी कोश के पहले संस्करण में मैंने राष्ट्र-भाषा तथा देश की वर्तमान स्थिति तथा अन्य-भाषा-भाषियों की आवश्यकता तथा सुभीते का ध्यान रखते हुए कुछ महत्त्वपूर्ण हिन्दी शब्दों के साथ उनके उपयुक्त अँगरेजी पर्याय देने की नई परिपाटी चलाई थी। इसकी उपयोगिता आगे चलकर तब सिद्ध हुई, जब प्रायः सभी परवर्ती हिन्दी कोशों में इसी परिपाटी का अनुसरण किया गया। मानक हिन्दी कोश में यह काम और भी अधिक विस्तृत रूप में हुआ है। इससे यह लाभ होगा कि अँगरेजी जाननेवाले अन्य-भाषा-भाषी सहज में यह समझ सकेंगे कि हिन्दी का कौन-सा शब्द अँगरेजी के किस शब्द के स्थान पर चलता है।"[300] बहरहाल, हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में इस ढंग की कुछ-एक नवीन परिपाटी को चलाने का श्रेय कोशकार रामचन्द्र वर्मा को ही जाता है। अतः इस एक दृष्टिकोण के कार्यों से वे हिन्दी कोश-रचना की परम्परा के प्रति अपनी कोश-रचनाओं से किए गए योगदान में अपना अद्वितीय स्थान बचाए रखते हैं।

इसी तरह यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि हिन्दी कोशों की परम्परा को आदिकाल और मध्यकाल के दौर की कोश-रचना प्रवृत्तियों से आगे बढ़ाकर रामचन्द्र वर्मा ने वस्तुतः कोशकार्य क्षेत्र में आधुनिक कोश-रचना पद्धति को अपनाने का अपनी ओर से पूरा-पूरा प्रयास किया है। इस प्रकार रामचन्द्र वर्मा ने हिन्दी कोशकार्य को पूरा करने के लिए अपना सारा जीवन ही लगा दिया किन्तु इसके बावजूद उसमें बहुत-कुछ करना शेष रह गया।

---

[300] रामचन्द्र वर्मा (संपादक), *मानक हिन्दी कोश (पहला खण्ड)*, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, तृतीय संस्करण - 2006 ई०, आरम्भिक निवेदन, पृष्ठ - 11

अपनी शोध पुस्तक 'हिन्दी कोश साहित्य : समीक्षात्मक अध्ययन' के प्रकाशित पहले संस्करण सन् 1981 ई० में नाथू राम कालभोर ने हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा के योगदान के स्वरूप को याद करते हुए उनको भारतीय कोश-विज्ञान के आधुनिक यास्क के रूप में स्मरण किया है। पुस्तक के समर्पण में नाथू राम कालभोर ने ये शब्द लिखे हैं – 'भारतीय कोश विज्ञान के आधुनिक यास्क पद्मश्री बाबू रामचन्द्र वर्मा की अमर आत्मा को'। बहरहाल, इससे और ज़्यादा कुछ नहीं तो यह अवश्य ही स्पष्ट होता है कि हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में ही नहीं अपितु भारतीय कोश-विज्ञान और कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा का योगदान आदर और स्मरण योग्य अवश्य है।

आगे हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा के योगदान को अभिव्यक्त करने वाली उनकी उपलब्ध कोश-रचनाओं का क्रमशः उल्लेख किया जा रहा है –

- हिंदी शब्दसागर (ग्यारह भागों में संकलित) : नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी से प्रकाशित
- संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर : नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी से प्रकाशित
- देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश : हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई से प्रकाशित
  १. उर्दू-हिन्दी कोश : लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण - २०१९ ई०
  २. उर्दू-हिन्दी-अंग्रेजी त्रिभाषी कोश : लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण - २०१९ ई०
- आरक्षिक शब्दावली : काशी-नागरीप्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित
- स्थानिक परिषद् शब्दावली : काशी-नागरीप्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित
- प्रामाणिक हिन्दी कोश : साहित्य-रत्न-माला कार्यालय बनारस से प्रकाशित
  १. बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण - २०१७ ई०
  २. प्रामाणिक हिन्दी कोश (संक्षिप्त संस्करण) : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण - २००९ ई०
  ३. प्रामाणिक हिन्दी बाल कोश : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण - २०१३ ई०
- शब्द-साधना : साहित्य-रत्न-माला कार्यालय बनारस से प्रकाशित
- मानक हिन्दी कोश (पाँच खण्डों में संकलित) : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित
- शब्दार्थ-दर्शन : रचना प्रकाशन इलाहाबाद से प्रकाशित
  १. शब्दार्थ-विचार कोश : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, संस्करण - २०१५ ई०

बहरहाल, जैसा पहले भी कहा जा चुका है कि उपरोक्त उल्लिखित कोश-रचनाओं के अतिरिक्त बाबू रामचन्द्र वर्मा ने आनंद शब्दावली, शब्दार्थ-विवेचन, शब्दार्थ-मीमांसा, शब्दार्थक ज्ञानकोश तथा राजकीय कोश आदि का भी लेखन-सम्पादन किया था; किन्तु जो इस शोध अध्ययन के दौरान कहीं से उपलब्ध नहीं हुए। फिर भी, हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा के योगदान का अध्ययन उपरोक्त उल्लिखित कोश-रचनाओं के साथ-साथ आनंद शब्दावली, शब्दार्थ-विवेचन, शब्दार्थ-मीमांसा, शब्दार्थक ज्ञानकोश तथा राजकीय कोश के नाममात्र (का ही सही) उल्लेख के बिना बहुत कुछ अधूरा रह जाता क्योंकि इनके लेखन-सम्पादन के साथ प्रस्तुति आदि का कार्य भी स्वयं रामचन्द्र वर्मा ने ही किया था। और जो आज भी हिन्दी कोश साहित्य को रामचन्द्र वर्मा की एक अद्वितीय देन के रूप में हिन्दी कोशों की परम्परा में किए गए उनके योगदान के साथ जुड़ा हुआ है। इस तरह रामचन्द्र वर्मा ने हिन्दी कोशों की परम्परा को आगे बढ़ाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, किन्तु जिस तरह से साहित्य-संसार में कोई बात अंतिम नहीं है उसी तरह कोश-संसार विषयक अध्ययन के संदर्भों में भी यह उक्ति पुनः दोहराई जा सकती है, जो कुछ हद तक शब्दशः रामचन्द्र वर्मा के कोशगत योगदान के अध्ययन के संदर्भों पर लागू होती ही है।

इस अध्ययन में अंततः यह तथ्य यहाँ उल्लेखनीय है कि हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा के योगदान को देखते हुए कह सकते हैं कि वे अपनी कोश-रचना कार्यों की प्रक्रिया में आजीवन एक प्रकार की कठोर एवं अनुशासित शब्द-साधना का हिस्सा बने रहे और उसकी सर्वोच्चता को पाने का प्रयास करते रहे। बहरहाल, उन्नीसवीं शताब्दी के हिन्दी उन्नायकों में शामिल इस महान शब्द-साधक के कार्यों के महत्त्व को जानने के लिए इस क्षेत्र में संभवतः अभी बहुत कुछ उल्लेख किया जाना बाक़ी है; और जैसा कि प्रह्लाद सिंह टिपानिया पंद्रहवीं शताब्दी के महान भक्त-कवि/साधक कबीर के विषय में कहते हैं कि कबीर का जहाज शब्द रूपी जहाज है[301] तो क्या यही बात यहाँ हिन्दी

[301] मध्यप्रदेश की मालवा शैली में कबीर-गायन के उस्ताद माने जाने वाले, भारत के राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त लोक गायक प्रह्लाद सिंह टिपानिया सन् २००९ ई॰ में '*अजब शहर - कबीर प्रोजैक्ट*' के अंतर्गत निर्मित और शबनम विरमानी द्वारा निर्देशित फ़िल्म 'चलो हमारा देस' (अवधि ९८ मिनट) में कबीर आराधना पद्धति के प्रसंग में एक स्थान पर यह उक्त बात कहते हैं; जिसे यूट्यूब के इस लिंक पर फ़िल्म अवधि से गुजरते हुए वृत्त-चित्र के रूप में १३:३१ मिनट की समयावधि से सुना और देखा जा सकता है https://www.youtube.com/watch?v=liSbaO4BH9g : Accessed on 28/06/2022

कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा के योगदान के विषय में भी कुछ हद तक कही जा सकती है ? अब इस पर विचार किया जा सकता है; जिसके बाद हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा के योगदान विषयक अध्ययन की थोड़ी-बहुत पूर्णता ठहरेगी। ऐसे में मुझे यहाँ कबीर का एक पद भी ध्यान में आता है, जो कि इस प्रकार से है –

साधो, शब्द-साधना कीजै।
जे ही शब्द ते प्रगट भये सब, सोई शब्द गहि लीजै॥
शब्द गुरु शब्द सुन सिख भये, शब्द सो बिरला बूझै।
सोई शिष्य सोई गुरु महातम, जेहिं अंतर-गति सूझै॥
शब्दै वेद-पुरान कहत हैं, शब्दै सठ ठहरावै।
शब्दै सुर-मुनि-संत कहत हैं, शब्द-भेद नहिं पावै॥
शब्दै सुन सुन भेष धरत हैं, शब्दै कहै अनुरागी।
षट-दर्शन सब शब्द कहत हैं, शब्द कहै बैरागी॥
शब्दै काया जग उतपानी, शब्दै केरि पसारा।
कहै कबीर जहँ शब्द होत है, भवन भेद है न्यारा॥[302]

बहरहाल, कोश परम्परा में रामचन्द्र वर्मा के योगदान के अतिरिक्त इनके कोशों की क्या कमियाँ या सीमाएँ हैं यह तथ्य ठीक अर्थों एवं संदर्भों में जितना स्वयं रामचन्द्र वर्मा को ज्ञात होगा, उतना इस विषय में किसी अन्य को शायद ही मालूम पड़े। इस तरह पुनर्विचार करने की सहूलियत हमेशा बनी रहेगी; बल्कि रामचन्द्र वर्मा भी अपनी कोश-रचनाओं के माध्यम से, इसी की पूर्ति हेतु शब्दों की परख, मीमांसा एवं शब्दर्षि साधक की तरह शब्द-साधना जैसे अनेक कार्य पूरा करने का आजीवन प्रयास करते रहे हैं। और यहाँ बतलाने योग्य बात है कि यही हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में उनके बहुमूल्य योगदान का आधार भी है।

****

[302] हजारीप्रसाद द्विवेदी, *कबीर*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सत्रहवीं आवृत्ति - 2011 ई०, पृष्ठ - 206-207

उपसंहार

कोश ऐसे शब्दों का संग्रह होता है जिसमें उन शब्दों के संबंध में जानने योग्य पर्याप्त सामग्री दी गई हो। इसका सैद्धान्तिक आधार कोश-विज्ञान (Lexicology) और व्यावहारिक पक्ष कोश-रचना (Lexicography) कहलाता है। कहना न होगा कि सैद्धान्तिक कोश-विज्ञान की अनुप्रयुक्त प्रक्रिया ही कोश-रचना है। कोश विषयक सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आयामों का अध्ययन भी इन्हीं उक्त विषयों के अंतर्गत किया जाता है। यद्यपि कोशों के भी कई प्रमुख प्रकार होते हैं, जिनके वर्गीकरण अथवा विश्लेषण के कई भिन्न-भिन्न आधार हो सकते हैं, जो रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं पर भी लागू होते हैं।

परम्परा किन्हीं पूर्ण कार्यों का एक एक करके होने वाला पूर्वापर क्रम है जो बहुत दिनों से एक ही रूप में चला आ रहा हो और जो उसी रूप में सर्वमान्य हो गया हो। ऐसे में कोश-रचना की परम्परा से आविर्भाव उस कार्यक्षेत्र की परम्परा से है, जो दरअसल सभ्यता के विकास के साथ कोश-रचना क्षेत्र में चली आ रही है। भारत में कोश-रचना की परम्परा कोई पाँच हज़ार वर्ष पुरानी है; जो संस्कृत में निघण्टु और निरुक्त की वैदिक शब्दावली वाले कोशीय कार्यों की परम्परा से आरंभ होकर आधुनिक पद्धति के अद्यतन डिजिटल कोशों तक चली आती है। संस्कृत कोशों की परम्परा को अमरसिंह के 'अमरकोश' के आधार पर तीन काल-खण्डों में बाँटा जाता है – अमरकोश पूर्वकाल, अमरकोश काल और अमरकोश उत्तरकाल। उक्त अमरकोश पूर्वकाल में निघण्टु और यास्क के निरुक्त की परम्परा से आगे व्याडि, कात्य, भागुरि, वाचस्पति, धन्वन्तरि और महाक्षपणक जैसे कई बड़े महत्त्वपूर्ण कोशकारों के कोश मिलते हैं; जो संस्कृत कोश-रचना कार्यों की आरंभिक परम्परा को प्रतिष्ठित करते हैं। जबकि अमरकोश काल में अमरसिंह ने इन्हीं पूर्ववर्ती कोशों के आधार पर संस्कृत कोश-रचना की परम्परा में अब तक का सबसे अधिक उल्लेखनीय कोश-ग्रन्थ 'नामलिंगानुशासन' लिखा; जिसका नाम इसके रचयिता अमरसिंह के नाम पर 'अमरकोश' चल पड़ा। इस कोश की लोकप्रियता इतनी अधिक हुई कि संस्कृत में इसके टीकाओं की भी सुदीर्घ परम्परा मिल जाती है। संस्कृत कोश-रचना की परम्परा के अंतिम काल-खण्ड को 'अमरकोश उत्तरकाल' के नाम से जाना गया। इस काल-खण्ड में शाश्वत,

धनञ्जय, पुरुषोत्तम देव, हलायुध, यादवप्रकाश, महेश्वर, अजयपाल, मेदिनि/मेदिनी, मंख, हेमचन्द्र, केशवस्वामी, केशव, शाहजी महाराज और हर्षकीर्ति जैसे कई कोशकारों ने अपने कोशों से संस्कृत कोश-रचना की परम्परा को समृद्ध किया। बहरहाल, उक्त काल-खण्डों के अतिरिक्त आधुनिक समय में भी संस्कृत भाषा के कोशों की परम्परा बनी हुई है। इस संदर्भ में डॉ॰ विल्सन तथा मोनियर विलियम्स जैसे विदेशी कोशकारों और राधाकांत देव बहादुर, तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य तथा वामन शिवराम आप्टे जैसे भारतीय कोशकारों का नाम लिया जा सकता है; जिन्होंने संस्कृत कोशों की परम्परा में पर्याप्त योगदान दिया। कहना न होगा कि संस्कृत के आधुनिक कोशों पर पूर्ववर्ती काल-खण्ड के कोशों की अपेक्षा कोश-रचना की आधुनिक पद्धति का प्रभाव ज़्यादा है; जबकि पहले के कोश जिस उद्देश्य से रचे गए थे, उनमें शास्त्रों की शब्द-मीमांसा के साथ कठिन शब्दों की व्याख्या करने एवं कोश कंठस्थ करने का भाव ही प्रधान बना हुआ था।

संस्कृत कोश परम्परा का अगला चरण पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश में कोश-रचना की परम्परा के रूप में दिखलाई देता है। यद्यपि पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश के कोशों का आधार भी इन भाषाओं के साहित्यिक और पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या एवं अर्थ का परिचय देना ही था, जिससे जुड़ी पर्याप्त चर्चा के उक्त कथनों के अतिरिक्त यहाँ कुछ और बतलाने का ऐसा कोई विशेष प्रयोजन नहीं है; सिवा इसके कि इन कोशों के माध्यम से बौद्ध और जैन साहित्य का अनुशीलन करना कुछ और सहज या अनुकूल हो सकता है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में कोश-रचना की परम्परा से परिचय का प्रयास भारत में कोश-रचना की परम्परा के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आकलन से जुड़ा हुआ है; जिसके अध्ययन की कोशिश इस दृष्टि से आवश्यक है कि भारत जैसे बहुभाषी देश में कोश-रचना की आधुनिक पद्धति को बढ़ाने वाले प्रयत्नों की गणना हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा विषयक अध्ययन में भी होनी चाहिए। इसी दृष्टि से पश्चिमी देशों में कोश-रचना की परम्परा के एक संक्षिप्त परिचय की आवश्यकता को अंग्रेजी कोशों के संदर्भ में देखना आवश्यक ही था। चूँकि आधुनिक कोश-रचना पद्धति के विकास-क्रम की दृष्टि से पश्चिम और अंगरेज़ी कोश-रचना की परम्परा संसार भर में पहला स्थान बनाए हुए है। ऐसे भारत में कोश-रचना की अद्यतन परिस्थितियाँ और उसके कुछ पहलू थोड़े बेहतर हुए हैं, जिससे इस क्षेत्र में कार्य

करने की रुचि भी बढ़ी है। लेकिन भारत की भाषायी समृद्धि को देखते हुए कोश-रचना क्षेत्र में अकादमिक तथा व्यक्तिगत प्रयासों को नगण्य ही कहा जाएगा। इसलिए इस दिशा में कार्य करने की अनंत संभावनाएँ शेष हैं। बहरहाल, भारत में कोश-रचना की परम्परा का आधुनिक स्वरूप और उसकी नई अवधारणा क्या हो सकती है ? इस प्रश्न से ही हमें उक्त कथनों का आशय समझने का प्रयास करना चाहिए।

भारत में कोश-रचना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के उपरांत हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा के विकास-क्रम का आकलन अध्ययन के सिलसिले का ही अगला प्रस्थान बिन्दु है; जिसके संदर्भों के बुनियादी आधारों को हिन्दी भाषा के आविर्भाव और काल-विभाजन की पृष्ठभूमि में देखना, कोश विषयक विश्लेषण एवं विवेचन की आवश्यकताओं प्रासंगिक बना देता है। हिन्दी कोश परम्परा के कालक्रमानुसार अध्ययन का औचित्य कोश-साहित्य की ऐतिहासिक पड़ताल से जुड़े शोधकार्यों का एकमात्र प्रयोजन रहा है। हिन्दी कोश-रचना की परम्परा को हिन्दी के काल-विभाजन के आधारों पर निम्नलिखित काल-खण्डों में बाँटा जा सकता है – आदिकाल (1000 ई० से 1500 ई०), मध्यकाल (1500 ई० से 1800 ई०) और आधुनिक काल (1800 ई० से अब तक)। आधुनिक काल को विषय की अनुकूलता के आधार पर दो भागों में विभक्त किया गया है – ब्रिटिश राज्यकाल और स्वातंत्र्योत्तर काल। स्वातंत्र्योत्तर काल को कोशकार रामचन्द्र वर्मा, जिन्हें इस शोधकार्य का आधार बनाया गया है, के जीवनकाल (1889-1969) के अंतिम दशक अर्थात् 1970 ई० तक रखने का प्रयास किया गया है और ब्रिटिश राज्यकाल को हिन्दी कोश विषयक अध्ययन की सहूलियत को देखते हुए दो भागों में बाँटा गया है; जिसमें से एक को हिन्दी शब्दसागर पूर्वकाल और दूसरे को हिन्दी शब्दसागर काल तथा उसके अनंतर का नाम दिया गया है।

आदिकाल से मध्यकाल तक हिन्दी में अधिकांशतः पद्यात्मक कोशों की परम्परा मिलती है, जिसको संस्कृत कोशों की परम्परा से जोड़कर देख सकते हैं। जैसे नाममाला, एकार्थक और एकाक्षरी कोशों में अनुकरण की परम्परा संस्कृत कोशों से विकसित हुई हैं; जिसमें मौलिकता और नएपन का सर्वथा अभाव है। मध्यकालीन कोशों की वर्ण्य-विषय संबंधी धारणाएँ भी कालांतर में परिवर्द्धित होती रही हैं और आदिकाल से मध्यकाल तक मिलने वाले कोश-साहित्य का इसी दृष्टि से महत्त्व भी रहा है कि वर्ण्य-विषयों के साथ-साथ

उस समय का भाषायी शब्द-भंडार इन कोशों में थोड़ा-बहुत सुरक्षित है; जो हिन्दी भाषा की आरंभिक शब्द-सम्पदा की दृष्टि से अध्ययन का एक गूढ़ विषय हो सकती है। उक्त हिन्दी कोश-साहित्य में साहित्यिक शब्द-मीमांसा के प्राथमिक नमूने अभी बचे हुए हैं। बहरहाल, आदिकालीन हिन्दी कोश-साहित्य 'ख़ालिक़बारी' में खड़ीबोली के शब्दों, वाक्यों और पद्यात्मक तुकबंदियों के साक्ष्य का अध्ययन आज भी दिलचस्प हो सकता है।

आधुनिक काल में देवनागरी में प्रकाशित हिन्दी का पहला कोश कौन-सा है ? इस प्रश्न की जिज्ञासा के साथ हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा के आधुनिक काल के अध्ययन की शुरुआत होती है; जिसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में यह तथ्य उजागर होता है कि हिन्दी कोश-रचना की परम्परा के ब्रिटिश राज्यकाल के दौरान तत्कालीन यूरोपीय विद्वानों का योगदान अकथनीय है। इसे इस बात से भी समझा जा सकता है कि 1829 ई॰ में कलकत्ते से प्रकाशित मेथ्यून थामसन एडम कृत 'हिन्दी कोष संग्रह किया हुआ पादरी आदम साहिब का' हिन्दी का पहला ऐसा कोश-ग्रन्थ है जो देवनागरी लिपि में आधुनिक कोश-पद्धति से संयोजित हुआ है। उस वक़्त शब्द-संग्रह और कोश निर्माण के ऐसे कई और छोटे-मोटे प्रयास हो तो रहे थे किन्तु हिन्दी कोश-रचना की परम्परा के आधुनिक काल में पहला बड़ा संस्थागत प्रयास श्यामसुन्दरदास के संपादकत्व एवं कई अन्य सहायक संपादकों, जिसमें रामचन्द्र वर्मा भी शामिल थे, के नेतृत्व में काशी अवस्थित नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा 'हिंदी शब्दसागर' के रूप में दिखलाई देता है। यह प्रयास हिन्दी कोश परम्परा का उपजीव्य साबित हुआ और स्वातंत्र्योत्तर काल में इसकी प्रेरणा से हिन्दी में कई कोश-ग्रन्थ बनाए गए; जिसमें 1966 ई॰ तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में रचनारत रहने वाला पाँच खण्डों में प्रकाशित 'मानक हिन्दी कोश' विशेष रूप से उल्लेखनीय सिद्ध हुआ। यह कोश रामचन्द्र वर्मा के सम्पादन में निर्मित कोश-रचना के महत्ती कार्यों एवं ग्रन्थों में से एक था।

हिन्दी में कोश-रचना की परम्परा के अध्ययन से प्राप्त ऐसे कई तथ्यों का उल्लेख इस शोध में यथास्थान किया गया है। जिस संदर्भ में यहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि ऐसे तो कोई भी एक कोश सभी आवश्यकताओं की पूर्ति पूर्णरूप से, भली-भाँति नहीं कर सकता किन्तु कोश-रचना की परम्परा का अध्ययन इसी पूर्ति को संभव बनाए जाने की संभावनाओं से जुड़ा हुआ है। कोश पाठ्यपुस्तकों की भाँति आद्योपांत नहीं पढ़े जाते हैं;

किसी संदर्भ विशेष के लिए ही इनका उपयोग होता है। इन्हें संदर्भ ग्रन्थों की संज्ञा भी दी जाती है। एक जीवंत भाषा में शब्द और कोश निरंतर बढ़ते ही जाते हैं; यही कारण है कि कोश विषयक कोई भी अध्ययन अपने आप में अंतिम नहीं कहलाता। इस संदर्भ में इतना अवश्य कह सकते हैं कि कोश-रचना की परम्परा में उल्लिखित कोश-ग्रन्थ साध्य होते हैं; साधन के रूप में उनका अध्ययन मात्र एक प्रक्रिया का द्योतक है। इसी प्रक्रिया के स्वरूप और विस्तार को जानते हुए कोश-रचना की आधुनिक पद्धति के प्रकारों जैसे हिन्दी में विश्वकोश, ज्ञानकोश और थिसॉरस अर्थात् समांतर कोश इत्यादि का उल्लेख भी अपेक्षित था; जिसको उजागर करते हुए हिन्दी में ऑनलाइन कोश और कम्प्यूटरीकृत कोशकारिता के विवरण का छोटा-सा प्रयास भी पूरा किया गया है; जो आधुनिक कोश-रचना क्षेत्र में डिजिटल दुनिया का ही एक प्रतिबिंब मात्र है। इसलिए हिन्दी में कोश-रचना की अद्यतन परिस्थितियाँ और उसके कुछ पहलू आदि पर विचार करते हुए यह आशा भी प्रकट की गई है कि हिन्दी कोशकारिता का आधुनिक कार्यक्षेत्र अपनी परम्परागत शब्द-सम्पदा के महत्त्व को पहचानेगा एवं उससे भी समृद्ध होने का थोड़ा-बहुत प्रयास करेगा। यही कोश-रचना की परम्परा पर आधारित उक्त अध्याओं का कोश विषयक अध्ययन में अंतर्निहित सारांश भी है; जो आवश्यकता के अनुकूल आजकल के आधुनिक भाषिक आयामों में प्रासंगिक भी जान पड़ता है।

रामचन्द्र वर्मा (08.01.1889 से 19.01.1969) के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विचार करते हुए ज्ञात होता है कि इनका बहुआयामी रचनात्मक व्यक्तित्व अपने युगीन संदर्भों में प्रतिभा, व्युत्पत्ति लोक एवं व्युत्पत्ति शास्त्र के ज्ञान और शब्द-सर्जना के अभ्यास में पगा हुआ था। इसलिए वे एक कोशकार के अतिरिक्त भाषा-व्याकरण के चिंतन, विविध विषयों के मौलिक लेखन, अनुवाद-सम्पादन, ऐतिहासिक-राजनीतिक अनुशीलन इत्यादि के विविध विषयक कार्य-पक्षों से जुड़े हुए सिद्धस्थ व्यक्ति एवं कृतिकार थे। जिनकी प्रतिभा और कार्य-कुशलता को उनके समकालीनों ने भी समय रहते पहचान लिया था। अतः रामचन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व पर उपरोक्त संदर्भों में यथास्थान विचार किया गया है ताकि उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी के इस विलक्षण हिन्दी सेवी की महत्ता को वर्तमान संदर्भों में भी रेखांकित किया जा सके। बहरहाल, रामचन्द्र वर्मा के कृतित्व से जुड़े कार्यों को भी उनके कई बहुस्तरीय कार्य पक्षों के तौर पर वर्गीकृत किया जा सकता है; जैसे – रामचन्द्र वर्मा का

अनुवाद कार्य, रामचन्द्र वर्मा का मौलिक सृजन, भाषा और व्याकरण क्षेत्र में रामचन्द्र वर्मा का योग तथा रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं का कृतित्व। कहना न होगा कि कृतित्व से जुड़े उपरोक्त बहुस्तरीय कार्य पक्षों में रामचन्द्र वर्मा ने क़रीब डेढ़ सौ से अधिक ग्रन्थों की रचना की थी, जिसके आकलन की एक प्राथमिक कोशिश रामचन्द्र वर्मा के कृतित्व पक्ष में पूरी की गई है। साठ वर्षों तक कोश-रचना के क्षेत्र में तल्लीन रहने वाले रामचन्द्र वर्मा ने लगभग एक दर्जन से भी अधिक कोश-ग्रन्थों की रचना की है; जो आकार-प्रकार और उत्कृष्ठता की दृष्टि से सराहनीय कार्य माना जा सकता है। बहरहाल, यहाँ नाथू राम कालभोर की उपमाओं का सहारा लेते हुए कहें तो भारतीय कोश विज्ञान के आधुनिक यास्क पद्मश्री बाबू रामचन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में जितना भी कहा जाए वह कम ही होगा।

रामचन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व व कृतित्व का उद्घाटित अभिन्न अंग और अंतिम पड़ाव इनके कोश-ग्रन्थों में है। ऐसे में रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं का विश्लेषण सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आयामों के आधार पर किया जाना अपेक्षित था। किन्तु संख्या और आकार-प्रकार की दृष्टि से रामचन्द्र वर्मा की कोश-रचनाओं का जो महत्त्व रहा हो है वह कोश-रचना की आधुनिक पद्धति और हिन्दी शब्द-सम्पदा में विस्तार की दृष्टि से नगण्य मात्र ही है। यह इनके कोशों की सीमा भी है कि ये सभी कोश जिस अपेक्षा से तैयार किए गए थे, उनका उपयोग आज अपनी सीमाबद्धता के कारण प्राथमिक नहीं रह गया। आज रामचन्द्र वर्मा के कोशों की तुलना में हिन्दी में कई उत्कृष्ठ कोश उपलब्ध हैं, जिनमें शब्द या अर्थगत त्रुटियाँ कम से कम हैं। रामचन्द्र वर्मा के उपरांत सृजित कोशों में मानकीकृत हिन्दी वर्णमाला का जितना ध्यान रखा जाता है उतना तो वर्माजी के कोशों में भी नई कोश-रचना पद्धति की दृष्टि का पालन नहीं हुआ; जैसे उदाहरण देखें तो ऑ एवं नुक़ता (अधोबिन्दु) वर्णों को रामचन्द्र वर्मा के कोशों की शब्द-प्रविष्टियों तथा शब्द वर्तनी में छोड़ दिया गया है; जो तत्कालीन भाषा-लिपि के कारकों के प्रभाव में ऐसा होना प्रतीत कराता है। बहरहाल, रामचन्द्र वर्मा ने हिन्दी में अंग्रेजी शब्दों के समतुल्य पर्यायकी गढ़ने का जो महत्ती कोशकार्य किया है वह सराहनीय है; जिसका एक प्रसंग यहाँ उल्लेखनीय है; प्रामाणिक हिन्दी कोश में अंगरेज़ी के 'स्टैंडर्ड' के लिए 'मानक' शब्द निश्चित हुआ है और जब भारत सरकार ने अपने एक भवन का नाम 'मानक संस्थान' रखा तो रामचन्द्र वर्मा की ख़ुशी का ठिकाना

नहीं रहा क्योंकि उनके शब्द की प्रामाणिकता सिद्ध हो गई थी। प्रसंगवश कहना न होगा कि कोश-रचना क्षेत्र में रामचन्द्र वर्मा ने भावी पीढ़ी के कोशकारों के लिए कोश-कला और शब्द-विवेक की साधना से कार्य करने का मार्ग प्रशस्त करने की दिशा में अपना प्रयोजन सच्चे अर्थों में पूरा किया था।

हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा का योगदान विषयक अध्याय शोध अध्यायों का अंतिम पड़ाव है। इसमें कोशों में अभिव्यक्त कोश-रचना पद्धति के आयामों के साथ-साथ हिन्दी कोश-रचना की परम्परा में रामचन्द्र वर्मा का नवाचार, पुनर्कल्पना, अवधारणा का विस्तार, उनकी स्थिति और योगदान संबंधी संदर्भों का अध्ययन किया गया है; जिसके आधार पर कोश एवं ज्ञानानुशासनात्मक साहित्योपांगों के पारस्परिक संबंध का हेतु और कोश, कोशकार, कोशकार्य/कोश-रचना विषयक योगदान का आधार स्पष्ट करते हुए उनकी विशिष्टताओं को भी उजागर करने का पहले पहल एक प्रयास किया गया है।

कहना न होगा कि इस शोधकार्य में भूमिका से विषय-प्रवेश करने तक की यह पूरी यात्रा हिन्दी कोश-विषयक अध्ययन की नई जिज्ञासा के उन निष्कर्षों पर हमें छोड़ देती है जो हिन्दी की आधुनिक ज़रूरतों को नई अध्ययन पद्धतियों और प्रयासों तक ले जाने का आवश्यक कार्य करेगी। संभवतः आधुनिक कोशों का यही सारांश स्थल भी है, जिसमें शब्द-साधना का एक आधार भाषा-सम्पदा की समृद्धि को बचाए रखना है। रामचन्द्र वर्मा भी अपने शब्द-विवेक और कोश-रचनाओं के माध्यम से इसी समृद्धि को बचाए रखने तथा उसे परिष्कृत करने का आजीवन प्रयास करते रहे।

****

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

टिप्पणी : आधार ग्रन्थों को उनके उपलब्ध संस्करण का उल्लेख करते हुए पहले संस्करण के प्रकाशन वर्ष के क्रमानुसार रखा गया है (पहले संस्करण से ज्ञात रामचन्द्र वर्मा के कुछ अप्राप्त कोशों का उल्लेख उक्त क्रमानुसार आधार ग्रन्थों के अंतर्गत ही हुआ है) बाक़ी अन्य संदर्भ-ग्रन्थों की सूची को अकारादि क्रमानुसार केवल उनके उपलब्ध हुए संस्करणों का उल्लेख करते हुए संयोजित करने की कोशिश की गई है। यहाँ जिन कोशों के आधार पर बदरीनाथ कपूर ने रामचन्द्र वर्मा के कोशों के कुछ नए संशोधित संस्करण तैयार किए हैं, उन्हें उनके आधार कोशों के उसी क्रम के साथ नीचे क्रमशः दे दिया गया है।

आधार ग्रन्थ

1. श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), रामचन्द्र वर्मा (मूल सहायक संपादकों में से एक), *हिंदी शब्दसागर (प्रथम भाग)*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण : 1986 ई॰ (आठ भागों में पहली बार सन् 1912-1929 ई॰ और ग्यारह भागों में पहली बार सन् 1965-1976 ई॰ के दौरान प्रकाशित)
2. श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), रामचन्द्र वर्मा (मूल सहायक संपादकों में से एक), *हिंदी शब्दसागर (द्वितीय भाग)*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण : 1987 ई॰ (आठ भागों में पहली बार सन् 1912-1929 ई॰ और ग्यारह भागों में पहली बार सन् 1965-1976 ई॰ के दौरान प्रकाशित)
3. श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), रामचन्द्र वर्मा (मूल सहायक संपादकों में से एक), *हिंदी शब्दसागर (तृतीय भाग)*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण : 1992 ई॰ (आठ भागों में पहली बार सन् 1912-1929 ई॰ और ग्यारह भागों में पहली बार सन् 1965-1976 ई॰ के दौरान प्रकाशित)
4. श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), रामचन्द्र वर्मा (मूल सहायक संपादकों में से एक), *हिंदी शब्दसागर (चतुर्थ भाग)*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण : 1995 ई॰

(आठ भागों में पहली बार सन् 1912-1929 ई॰ और ग्यारह भागों में पहली बार सन् 1965-1976 ई॰ के दौरान प्रकाशित)

5. श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), रामचन्द्र वर्मा (मूल सहायक संपादकों में से एक), *हिंदी शब्दसागर (पंचम भाग)*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण : 1995 ई॰ (आठ भागों में पहली बार सन् 1912-1929 ई॰ और ग्यारह भागों में पहली बार सन् 1965-1976 ई॰ के दौरान प्रकाशित)
6. श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), रामचन्द्र वर्मा (मूल सहायक संपादकों में से एक), *हिंदी शब्दसागर (छठा भाग)*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण : 1969 ई॰ (आठ भागों में पहली बार सन् 1912-1929 ई॰ और ग्यारह भागों में पहली बार सन् 1965-1976 ई॰ के दौरान प्रकाशित)
7. श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), रामचन्द्र वर्मा (मूल सहायक संपादकों में से एक), *हिंदी शब्दसागर (सातवाँ भाग)*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण : 1970 ई॰ (आठ भागों में पहली बार सन् 1912-1929 ई॰ और ग्यारह भागों में पहली बार सन् 1965-1976 ई॰ के दौरान प्रकाशित)
8. श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), रामचन्द्र वर्मा (मूल सहायक संपादकों में से एक), *हिंदी शब्दसागर (आठवाँ भाग)*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण : 1971 ई॰ (आठ भागों में पहली बार सन् 1912-1929 ई॰ और ग्यारह भागों में पहली बार सन् 1965-1976 ई॰ के दौरान प्रकाशित)
9. श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), रामचन्द्र वर्मा (मूल सहायक संपादकों में से एक), *हिंदी शब्दसागर (नवाँ भाग)*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण : 1972 ई॰ (आठ भागों में पहली बार सन् 1912-1929 ई॰ और ग्यारह भागों में पहली बार सन् 1965-1976 ई॰ के दौरान प्रकाशित)
10. श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), रामचन्द्र वर्मा (मूल सहायक संपादकों में से एक), *हिंदी शब्दसागर (दसवाँ भाग)*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण : 1973 ई॰ (आठ भागों में पहली बार सन् 1912-1929 ई॰ और ग्यारह भागों में पहली बार सन् 1965-1976 ई॰ के दौरान प्रकाशित)

11. श्यामसुंदरदास (मूल संपादक), रामचन्द्र वर्मा (मूल सहायक संपादकों में से एक), *हिंदी शब्दसागर (ग्यारहवाँ भाग)*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण : 1975 ई॰ (आठ भागों में पहली बार सन् 1912-1929 ई॰ और ग्यारह भागों में पहली बार सन् 1965-1976 ई॰ के दौरान प्रकाशित)
12. रामचन्द्र वर्मा (संपादक), *संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, पंचदश संस्करण : 2014 ई॰ (पहली बार प्रकाशित होने का वर्ष 1933 ई॰)
13. रामचन्द्र वर्मा (संपादक), *देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश*, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, दूसरा संस्करण : 1940 ई॰ (पहली बार प्रकाशित होने का वर्ष 1936 ई॰)
    १. *उर्दू-हिन्दी कोश* : लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, पुनरावृत्ति संस्करण : 2019 ई॰
    २. *उर्दू-हिन्दी-अंग्रेजी त्रिभाषी कोश* : लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, चतुर्थ संस्करण : 2019 ई॰
14. रामचन्द्र वर्मा, *आनंद शब्दावली* : पहली बार प्रकाशित होने का वर्ष 1941 ई॰ (अप्राप्त)
15. रामचन्द्र वर्मा, *शब्दार्थ-विवेचन* : पहली बार प्रकाशित होने का वर्ष 1948 ई॰ (अप्राप्त)
16. रामचन्द्र वर्मा और गोपालचन्द्र सिंह (संपादक), *आरक्षिक शब्दावली*, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्रथमावृत्ति : 1948 ई॰
17. रामचन्द्र वर्मा और गोपालचन्द्र सिंह (संपादक), *स्थानिक परिषद् शब्दावली*, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्रथमावृत्ति : 1948 ई॰
18. रामचन्द्र वर्मा (संपादक), जयकान्त झा (सहायक संपादक), *प्रामाणिक हिन्दी कोश*, साहित्य रत्नमाला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण : 1950 ई॰
    १. *बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश* : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवाँ संस्करण : 2017 ई॰
    २. *प्रामाणिक हिन्दी कोश (संक्षिप्त संशोधित संस्करण)* : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पुनर्मुद्रण संस्करण : 2009 ई॰
    ३. *प्रामाणिक हिन्दी बाल कोश* : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवाँ संस्करण : 2013 ई॰
19. रामचन्द्र वर्मा, *कोश-कला*, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, विक्रम संवत् पौष २००९ पहला संस्करण : 1952 ई॰
20. रामचन्द्र वर्मा, *हिन्दी कोश-रचना प्रकार और रूप*, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण : 1954 ई॰
21. रामचन्द्र वर्मा, *शब्द-साधना*, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण : 1955 ई॰

22. रामचन्द्र वर्मा (प्रधान सम्पादक), *मानक हिन्दी कोश (पहला खण्ड)*, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण : 2006 ई॰ (पाँच खण्डों में पहली बार सन् 1962-1965 ई॰ के दौरान प्रकाशित)
23. रामचन्द्र वर्मा (प्रधान सम्पादक), *मानक हिन्दी कोश (दूसरा खण्ड)*, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण : 2007 ई॰ (पाँच खण्डों में पहली बार सन् 1962-1965 ई॰ के दौरान प्रकाशित)
24. रामचन्द्र वर्मा (प्रधान सम्पादक), *मानक हिन्दी कोश (तीसरा खण्ड)*, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण : 2006 ई॰ (पाँच खण्डों में पहली बार सन् 1962-1965 ई॰ के दौरान प्रकाशित)
25. रामचन्द्र वर्मा (प्रधान सम्पादक), *मानक हिन्दी कोश (चौथा खण्ड)*, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण : 2007 ई॰ (पाँच खण्डों में पहली बार सन् 1962-1965 ई॰ के दौरान प्रकाशित)
26. रामचन्द्र वर्मा (प्रधान सम्पादक) *मानक हिन्दी कोश (पाँचवाँ खण्ड)*, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण : 2007 ई॰ (पाँच खण्डों में पहली बार सन् 1962-1965 ई॰ के दौरान प्रकाशित)
27. रामचन्द्र वर्मा, *शब्द और अर्थ*, शब्द-लोक प्रकाशन, बनारस, पहला संस्करण : 1965 ई॰
28. रामचन्द्र वर्मा, *शब्दार्थ-मीमांसा* : पहली बार प्रकाशित होने का वर्ष 1965 ई॰ (अप्राप्त)
29. रामचन्द्र वर्मा, *शब्दार्थक ज्ञानकोश* : पहली बार प्रकाशित होने का वर्ष 1967 ई॰ (अप्राप्त)
30. रामचन्द्र वर्मा, *शब्दार्थ-दर्शन*, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1968 ई॰
१. *शब्दार्थ-विचार कोश* : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, संस्करण : 2015 ई॰
31. रामचन्द्र वर्मा, *राजकीय कोश*, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशनाधीन रहने से प्रकाशित होने का वर्ष अज्ञात (अप्राप्त)

सहायक ग्रन्थ हिन्दी

1. उदयसिंह भटनागर, *राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (तृतीय भाग)*, उदयपुर साहित्य-संस्थान, संस्करण सन् 1952 ई॰

2. अचलानन्द जखमोला, *हिन्दी कोश साहित्य (सन् 1500 से 1800 ई॰ तक) : एक विवेचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन*, हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण : 1964 ई॰
3. अजित वडनेरकर, *शब्दों का सफ़र (पहला पड़ाव)*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति : 2014 ई॰
4. अनन्त चौधरी, *हिन्दी व्याकरण का इतिहास*, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, द्वितीय संस्करण : 2013 ई॰
5. कृष्णाचार्य, *हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ*, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1966 ई॰
6. जे॰ वी॰ कुलकर्णी, *हिन्दी शब्दकोशों का उद्भव और विकास*, प्रभा प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 1986 ई॰
7. त्रिभुवननाथ शुक्ल (संपादक), *कोश निर्माण : प्रविधि एवं प्रयोग*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण आवृत्ति : 2016 ई॰
8. दिनेश्वर प्रसाद, *फ़ादर कामिल बुल्के (भारतीय साहित्य के निर्माता)*, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2002 ई॰
9. नाथू राम कालभोर, *हिन्दी कोश साहित्य : समीक्षात्मक अध्ययन*, सुन्दर साहित्य सदन, बैतूल (मध्य प्रदेश), प्रथम संस्करण : 1981 ई॰
10. नामवर सिंह, *हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पुनर्मुद्रण संस्करण : 2015 ई॰
11. नारायण सिंह भाटी (संपादक), *डिंगलकोश*, राजस्थानी शोध संस्थान (चौपासनी), जोधपुर, संस्करण : 1957 ई॰
12. परमानन्द पांचाल, *अमीर ख़ुसरो : व्यक्तित्व और कृतित्व*, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, संस्करण : 2010 ई॰
13. बलदेव उपाध्याय, *संस्कृत-शास्त्रों का इतिहास*, शारदा मन्दिर, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1969 ई॰
14. भरतसिंह उपाध्याय, *पालि साहित्य का इतिहास*, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण : 1951 ई॰

15. भिक्षु धर्मरक्षित, *पालि साहित्य का इतिहास*, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पुनर्मुद्रण विक्रम संवत् २०६६ संस्करण : 2009 ई॰
16. भोलानाथ तिवारी, *भाषा विज्ञान*, किताब महल, इलाहाबाद, संस्करण : 2010 ई॰
17. भोलानाथ तिवारी, *हिन्दी भाषा और नागरी लिपि*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सोलहवाँ संस्करण : 2019 ई॰
18. राम अधार सिंह, *कोश विज्ञान : सिद्धान्त एवं प्रयोग*, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास, संस्करण : 1990 ई॰
19. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *अंधकारयुगीन भारत का इतिहास*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1938 ई॰
20. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *अकबरी दरबार (पहला भाग)*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1924 ई॰
21. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *अकबरी दरबार (दूसरा भाग)*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1928 ई॰
22. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *अकबरी दरबार (तीसरा भाग)*, नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1936 ई॰
23. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *अरब और भारत के संबंध*, हिन्दुस्तानी एकेडेमी (संयुक्त प्रान्त), प्रयाग, पहला संस्करण : 1930 ई॰
24. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *आत्मोद्धार*, द इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1915 ई॰
25. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *आयर्लैण्ड का इतिहास*, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति : 1918 ई॰
26. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *कर्तव्य*, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1923 ई॰
27. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *छत्रसाल*, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति : 1916 ई॰
28. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *जातक कथा-माला (पहला भाग)*, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण : 1924 ई॰

29. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *जीवन और श्रम*, गाँधी हिन्दी-पुस्तक भण्डार, बम्बई, पहला संस्करण : 1917 ई॰
30. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *तरुण भारत*, हिन्दी साहित्य मन्दिर, बनारस, पहला संस्करण : 1923 ई॰
31. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *धर्म की उत्पत्ति और विकास*, श्री सयाजी साहित्यमाला (पुष्प-२७०), बडोदा, प्रथमावृत्ति : 1940 ई॰
32. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *प्राचीन मुद्रा*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1924 ई॰
33. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *बलिदान*, गाँधी हिन्दी-पुस्तक भण्डार, बम्बई, पहला संस्करण : 1920 ई॰
34. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *भारत के स्त्री-रत्न (पहला भाग)*, सस्ता साहित्य प्रकाशक मण्डल, अजमेर, पहला संस्करण : 1925 ई॰
35. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *भारत के स्त्री-रत्न (दूसरा भाग)*, सस्ता साहित्य प्रकाशक मण्डल, अजमेर, पहला संस्करण : 1927 ई॰
36. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *भारत के स्त्री-रत्न (तीसरा भाग)*, सस्ता साहित्य प्रकाशक मण्डल, अजमेर, पहला संस्करण : 1935 ई॰
37. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *भारतीय स्त्रियाँ*, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, प्रथमावृत्ति : 1926 ई॰
38. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *महादेव गोविन्द रानाडे*, राजपूत ऐंग्लो-ओरियण्टल प्रेस, आगरा, प्रथमावृत्ति : 1914 ई॰
39. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *मानस सरोवर और कैलास*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1935 ई॰
40. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *मितव्यय*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1916 ई॰
41. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *मेवाड़-पतन*, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति : 1916 ई॰

42. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *राइफल*, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण : 1958 ई॰
43. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *राजा और प्रजा*, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति : 1919 ई॰
44. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *राणा प्रतापसिंह*, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति : 1921 ई॰
45. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *लंका-विजय (सिंहल-विजय)*, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति : 1925 ई॰
46. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *वर्तमान एशिया*, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति : 1922 ई॰
47. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *संजीवनी विद्या*, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति : 1931 ई॰
48. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति*, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति : 1927 ई॰
49. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *हिन्दी ज्ञानेश्वरी*, हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी, पहला संस्करण : 1937 ई॰
50. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *हिन्दी दासबोध*, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, प्रथमावृत्ति : 1932 ई॰
51. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *हिन्दू राज्यतंत्र (पहला खण्ड)*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1927 ई॰
52. रामचन्द्र वर्मा (अनुवादक), *हिन्दू राज्यतंत्र (दूसरा खण्ड)*, नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1942 ई॰
53. रामचन्द्र वर्मा, *उपवास-चिकित्सा*, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति : 1916 ई॰
54. रामचन्द्र वर्मा, *अच्छी हिन्दी*, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, पहला संस्करण : 1944 ई॰
55. रामचन्द्र वर्मा, *अच्छी हिन्दी*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पुनर्मुद्रण संस्करण : 2015 ई॰

56. रामचन्द्र वर्मा, *गोरों का प्रभुत्व*, सस्ता साहित्य मण्डल, अजमेर, प्रथम संस्करण : 1928 ई॰
57. रामचन्द्र वर्मा, *निबंध-रत्नावली*, प्रकाशक अज्ञात, संस्करण : 1928 ई॰
58. रामचन्द्र वर्मा, *पुरानी दुनिया*, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, प्रथमावृत्ति : 1934 ई॰
59. रामचन्द्र वर्मा, *भूकम्प पीड़ितों की करुण कहानियाँ*, प्रकाशक राजमन्दिर, काशी, पहला संस्करण : 1934 ई॰
60. रामचन्द्र वर्मा, *मँगनी के मियाँ*, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति : 1935 ई॰
61. रामचन्द्र वर्मा, *मधु-चिकित्सा*, प्रकाशक अज्ञात, संस्करण : 1927 ई॰
62. रामचन्द्र वर्मा, *महात्मा गांधी*, हिन्दी पुस्तक भण्डार, बम्बई, प्रथमावृत्ति : 1918 ई॰
63. रामचन्द्र वर्मा, *मानक हिन्दी व्याकरण*, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1961 ई॰
64. रामचन्द्र वर्मा, *मानव-जीवन*, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति : 1917 ई॰
65. रामचन्द्र वर्मा, *संसार की राजनीतिक प्रणालियाँ (II)*, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1941 ई॰
66. रामचन्द्र वर्मा, *सफलता और उसकी साधना के उपाय*, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति : 1915 ई॰
67. रामचन्द्र वर्मा, *साम्यवाद*, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति : 1919 ई॰
68. रामचन्द्र वर्मा, *हिन्दी प्रयोग*, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, बनारस, प्रथम संस्करण : 1946 ई॰
69. रामचन्द्र वर्मा (मूल लेखक), बदरीनाथ कपूर (संशोधन एवं परिवर्धन), *कोशकला*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीन संशोधित संस्करण : 2007 ई॰
70. रामचन्द्र वर्मा (मूल लेखक), बदरीनाथ कपूर (संशोधन एवं परिवर्धन), *हिन्दी प्रयोग*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीन संशोधित संस्करण : 2009 ई॰
71. रामचन्द्र शुक्ल, *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 2010 ई॰
72. रामस्वरूप चतुर्वेदी, *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 2011 ई॰
73. वामन शिवराम आप्टे, *संस्कृत-हिन्दी कोश ('दी स्टुडेंट्स संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी' का अनूदित हिन्दी संस्करण)*, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण : 2012 ई॰
74. श्रीराम शर्मा (संपादक), *खालिक बारी*, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, विक्रम संवत् २०२१ प्रथम संस्करण : 1964 ई॰

75. सत्य पाल नारंग, *संस्कृत कोश-शास्त्र के विविध आयाम*, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1998 ई॰
76. हजारीप्रसाद द्विवेदी, *कबीर*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सत्रहवीं आवृत्ति : 2011 ई॰
77. हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिन्दी साहित्य की भूमिका*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण : 2012 ई॰
78. हरदेव बाहरी, *कंट्रीब्यूशन टु हिन्दी लेक्सिकॉग्राफ़ी*, प्रोसीडिग्ज़ आव् दि ऑल इंडिया ओरियंटल कॉन्फ्रेंस, बनारस : 1943-44 ई॰
79. हरदेव बाहरी तथा अन्य (संपादक), *कोश-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1989 ई॰

सहायक ग्रन्थ अंग्रेजी

1. Arthur Anthony Macdonell, *A History of Sanskrit Literature*, D. Appleton Company, New York, Edition : 1900 A.D.
2. Claus Vogel, *Indian Lexicography*, Jan Gonda (Edited), *A History of Indian Literature, Volume -V*, Wiesbaden - Otto Harrassowitz, Edition : 1979 A.D.

पत्रिकाएँ

1. दिनेश चंद्र चमोला (संपादक), *विकल्प (शब्दावली विशेषांक)*, भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून, वर्ष 22, जुलाई-सितंबर : 2012 ई॰
2. देवेन्द्रदत्त नौटियाल (संपादक), *भाषा (त्रैमासिक)*, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार, *विश्व हिंदी सम्मेलन अंक*, प्रथम ई-संस्करण : 2019 ई॰
3. मीरा सरीन (संपादक), *गवेषणा (भारत में कोशविज्ञान पर विशेष)*, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, अंक 93, जनवरी-मार्च : 2009 ई॰
4. रामचन्द्र वर्मा, *भारतीय भाषाएँ और उनके शब्दकोश, सप्तसिन्धु (पत्रिका)*, अप्रैल-मई : 1954 ई॰
5. रामविलास शर्मा (संपादक), *भारतीय साहित्य*, आगरा विश्वविद्यालय, अंक 3-4, जनवरी-अप्रैल : 1970 ई॰
6. शशि भारद्वाज (संपादक), *भाषा (द्वैमासिक)*, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार, वर्ष 46, अंक 1, सितंबर-अक्तूबर : 2006 ई॰

7. शशि भारद्वाज (संपादक), *भाषा (द्वैमासिक)*, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, भारत सरकार, वर्ष 48 अंक 6, जुलाई-अगस्त : 2009 ई॰
8. शशि भारद्वाज (संपादक), *भाषा (द्वैमासिक)*, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार, वर्ष 49, अंक 2, नवंबर-दिसंबर : 2009 ई॰

इंटरनेट वेबसाइट पोर्टल

1. https://archive.org/
2. https://bharatdarshan.co.nz/article-details/599/arvind-lexixon.html
3. https://epgp.inflibnet.ac.in/epgpdata/uploads/epgp_content/S000018HI/P001757/M023492/ET/1506596694HND_P5_M31_Koshvigyan.pdf
4. https://lgandlt.blogspot.com/2017/09/2017.html
5. https://profkrishankumargoswami.wordpress.com/2020/06/29/कोश विज्ञान-और-कोश-कला/
6. https://rapidiq.files.wordpress.com/2008/10/hindi-kosh-nirman.pdf
7. https://web.archive.org/web/20110430215241/http://dsal.uchicago.edu/dictionaries/dasa-hindi/index.html
8. https://www.collinsdictionary.com/hi/dictionary/english/lexicography
9. http://www.hindisamay.com/content/3159/1/वर्धा-हिंदी-शब्दकोश.cspx
10. http://www.nirantar.org/1006-nidhi-samantar-kosh
11. https://www.pravakta.com/kosh-parampara-singhavlokan/
12. https://www.rachanakar.org/2008/10/blog-post_2038.html#comment-form
13. https://www.rachanakar.org/2017/04/blog-post_73.html
14. http://vasantbhatt.blogspot.com/2009/06/blog-post.html
15. https://www.youtube.com/watch?v=lbsBzk_7xvE
16. https://www.youtube.com/watch?v=liSbaO4BH9g

****